निर्मला

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः'

श्रीकृष्ण ।

अनुवादक-

ज्यो० राधेश्याम दवे

निर्मला

हिन्दू जाति के अनेक अनिष्टों को दूर
करने के उपाय बताने वाले गुजराती
भाषा के एक सामाजिक
उपन्यास का अनुवाद

लेखक—

साक्षरवर्य श्रीचतुर्भुज माणकेश्वर भट्ट

भू० पू० दीवान दांता (भवानगढ़)

अनुवादक—

ज्यो० राधेश्याम दवे,

मथुरा।

संवत् १९९३ | मूल्य १॥) | प्रथमवार १०००

❋ समर्पण ❋

श्रीमद् समस्तसद्गुणागार, विक्रमकुलकुमुद बान्धव,
धर्मधुरन्धर, वर्णाश्रमधर्मरक्षक, परमोपासक,
महामहिम महाराजाधिराज
महाराणा श्री ५ श्री भवानीसिंहजी देव बहादुर महोदय
संस्थान दाता (भवानगढ़) की पवित्र सेवा में—

परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के मुखारविन्द से गीता द्वारा कहे गये मन्त्र का हिन्दूकुल-कमल-दिवाकर वीर-शिरोमणि महाराजाधिराज विक्रमादित्य ने "राज्य प्रजा के हित के लिये ही है और वह अनेक जन्मों के शुभ कर्मों से प्राप्त होता है" यह अर्थ लगा कर एवं उसे अपने जीवन में ओत-प्रोत कर भारत की भूमि पर अपनी यशः-काय अमर करली है। उन्हीं उदार चरित महाराजाधिराज के सुवंश को श्रीमान् ने अपने आविर्भाव से अत्यन्त प्रकाशित कर उन महाराज के ही अवशेषों पर संप्रति राज्य करते हुए, सैकड़ों वर्षों के प्रचण्ड उपद्रवों के पश्चात् भी वीरामणी विक्रम महीपति के मन्त्र को चारित्र्य में अंगीकार कर भारत के भूपालों के लिये श्रीमान् उदाहरणस्वरूप बन गये हैं, एवं श्रीमान् के नरेन्द्रोचित बहुमूल्य जीवन को अन्य नृपतियों ने आदर्श माना है। इतना ही नहीं किन्तु धर्म, नीति और साहित्यानुराग में भी श्रीमान् पूर्णतया अनुरक्त हैं। श्रीमान् की इन सुकीर्तियों से श्रवणेन्द्रिय को पवित्र कर अत्यन्त आह्लाद के साथ अंतःकरण से श्रीमान् की आयु आरोग्यैश्वर्यादि की अभि-वृद्धि की कामनासहित यह पुस्तक श्रीमान् की सेवा में सादर समर्पित कर कृतार्थ होता हूं।

श्रीमान् का शुभाकांक्षी,
नम्र सेवक—
ज्यो० राधेश्याम दवे।

अनुवादक के दो शब्द।

संवत् १९८८ विक्रमी में जब मैं जातीय मासिक-पत्र " औदीच्य बन्धु " का सम्पादन करता था, तब " औदीच्य-रत्न माला " भाग २ में साक्षरवर्य श्री चतुर्भुज माणकेश्वर जी भट्ट महोदय (दीवान--दाँता राज्य) का जीवन–चरित्र पढ़ा था। श्रीयुत् भट्ट महोदय की उस जीवनी से हृदय में एक बड़ा आह्लादमय अभिमान का भाव जाग्रत हुआ कि औदीच्य ज्ञाति में भी ऐसे विद्वद्रत्न, न्यायपरायण, सिद्धान्तवादी सुधारक, कर्तव्यनिष्ठ, धर्मात्मा विद्यमान हैं। उसी क्षण मैंने एक प्रति 'बन्धु' की भट्ट महोदय की सेवा में भेजी। आठवें दिन ही शुभ कामना के सन्देश के साथ एक किताब का पैकेट मिला। पैकेट में आपकी कृति यही गुजराती की नवल कथा 'निर्मला' थी।

उपन्यास मेरी पाठ्य सामग्री कभी नहीं रही। इसी भावना से इसको भी मैंने उठा कर अपने पुस्तकालय में रख दिया। किंतु जातीय महासभा के नाते अपने गुजराती भाइयों के विशेष समीप आने के लिये अपनी गुजराती भाषा का कुछ विशेष ज्ञान उपार्जन करने की इच्छा हुई। अतएव सर्वप्रथम मुझे इस नवल कथा को ही उठाना पड़ा। रात्रि के समय आधा घण्टा मैंने इसके लिये निश्चय किया था। परन्तु 'निर्मला' की शैली, भाषा, रोचकता और विचारधारा ने मुझे तल्लीन कर लिया।

एक कारण और भी था कि उसमें उन्हीं विचारों का समावेश था जो मेरे मस्तिष्क में अहर्निश घूमा करते थे और हैं।

अर्थात् भिन्न भिन्न उपजातियों का अपनी मूल जाति में एकीकरण होकर प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था का पुनः साम्राज्य हो। यह स्वप्न जो वर्षों से देखा जारहा था, उसका चित्रपट पुस्तक रूप में इस निर्मला ने दिखलाया। शनैः शनैः इसमें इतनी आसक्ति बढ़ी कि रात्रि में अनिश्चित समय देकर इसे समाप्त किया। उसी दिन इसके अनुवाद की लालसा जाग्रत हुई।

गुजराती भाषा के टौमस हार्डी (Thomas Hardy) श्रीयुत् भट्ट महोदय को 'निर्मला' का हिन्दी अनुवाद करने की स्वीकृति प्रदान करने सर्वप्रथम पत्र लिखा। 'परोपकाराय सतां विभूतयः' कहावत चरितार्थ हुई, तुरन्त लौटती डाक से स्वीकृति मिल गई। उसी नवीन उत्साह में कार्य बाहुल्य होते हुए भी सं० १९८९ में अनुवाद तो प्रारम्भ कर ही दिया। परन्तु पारिवारिक झंझटों और सामाजिक कार्यों में निरन्तर व्यस्त रहने के कारण बैलगाड़ी की तरह चलते चलते अनुवाद समाप्त कर अब कहीं उसे प्रकाशित करने का अवसर आया है। जब अनुवाद आधा ही हुआ था, छपना तो तभी प्रारम्भ करा दिया था, क्योंकि यह कभी आशा नहीं थी कि तीन वर्ष में जाकर यह प्रकाशित होगी, अतएव भाषा, कागज़ या छपाई में अन्तर आगया हो, तो आश्चर्य ही क्या है ?

लेख या पुस्तक लिखने से अनुवाद करना अति कठिन है, यह भी मुझे इस बार प्रत्यक्ष अनुभव हुआ ! लेखक महोदय के भय और मित्रों के आग्रह से भावानुवाद पर लक्ष्य न रख कर शब्दानुवाद का विशेष ध्यान रक्खा गया है। इसमें सम्भव है, हिन्दी साहित्यज्ञों के लिये मैं उपहास का पात्र बनूं, परन्तु

परिस्थितिवश लाचार था साथ ही प्रथम प्रयास होने के नाते क्षमा का अभिलाषी हूं।

उपन्यास सर्वथा सामाजिक और शिक्षाप्रद है और इसी दृष्टि से इसका अनुवाद भी किया गया है। इसके प्रत्येक चरित्र में आदर्शता टपकती है। स्त्री शिक्षा का लाभ, आभूषणों से हानि, लम्पट साधुओं का देश पर भार, गुरु, पिता, माता की भक्ति, सच्चा सखी भाव इत्यादि अनेक आदर्शों से यह उपन्यास ओत-प्रोत है। हिन्दू जाति के क़िले की चाहारदीवारी वर्णाश्रम धर्म की आवश्यकता को प्रतिपादित करने वाला, आधुनिक परिस्थिति में प्राचीन आश्रम, प्राचीन संस्कारों का युक्तिसंगत पोषक, यह उपन्यास धार्मिक, सामाजिक, नैतिक सभी सुधारकों के लिये पठनीय है, साथ ही रोचक है। यदि हिन्दी भाषाभाषी जनता ने इसे अपनाया, तो श्रीयुत् भट्ट महोदय के अन्य उत्तमोत्तम उपन्यासों के अनुवाद भी हिन्दी भाषानुरागी पाठकों के लिये उपस्थित किये जायँगे। आशा है, मेरी त्रुटियों पर ध्यान न देकर पाठक लेखक के विचारों का कार्यात्मक स्वागत करेंगे।

मथुरा
जन्माष्टमी
सं० १९९३ वि०

—ज्यो० राधेश्याम दवे।

PREFACE.

Encouraged by the warm reception accorted to my book, Swarnakumari, which I wrote for the Gujrati Punch in 1914, I venture to place before the public in general and the workers for the social amelioration of the Hindu society in particular, one more fruit of my efforts in the direction of the revival of the Varnashram system which has been the ideal of my life. In my humble opinion the continance of numerous subcastes and subdivisions in Hindu society acts as a spoke in the wheel of the progress and a drag in its onward march. The abuses that have crept in the Hindu society and the diseases that are eating into its vitals, can not be removed or eradicated without the adoption of the old order of the four castes, into which society was formerly divided. The restablishment of this Varnashram system, will act as a very effective germicide to the bacilli that sop the strength and solidarity of the Hindu community and will restore to it its pristine prosperity and glory. The numerous divisions and subdivisions that exist at present in the Hindu community, present perenial obstacles to its progress and excercise a very

unhealthy influence upon its march. The Hindu outlook has become narrow. The Hindu horizon has become limited. It is time that the barriers that divide different divisions in the society should be broken. It is time that the many social evils that have been born of these divisions, should be struck at the root. It is time that these subdivisions should be destroyed and the Varnvyavastha should be restored. The difficulties which Hindu parents have to face in the matrimonial markets in connection with their children, the disasters into which Hindu widows are stranded the perils which Hindu boys and girls have to undergo, all these constitute the baneful and pernicious effects of the present system and it is upto all the workers in the field of social regeneration of the Hindu society, to make a vigorous and organised effort for the uplift of that society, by demolishing the barriors created by these subdivisions in the spirit of an iconoclast. Hindu society can not long survive without the revival of the Varnashram system. Time was when the Varnashram system was denounced as obsolete and unnecessary by advocates of 'social reform,' but deeper study and consideration of the circumstances of the Hindu

society have converted them—most of them to the conclusion that the adoption of the Varnashram system will be a sure panecea for many ills that the present Hindu society is heir to. It is difficult to imagine the chaotic condition into which Hindu society will be plunged, in the event of the obliteration of the old boundary marks designated in the Hindu scriptures. I have no doubt that a higher and brighter destiny will await the Hindu society on its adoption of the old Varnashram system which is sanctioned by Hindu law and which is sanctified by ages of usage and custom and I have equally no doubt that Hindu society will perish if it clings to the present order of things, which fosters nothing but dissensions and differences and creates nothing but contests and conflicts. I appeal to social workers to put forth their best efforts to lift the curtains of subcasts that conceal behind them the scenes of peace, happiness and progress in store for the Hindu Society on its adoption of the Varnavyavastha, venerated by age and sanctioned by the shastras and I hope I don't appeal to them in vain.

Danta Bhâvangadh 1924 — **Chaturbhuj M. Bhatt.**

लेखक की प्रस्तावना।

स्त्री-शिक्षा पुरुषों की शिक्षा जितनी ही नहीं, बल्कि उससे विशेष उपयोगी है इस विचार का वर्ग बढ़े और सुशिक्षित स्त्रियां के प्रयत्न, प्राचीन वर्णाश्रम धर्म पुनः संस्थापित करने के पुरुषों के प्रयत्नों से मिलें और ऐसा होने पर ही हिन्दुओं के साम्प्रतिक सांसारिक अनेक अनिष्ट नष्ट होंगे, इस स्वप्न तरंग से प्रेरित होकर विद्वान पाठकों के समक्ष यह उपन्यास रखने की अनुज्ञा लेता हूँ।

वर्णाश्रम धर्म पूर्वरीत्या पुनः संस्थापित हो और सम्प्रति पृथक् पृथक् वर्णों में पड़ी हुई उपजातियां अपनी अपनी जातियों में मिल जाँय, तो हिन्दू संसार के कष्ट कम हो जाँय इस विषय पर सन् १९१४ में 'सुवर्णकुमारी' नामक पुस्तक मैंने गुजराती पंच के पाठकों के सन्मुख उपस्थित की थी। उस समय सर चीनुभाई माधवलाल (बैरोनेट) प्रोफेसर स्वामीनारायण, प्रभृति हिंदू जाति के सांसारिक कष्टों को दूर करने की इच्छा रखने वाले सज्जनों ने तथा कितने ही समाचार-पत्रों ने जो इस प्रयत्न पर सहानुभूति प्रकाशित की थी, उससे मुझे विश्वास हुआ था कि वर्णाश्रम धर्म नष्ट कर देने का उपदेश देने वाले वर्णाश्रम संस्था को वास्तविक स्वरूप में पुनः स्थापित करने के प्रयत्न में लगें तो हमारा सांसारिक उदय दूर नहीं है।

इसमें प्रारम्भ में तो केवल जो जो उपजातियां पड़ गई हैं, वे अपनी मूल जाति में मिल जांय, यही प्रयत्न करने का है। जाति के अगुआओं ने उपजाति से, जिसे परजाति कहने में आता है, लड़कियाँ लाने वालों पर अंकुश रक्खा है, वह दूर करना चाहिये। इसी में धर्म है और इसी में उदय है। ऐसी ही शास्त्रकारों की आज्ञा भी है और संप्रति जो दबाव रखा गया है, वह धर्म से विपरीत है। यह बात उनके दिलों में बैठाने के लिये ज्ञाति के सुशिक्षित युवकों को कटिबद्ध होना चाहिये। इससे लड़के लड़कियों की कमी दूर होने के अतिरिक्त हिंदू ज्ञाति के सांसारिक उदय के लिये लोकमत के विरुद्ध भयङ्कर उपाय बर्तने वालों

की बुद्धि भी ठिकाने आयगी क्योंकि इस स्थिति ने लड़के लड़कों की कमी कर रक्खी है, वह फिर नहीं रहेगी और लोगों की चित्तवृत्ति डांवाडोल न होकर ठिकाने आयगी।

श्रीयुत् सोमालालजी ने यह पुस्तक तैयार कराने में मुझसे बहुत शीघ्रता कराई है। उपाधियुक्त कार्य में एक ओर प्रेस के यांत्रिक काम और दूसरी ओर मेरी कलम की प्रतिद्वन्दिता में सम्भवतः उपन्यास में दोष रह गये हों, तथापि इन दोषों पर लक्ष न रखते हुए मेरे हृदय के भावनापूर्ण उद्‌गारों को ग्रहण कर हिंदू जाति के उदय के प्रयत्नों में सम्मत होने की मेरी प्रार्थना है।

इसमें पुरुषों के, अपनी जाति के, उदय के प्रयत्नों में भाग लेने के लिये तत्पर तीन स्त्रीरत्न, एक कर्मयोगिनी देवी धर्मलक्ष्मी के प्रयत्नों से तैयार हुए हैं। भद्रबाला संस्कृत की पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर प्राचीन आश्रमों के स्वप्न में जीवन बिताने वाली महिला है। वह केवल प्रारब्धवादी है, प्राचीन शिक्षापद्धति पर प्रेम रखने वाली है। प्राचीन आश्रम संस्था, प्राचीन संस्कार आर्यप्रजा में प्रविष्ट हों, यही देखने के प्रयत्नों में रहती है।

सरयू केवल प्रयत्नों को ही प्रधानता देने वाली है। भक्तिपूर्वक किया गया सत्कर्म अन्य सभी कर्मों को भस्म कर प्रारब्ध तक को दो घड़ी एक ओर कर सकता है। वह यह सिद्धान्त मानने वाली है। निर्मला प्रारब्धवादी होते हुए भी कर्म को समान भाग देने वाली है। आर्य धर्म का तीनों को समान अभिमान है। आर्यनीति की तीनों को खुमारी है। अपने अपने विचारों में रहते हुए भी सखी के विचारों को मान देने वाली नीति, प्रसंगवश, सभी ग्रहण करती हैं। ऐसी आर्य ललनायें! भारत की भूमि पर प्रगट होकर हमारे उदय के प्रयत्नों में वेग उत्पन्न करें। तथास्तु—

विक्रमार्क १९८१ कार्तिक सुदी १५
दांता–भवानगढ़ (महीकांठा) } चतुर्भुज माणकेश्वर भट्ट

मनहर-रामाजी ! इन दिनों गुरुजी ने अपनी प्रवृत्ति बढ़ाली है । आपकी धारणा ऐसी है कि जन समूह पर परोपकार करने से मोक्ष मार्ग सुलभ हो जाता है । अपने हिन्दुओं के सांसारिक संकटों से इनका हृदय सतत संतप्त रहता है। आप मानते हैं और वह मानना ठीक भी है कि हिन्दू जाति में और उसकी मुख्यतः प्रथम तीन ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य जाति में जो अनेकों अन्तर जातियां पड़ गई हैं उनका एकीकरण होतो स्मरण-मात्र से पवित्र करने वाला पूर्व काल का सुखी समय दूर नहीं है, इसमें भी ब्राह्मणों की अन्तर जातियां जो अनेक कलह प्रसंगों को लेकर ही उत्पन्न हुई हैं ये जो किसी प्रकार से भी एक होजांय तो इनके अनेक अनिष्ट स्वतः नष्ट हो सकते हैं। इतना ही नहीं किन्तु अन्य ज्ञातियों को वे आदर्श रूप होकर समग्र हिन्दू जातिको सांसारिक सुखका समय अनुभव करावेंगे। इसी भाव से गुरुजी ने ब्राह्मणों की उपजातियों के संचालकों को उपदेश दे दे कर कितनी ही अन्तर जातियों में परस्पर लग्नों की योजना की है, और ये योजना जो सफल हो जावे तो जो जाति के चौधरी पंच आज कल की अंधाधुंधी और अव्यस्थित व्यवस्था को लिये हुए निर्वाह चला रहे हैं, इनका ये सब धन्धा समाप्त हो जाता है । इसलिये वे लोग बुरी तरह विरुद्ध होगये हैं।

रामाजी—अच्छा, मनहर भैया ! तो इसमें तो गुरुजी महाराज के ऊपर आपत्ति आने की कोई बात नहीं।

मनहर—सुनो तो सही—कितने ही जल्दबाज जाति के पञ्च पटेल अधीर होगये हैं और कल प्रातः काल गुरुजी......गुरुजी . ...

रामाजी-गुरुजी क्या ?

मनहर—गुरुजी को —

इस समय युवक का हृदय भर गया, उससे अधिक बोला नहीं गया, गद् गद् कण्ठ से वह मात्र गुरुजी को--गुरुजी को–करने लगा था; थोड़ी देर में हिम्मत आने पर वह फिर कहने लगा!

मनहर– मारने तैयार हुए हैं, पैसे भी दिये हैं, इसलिये गुरुजी की जान जोखम में है।

रामाजी—अरे भैयाजी! जान तो कभी जोखम में आ ही नहीं सकती इनके शरीर पर कोई आपत्ति होगी तो परमात्मा इनकी रक्षा करेगा, इनकी भक्ति में इनकी सामर्थ्य में अश्रद्धा मत रखिये।

इसी समय ईशानकोण में बिजली कड़की, बादल एक के बाद एक घिर रहे थे और अन्धकार ने तारों के प्रकाश को भी रोक दिया। मनहर और रामाजी का प्रयाण पूर्व में था, इसी तरफ से बड़े बड़े पर्वत समान बादल मानो चढ़ाई करते मालूम हुए। रामाजी चौधरी हिम्मत वाला था, ईश्वर का परम भक्त था, मनहर के पिता का वह सेवक होते हुए भी उसकी स्वामि भक्ति के कारण से वह उसके मित्र समान बन गया था और सेठ के अवसान के बाद उनके युवा पुत्र की सेवा निरन्तर करता रहा। मनहर की आज्ञा होते ही भय दीखते हुए भी उसने चातुर्मास्य की भयानक रात्रि में गाड़ी जोतली थी और ज्यों ज्यों अंधकार विशेष होने लगा त्यों त्यों अन्तःकरण में भरी हुई अटूट हिम्मत शनः २ दिखाता गया। रात्रि की भयानकता को न गिनते हुए उसने गा गाया—

जग के रूठे से क्या भयो जाको राम है रखवार री। जग०
देख देख पियारे लंक में संकट विभीषण परपरे॥
तुलसी सराहत राम को जिसने अवध में पग धरे।

ज्यों ज्यों गाड़ी आगे चलती थी त्यों त्यों मार्ग भी दीखना बन्द होने लगा। सामने आता हुआ जानवर या मनुष्य टक्कर लगने तक दिखाई नहीं देता था, ऐसा घोर अन्धकार व्याप्त था, आज का सा आकाश भयंकर कभी नहीं हुआ था बीच २ में बिजली कड़के तभी रामा चौधरी आगे का थोड़ा मार्ग देख लेता था, जब बरसात जोरसे होने लगी तब बिजली चमकनी भी बन्द हुई।

इस प्रकार कठिनता से एक आध कोस चले होंगे, इतने में ही गाड़ी की लीक चूक गया—केवल एक पगदंडी के मार्ग के आधार से बीच बीच में पांच दस मिनट में बिजली चमकती थी तो थोड़ा सा मार्ग देख कर रामा चौधरी बैलों को हांक लेता था। ये स्थिति भी अधिक देर न रह सकी, और दिन में भी मार्ग न दीखे ऐसी घनी झाड़ी में गाड़ी आ पहुंची—

रामाजी—भैय्या! इधर कहां जांयगे?

मनहर—हांकने वाला जाने या बैठने वाला? रामाजी!

इन संयोगों में भी रामा चौधरी सहज हँस पड़ा, और युवा सेठ के मन की शान्ति और धैर्य देख कर सन्तुष्ट हुआ। अब तो मानो बैल ही गाड़ी को चला रहे थे और थोड़ी दूर बाद ही वे भी स्तब्ध खड़े होगये। आगे क्या है, यह कुछ भी नहीं दिखाता था। भयंकर घोर अन्धकार! आकाशमें एक तारा भी नहीं दिखाई पड़ता था रामा चौधरी ने मुश्किल से उत्पन्न होते स्वाभाविक क्रोध का आवेश जो बैल अभी तक गाड़ी खेंचे चले जाते थे उन पर प्रहार करने में निकालने का साहस किया—इतने पर भी बैल नहीं डिगे, अतः उनकी पीठ पर खूब मार पड़ी। मार सहन न कर बैलों ने कुछ खसकने का प्रयत्न किया, इतने में ही पांच छे फुट ऊँचे से अभी के घोर बरसात से बढ़ आने वाले नाले में गाड़ी जा गिरी।

द्वितीय परिच्छेद

दशा चक्र।

पानी का शब्द सुनाई नहीं पड़ता था, परन्तु नाला शांति से बह रहा था। यह देख कर ऐसे नाले भयंकर परिणाम उत्पन्न कर देते हैं, इस विचार से रामा चौधरी अपने स्वामी की कुशल कामना के लिये अपने सारे जीवन में आज ही भयभीत होकर कांपने लगा। ज्यों ही गाड़ी गिरी उसने बैलों को छोड़ कर मनहर को पकड़ लिया, क्यों कि गिरते ही गाड़ी के ३—४ टुकड़े होगये थे। पानी ३-३॥ फुट गहरा था और वेग के साथ बहने से पूरा तनाव कर रहा था। टूटी हुई गाड़ी तो सारी पानी में डूब गई, बैलों के गले तक पानी था— मनहर ने स्वस्थ होकर पानी में पैर से नीचे की बह जाने वाली रेती में खड़े रह कर रामाजी से बैलों को खोल देने को कहा। बैलों के गाड़ी में से खोल देने के बाद दोनों ने एक एक बैल की पूंछ पकड़ली।

मनहर—'रामाजी, अब ऊपर की तरफ चढ़ चलें'।

रामाजी—नहीं भैय्या! घबराने का काम नहीं है। ये नाला बड़ा नहीं है। इस अकस्मात घटना ने दूसरी कुछ हानि नहीं की है, केवल दिशा ज्ञान कराया है। महाराज विष्णुप्रसादजी के आश्रम से तो हम लोग दूर आ पड़े हैं, परन्तु उनके एक शिष्य का उद्यान और आश्रम यहां से समीप ही होना चाहिये। भैय्या धीरे २ बैल की पूंछ पकड़े केवल पचा-सेक कदम इस पानी में और चलिये, विष्णुप्रसाद महाराज के परमभक्त पातञ्जलि का आश्रम यहां से समीप ही होना चाहिये। बैल की पूंछ

नक्षत्रों का धुंधला प्रकाश होने लगा था—इस ओर लक्ष करते गुप चुप दो आकृतियां परस्पर बात करती हों ऐसा प्रतीत हुआ। अंधकार और भय की चिंता न करते हुये मनहर उस ओर बढ़ा। ज्यों ही वह समीप गया त्यों ही उसने देखा कि वहां दो स्त्रियां थीं और एक के हाथ से पीतल का कमण्डल और प्याला भूमि पर गिर पड़ा था। इसके स्वर से मानों ये दोनों इस समय होने के लिये अपराध करती हों इनके कण्ठ से शब्द ने सहसा बाहर निकलने के लिये मानों आनाकानी की, तथापि अधिक हियाव वाली ने भय, सन्मान, कुतूहल मिश्रित मृदु वचन निकाले।

" हमारे इस समय यहां होने से आपका कुछ अपराध ! "

मनहर—ओहो ! इस में अपराध कैसा ? मार्ग भूले हुए हम दोनों यात्री कोई मनुष्य मिले यही बाट देख रहे थे, किंतु ऐसे जंगल में आप दोनों बालायें हैं ये देखकर स्वाभाविक आश्चर्य होता है। आपकी हम क्या सेवा कर सकते हैं ?

पहिली स्त्री—हां ! बहुत कर सकते हैं। इस आश्रम के अधिष्ठाता महाराज पातञ्जली की कुमारी भद्रबाला की हम दोनों सेविकायें हैं। आज श्रावण मास की शिवरात्रि होने से वे इस उद्यान के छोटे शिवालय में शंकर की आराधना कर रहीं हैं। आप दोनों की बातचीत और बैलों के गले की घण्टियों की आवाज़ उनके कर्ण गोचर होते ही कोई मनुष्य इस वर्षा के कारण से कदाचित आपत्ति में हो वह देखने हम को उन्होंने यहां भेजा है। कोई मनुष्य के भय में होने का अनुमान इससे हुआ कि इस जगह इस आश्रम के मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य का आना कदाचित् ही होता है।

मनहर—हमारे ऊपर उस तपस्विनी की बड़ी कृपा हुई, परंतु भद्रबाला अभी तक क्या आश्रम में ही है ?

पहिली स्त्री—वह कुमारी अभी अन्यत्र कहां जा सकती है ?

दूसरी स्त्री—यह मानसिक रीति से विवाहिता होने के सम्बंध की बात आपसे ही सुनने का अपराध हमने अभी किया ! आपको चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है, परंतु सुकुमार अवस्था में इस ब्रह्मचारिणी ने असिधारा तुल्य ऐसा उग्र कौमार्य व्रत धारण किया है कि जिससे इस समय में यह बात सुनने वाला आश्चर्य चकित होजाता है। न अब इनको खान पान का ध्यान है, न उन परिचित पुस्तकों पर ही लक्ष्य है। अपने पूर्व प्रिय परिचित विषय काव्य और संगीत को भी मानों वे भूल ही गयी हैं। विधान करतीं हों, उस प्रकार विभक्त अन्तःकरण से मात्र ईश्वराधना करती हैं।

मनहर-परंतु इन सब का कारण-

पहिली स्त्री-जो सब बातें जानते हुए भी पूछे उसको कारण बतलाने में भी पाप है। क्या आप नहीं जानते कि ब्राह्मणों की उपजातियों को एक कर समग्र ब्राह्मण ज्ञाति को एकत्र करने के स्तुत्य प्रयत्नों के लिये महाराज पातञ्जलि अपना जीवन गला रहे थे ? क्या आप नहीं जानते कि आपके पिता श्री और उनके (पातञ्जलि) बीच उत्साह पूर्वक संदेश चल रहे थे कि भद्रबाला का विवाह आपके साथ करना और इस प्रकार ज्ञाति की अन्तरज्ञातियों को एक करने के लिये अनेक दृष्टान्तों में कम से कम एक तो आदर्श उपस्थित करना। अभी-अभी आपके रामा चौधरी ने आपसे आपकी स्नेह व्यथा को कहा, वह सुनने वाले यद्यपि आपकी धारणा से तो इनके ही कर्ण थे किंतु वास्तव में यह अन्योक्ति सुनने के लिये प्रभु ने हमारी योजना की थी। क्या ऐसा नहीं है ? सुमति ! अब चलो, जीवन भर में शान्तनु की उत्तम कथा भद्रबाला से कहने का यह अब अवसर आया है।

धीमती—और आप दोनों हमारे पीछे पीछे आइये, इन बैलों को रास में लिये लेती हूं, यहां से कोई २०० दग पर छोटा शिवालय है वहां भद्रवाला श्री शङ्कर की पूजा में है। वे ध्यान में रत हों तो अभी हमको उनके ध्यान को स्खलन न करना पड़े इतनी सावधानी रखियेगा।

सुमती और धीमती दोनों बैल पकड़े आगे बढ़ीं, परतन्त्र की तरह मनहर भी पीछे २ चल रहा था, रामा चौधरी वार्तालाप का विषय समझ कर कुछ दूर बैठा विश्राम ले रहा था, वह भी अब पीछे हो लिया। ऐसे में ही शिवालय मे संगीत की कर्ण प्रिय ध्वनि कर्ण गोचर हुई, अतः जादू किये गये मनुष्य की तरह—श्रीकृष्ण की मुरली से मोहित गोपियों की तरह—संगीत रज्जुओं से आकर्षित मनहर इस ओर बढ़ा। शिवालय दसेक फुट ऊंचे चबूतरे पर बहुत ही छोटा सा था किन्तु अत्यन्त सुरम्य था—जहां से शङ्कर स्तुति का सुन्दर गान रात्रि के शान्त वातावरण को अति पवित्र बना रहा था। अन्दर के दीपक का प्रकाश संगमरमर पत्थर की दीवारों की उज्वलता के साथ श्री शङ्कर के हास्य का मानो अनुकरण कर रहा था। शिवालय में शङ्कर स्तुति में मग्न ब्रह्मचारिणी की तल्लीनता में भंग न डालना सूचित करने जैसा विषय नहीं था कारण कि शिवालय के भीतर की अनेक ज्योतियों से विशेष प्रबल उस का तेज कार्य कर रहा था। सातेक सीढ़ी चढ़ कर दर्शन करने के थे, तथापि संगीत से ही मुग्ध हुआ मनहर नीचे ही करसंपुट पर मस्तक रख कर एकटक खड़ा रहा और मन को महेश्वर की स्तुति की ओर–नदी के नैसर्गिक बहाव को नहर में किया जाय उस प्रकार, प्रेरित करने लगा।

संगीत जारी था—

" तोरी गति अपार……हर हर ओंकार,
सरजनहार, निरंजन, निराकार—तोरी०

सप्तद्वीप, सप्तसागर, अष्टकुल पर्वत पुराण,
मेरु सेव्यो सप्तद्वार……सरजनहार—हर हर ओंकार—तोरी०

जल-थल किरतार , पृथ्वी गगन धार,
अधम ओद्धार, तारन हार इह संसार-हर २ ओंकार-तोरी०

तानसेन प्रिया घट घट में दीपे ज्ञान ध्यान,
अगम निगम सकल अपरम्पार—हर हर ओंकार-तोरी०

संगीत बन्द होते ही भद्रवाला ध्यान में रत हुई। सुमति और धीमती ने बैलों को बांधकर उनके आगे बजरी की कड़वी डालदी और फलाहार की योजना में लग गईं। रामा चौधरी बैलों का भार सिरसे गया समझ कर एक स्थान पर जहां गूदड़ी पड़ी थी वहां निर्भयता पूर्वक लेट गया और देखते २ ही खुर्राटे लेने लगा। मनहर वहां से न तो खिसक ही सका न ऊपर ही चढ़ सका। त्रिशंकु की तरह बीच में ही स्तब्ध था। दसेक मिनट इस प्रकार शान्ति रहे बाद बैल लड़ने लगे इससे उनके गले की घंटियों ने घड़ी के ऐलार्म का का काम किया। और उससे भद्रवाला की शान्ति भंग हुई " ऐसे समय में कौन था ? सुमति ! धीमति ! "

दोनों दौड़ आई—' हमारा क्या काम पड़ा ?"

भद्रवाला—गंगा में काहे का कोलाहल था ?

सुमति—सारा कोलाहल शान्त होगया, बैलों को घास डाल दिया है। रामा चौधरी तो थकाव के मारे सो ही गया और-और-

भद्रबाला—और, और, क्या करती है। रामा चौधरी कहां का ? भगपुरे का ? वह यहां कहां ? किसको लेकर आया था ? फिर क्या हुआ ? तू किससे मिली ? मुझसे सारावृत्तान्त क्यों नहीं कहती ? अरी, क्यो, मुझसे कुछ नहीं कहती ?

सुमति—इतने सारे सवालों का सहज में उत्तर किस प्रकार दिया जाय ? आप आरती करके पूजन समाप्त कर लीजिये। इसके बाद ये खड़े हुए युवक स्वतः अपनी अंधेरी रात में की गई कष्ट यात्रा की कथा कहेंगे। महाशय ! बोलते क्यों नहीं हैं ? स्तब्ध क्यों खड़े हैं ?

मनहर—इन तपस्विनी को इस दुःखी यात्री के लिये क्लेश पहुंचा और परिश्रम उठाना पड़ा इसके लिये यह क्षमा मांगता हुआ अनेक प्रमाण करता है।

सुमति—सखी ! तृतीय पुरुष में कैसे कहा ?

धीमति—(सुमति के कान में) सुनतो ! यहां व्याकरण क्यों लगाती है ! (प्रकट) आरती के लिये यह कपूर लाई हूं।

भद्रबाला—आरती तो मानसिक करली। आतिथ्य के लिये तुमने क्या किया है, वह देखने दो। चलो,

सुमति—ऐसी संक्षिप्त मानसिक विधियों की योजना करने वाले ऋषि मुनियों का कल्याण हो ! (युवक से) इस तरफ, पधारिये !

मनहर—देवी की जय हो !

सुमति—यह तो महादेव का शिवालय है।

भद्रबाला—(सुमति के कान में) अली,इस प्रकार असमझ कबतक रहोगी?

सुमति—(कान में) समझती नहीं हूं तबतक।

राम। चौधरी जहां पर सोगया था उस मकान की ओसरी में भद्रबालाने युवक को एक कुशासन देकर बैठाया। पास ही जलका कमण्डल रख दिया। बाग के ताजा फल ला रक्खे और लज्जा, विवेक, एवं कुतूहल मिश्रित मृदुवचन बोली।

"आपका स्वागत करना मेरे सद्गत पिता के प्रारब्ध में नहीं बदा था वह आज मैं करती हूं। आपकी चरण रज से हमारा आश्रम आज पवित्र हुआ है। यहां अपना घर समझ कर आप यथेच्छ भोजन कीजिये। बरसात के कारण जो कष्ट हुआ वह यदि हमको पहलेसे सूचना मिली होती तो दूर करने का प्रयत्न किया जाता।

मनहर—इस तपोवन में आपके दर्शन के लिये ही मानो मेरा पुण्य मुझे घसीट लाया है।

भद्रबाला—अन्यथा आपका प्रयाण किस दिशा को पवित्र करने वाला था?

मनहर—ज्योतिपुरे में महाराज श्री विष्णुप्रसादजी के पास जाने का है।

भद्रबाला—ओहो! ज्वालाप्रसाद जी और दूसरे कितने ही भक्तगण भी आज वहीं गये हैं। विष्णुप्रसादजी जैसे ईश्वर के अनन्यभक्त को शास्त्र विरुद्ध सांसारिक बंधनों से मनुष्यों को दुखी होते रोकने के पवित्र कार्य में विघ्न सन्तोषी हठी दुराग्रहियों ने दुःखित करने में कसर नहीं रखी है। इतने पर भी पूर्ण धैर्य का अवलम्बन है। आपको विदित होगा कि मेरे पूज्य पिता इनके उपदेशामृत से अन्तर्जातियों को एक करनेके लिये एक आदर्श रूप से कार्य करने को तत्पर हुए थे।

मनहर—हां ! परन्तु मुझे यथाशक्ति आज रात्रि में ही उनके पास जाना चाहिये।

भद्रबाला—भृगुपुरे से ज्योतिपुरे का जो सीधा रास्ता है वह दूर पड़ता— बीच में मेरा प्रारब्ध जो आपको यहां लाया। और यहां से जाते मार्ग में दो बड़े नाले आते हैं जो कि इस वृष्टि से बढ़े होंगे। प्रातःकाल के सिवाय तथा जिस मार्ग से आये हैं उसी मार्ग पीछे फिरे सिवाय अन्य मार्ग नहीं है।

मनहर—जिस मार्ग से हम आये हैं उसी मार्ग मुझे वापिस यहां से ले जायें ऐसे कोई परिजन तो आपके यहां नहीं हैं ?

भद्रबाला—इस बगीचे के पूर्व की ओर पास ही कपास ओटने वाले चार पांच किसानों की झोपड़ियां हैं और वहां से कुछ ही दूर पर ' कपास से कपड़ा ' नाम के कारखाने के बीसेक व्यक्ति रहते हैं किन्तु वे दिन भर के अथक परिश्रम के कारण थके हुए होने से घोर निद्रा में होंगे।

मनहर—बात यह है कि गुरूजी को प्रातःकाल आठ बजते पहले कुछ उत्पात खड़ा करके उस मिस से मार डालने के लिये कितने ही दुष्ट लाने का प्रपंच रचा जा चुका है।

भद्रबाला—मुझे तो मेरे पूज्य पिताजी ने सद्‌गुरु श्री विष्णुप्रसादजी की की दैवी सामर्थ्य के प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न करादी है। आप निश्चिन्त यहां रात्रि व्यतीत करने की कृपा करें प्रातः पांच बजते पहिले पांच दस मनुष्यों के बिदा कर देने में मैं अन्तःकरण से तत्पर

मनहर—आप अपने पूर्ण आत्मबल पूर्वक विचार एवं मनन करके मुझे कहें कि क्या प्रातःकाल में गुरूजी के दर्शन कर सकूंगा ?

भद्रबाला—एक घड़ी बाद यदि यहां भूकम्प होने का हो तो क्या चमड़े की थैली में रहने वाला बन्दी आत्मा कुछ जान सकता है ?

मनहर—तथापि धर्मराजा ने एक प्रश्न कर्ता से कहा था कि 'कलआना' तदनुसार वह यह सोच कर नगाड़ा बजाने बैठ गया था कि 'घड़ी पल की कुछ खबर नहीं है' किन्तु २४ घण्टे तो मैं जीवित रहने का हूं ही कारण कि ऐसा न होता तो धर्म राजा 'कल आना' नहीं कहते।

भद्रबाला—आप तो देवलोक की बातें करते हैं। तथापि आपकी पूर्ण गुरु भक्ति से उत्पन्न आज्ञा में समाई हुई शक्ति मुझे यह कहने के लिये प्रेरणा कर रही है कि अभी गुरूजी को आप चिरकाल तक देखेंगे। उनके पास ज्वालाप्रसादजी, चार छै अन्य शिष्यों को लेकर आज ही गये हैं ऐसा सुना है। इस लिये आप निश्चिन्तता पूर्वक थोड़ा विश्राम लेकर इस आश्रम को पवित्र कीजिये। मेरी कुछ दुःख कथा श्रवण कीजिये। दुःखियों के दुःख सुनने में बहुत पुण्य समाया हुआ है। अभी घड़ी में एक बजेगा—चार बजे बाद तो आपको प्रयाण करना ही है। मेरी दुःख कथा यदि बड़ी होजाय तो क्षमा कीजियेगा। मैं आप से यह बात कह रही थी कि महाराज विष्णु प्रसादजी के उपदेशामृत से मेरे स्वर्गस्थ पिता अपनी [illegible]ज्ञातियों को एक करने में अत्यन्त परिश्रम कर रहे थे और [illegible] में दृष्टान्त रूप से—

मनोहर—तपस्विनी मन्त्रबाला ! आप कहने का व्यर्थ परिश्रम क्यों करती हैं। नैसर्गिक सम्बन्ध को जानने का हृदय ने जहां अधिकार प्राप्त किया हो वहां क्षुद्र जिव्हा क्या विशेषता बता सकेगी? पूर्व काल में एक ही ब्राह्मण ज्ञाति में से समय के प्रभाव से अनेक प्रकार के कलह प्रसंगों द्वारा उस ज्ञाति को छिन्न भिन्न कर डालना—परिणामतः ऐसी भिन्न २ उप जातियों के मनुष्यों का संसार के अनेक क्लेशों में जीवन व्यतीत करना—इन क्लेशों के परिपाक के परिणाम स्वरूप पूर्व कालीन शास्त्रकारों द्वारा पुनः उस ज्ञाति को एकत्र करने के कार्य में बड़ा परोपकार है—यह समझ कर मृत्युलोक पर 'आधुनिक नेता' रूप में अवतरित होना; समस्त ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यों में क्लेश से उत्पन्न हुई इन उप जातियों के एकीकरण के लिये जाग्रति उत्पन्न करना; आधुनिक अधम स्थिति पर त्याग वृत्ति का उत्पन्न होना; मेरे पूज्य पिता और महाशय पातञ्जलि की वृत्तियों को भगवान विष्णु प्रसादजी के सदुपदेश से पोषण मिलना; इसमें अपने उभय पक्षकारों की भी उल्लास पूर्वक सहानुभूति मिलना तथा मेरे पिताश्री का संस्कृत जानने वाली बालिकाओं को पारितोषक देने के लिये एकत्र करना; उसमें आपका उत्तीर्ण होना और अन्त में मेरा चकित होना; उसी समय से नैसर्गिक स्नेहांकुरों की स्फूर्ति होना; आपकी सहचरी जो अभी हमको 'गंगा' पर मानो सत्कार के लिये दोनों सन्मुख आयी थीं और जिनमें से एक जो यहां निद्रा में पड़ी है, उस—सुमति—का आना, आपकी स्नेह व्यथा का वर्णन करना, क्या ये सारे संयोग अपने भावी सम्बन्ध की अनेक निष्ठाओं को वर्णन नहीं करते, जो आपको वृथा—

भद्रबाला—अरे ! मैंने तो ऐसी किसी सहचरी को आपके पास भेजने का अविवेक किया नहीं है।

मनहर—इस सहचरी द्वारा किये गये वर्णन को अक्षरशः मैंने स्वीकार किया था, अतः इसमें अविवेक नहीं समझें, किन्तु 'दाम्पत्य स्नेह जगत् में मूर्तिमान हो तो वह अपना निवास स्थान करने आप दोनों के विशुद्ध अन्तःकरणों को ही पसन्द करेगा' इत्यादि कह कर आपकी इस वाचाल सहचरी ने मुझे सविस्तर आपका वृत्तान्त कहा था जो कि बड़े ही आनन्द से मैंने सुना था। अनुचित विशेषणों के लिये क्षमा करें, किन्तु मुझे यह भान हुआ था वह तो ठीक था ना ? श्रीमन्तों के अन्तःपुरों में प्रेम कलह प्रसंग में समाधान के लिये ही योजित की गई ऐसी इस 'लम्ब जिव्हा' को भद्रबाला ने ठीक ही भेजा है।

'लम्ब जिव्हा' का नाम सुनते ही पास ही के एक बाघम्बर पर निद्रा भूत हो इस प्रकार सोयी हुई सुमती हँसती हँसती खड़ी होगई। इसके पास ही सोयी हुई धीमती निद्रावश प्रतीत हो रही थी।

भद्रबाला—अरी–सुमती ! तू यहां से घड़ी भर हिली नहीं है तब भृगुपुरे किस प्रकार पहुंच गयी और यह क्या अपराध कर डाला ?

सुमति—क्षमा कीजिये, कुछ समय पहिले जब महाराज विष्णुप्रसादजी ने अपना आश्रम पवित्र किया था, तब यहां कथा हुई थी। तत्पश्चात् महाप्रसाद देने मैं भृगुपुर पहुंच गई थी और किसी प्रकार की अतिशयोक्ति के जो देखा था, वही कहा था।

भद्रबाला—तब तो आज से तेरा नाम ' लम्ब जिह्वा ' रखूंगी।

मनहर—मेरे कहने का तात्पर्य यह था कि इन सारे संयोगों पर विचारते सब शास्त्रों की मर्यादा से भिन्न एक परम पवित्र तपस्विनी ब्रह्मचारिणी के समक्ष पहले वृत्तान्तों की पुनरुक्ति करना अनुचित है। मेरे जितना ही आपके विशुद्ध अन्तःकरण को वह सुविदित होना चाहिये; मेरे और आपके परम पवित्र पिताओं की आत्मायें इस स्थान पर अपने साथ ही होनी चाहिये। और उनकी आज्ञा हमको मान्य होने की इस वार्तालाप-से दोनों परम प्रसन्न होते होंगे। अतः शास्त्र की मर्यादा रखने के लिये योजित सप्तपदी क्रिया के अतिरिक्त लग्न विधि में कुछ भी न्यूनता अब नहीं रही प्रतीत होती। अब हृदय को क्लेशित करने की आवश्यकता नहींहै।

श्रीमती—(निद्रा को त्यागती हुई) लग्न विधि का सारा साहित्य तैयार है-लाऊं ?

भद्रबाला—अरे अधीरी ! क्या तू भी जाग रही है ?

मनहर—आपके हित के लिये इनकी आकांक्षा मात्र इनकी सेवा बुद्धि को सूचित करती है।

भद्रबाला—ये सेवा बुद्धि से उत्पन्न होने वाली लगन केवल अमिश्रित नहीं है। यौवनावस्था के प्रभात में एक प्रकार का स्वाभाविक कुतूहल उत्पन्न होता है। देखिये, आपके गाड़ीवान रामाजी चौधरी को इस सब से कुछ प्रयोजन ही नहीं है !

रामाजी—मुझे किसने याद किया ? भैय्याजी, क्या गाड़ी जोड़लूं ?

मनहर—रामाजी, गाड़ी तो भाग गई ना ?

रामाजी–हां, हां—समझा तब क्या करूं ?

मनहर—अभी घण्टे भर की देरी है, तब तक और सोलो।

रामाजी—भैया ! यात्रा में कहीं नींद आती होगी ?

मनहर—तुम ही तो कहते थे कि मृत्युलोक की यात्रा में मनुष्य सोया करते हैं।

रामाजी— हां, उसमें भी नहीं सोना चाहिये और ऐसी छोटी यात्रा में भी नहीं सोना चाहिये। कितने बजे होंगे ?

इसी समय मानो प्रत्युत्तर देते घड़ी में दो बजे। सुमति तथा धीमती दोनों उठ खड़ी हुईंऔर कुछ कार्य में लगीं। स्फटिक पाषाण की प्रतिमा सी निश्चल भद्रबाला तो बैठी ही रही। उनके वार्तालाप में रामा चौधरी भी शामिल होगया। तत्पश्चात् प्रातःकाल की शंकर पूजा की तयारी के लिये भद्रबाला उठी, और उधर रामा चौधरी ने 'वैष्णव जन तो तेने कहियें जे पीर पराई जाने रे' 'रात रहे जाहरे पाछली पट् घड़ी साधुपुरुष ने सुई न रहवू" इत्यादि नरसी महता की सुन्दर प्रभातियां गाकर, वातावरण को पवित्र कोलाहल–मय बना दिया।

चार बजे धीमती दो सुन्दर घोड़े लेकर आई। बरसात रुक गई थी, भजन के परिश्रम से रामा चौधरी फिर लेट गया था, शांत रात्रि में व्याजखोरों के व्याज का अनुकरण करती सदा चहचहाती तमरे की बोली केवल सुनाई पड़ती थी। अनिमिष नेत्रों से मनहर को देखती, तथा उनके द्वारा वार वार मनहर की प्रतिमा को हृदय में स्थापित करती भद्रबाला बैठी थी। ऐसे में ही दीपक के प्रकाश की मर्यादा पर पैरों का आहट सुनाई पड़ा।

'कौन ? ' भद्रबाला ने पूछा।

'लम्ब जिव्हा ! ' कहती सुमति पुष्पों के दो बड़े हार लेकर आई।

'कहे हुए वाक्य वापिस ले लेने का यन्त्र तो मनुष्य की बुद्धि नहीं शोध सकती' मनहर ने कहा।

श्रीमती—क्रियमान जैसे संचित को भस्मीभूत कर देता है, उसी प्रकार कहे गये निर्मल वचन पहिले के शब्दों की कटुता को भस्म कर देते हैं, परंतु ये 'लम्बजिव्हा' शब्द तो आपके पवित्र मुख में से निकलने के कारण इसके लिये प्रसाद सदृश है। मेरे लिये भी ऐसे ही कोई शब्द की योजना की होती तो मुझे बड़ा सुख मिलता।

भद्रबाला निःशब्द उठी। उसके देह में उस समय अन्तःकरण होने की उसको कुछ प्रतीति नहीं थी। मनहर भी पाषाण प्रतिमा सदृश खड़ा हो गया। दोनों की जिव्हा हृदय के पास शब्दों की याचना करने गई,किंतु हृदय के स्थान पर हृदय तो था ही नहीं। मनहर के गले में भद्रबाला ने एक हार पहिनाया और दूसरा गुरुजी के लिये रामा चौधरी को दे दिया। अश्रुजल से भीगी नेत्र की कीकियों ने पैर के अँगूठे पर मार्जन का मानो काम कर रोमांचित कर दिया, तभी मनहर ये जान सका कि भद्रबाला झुक २ कर उसको प्रणाम कर रही है। 'सावचेत रहिये' इतने ही शब्द बल पूर्वक कह कर वह घोड़े पर बैठ गया, पीछे से दूसरे घोड़े पर रामा चौधरी भी बैठ गया, इतने में ही 'कपास से कपड़ा' वाले कारखाने से छै सात जनों का समूह आ पहुंचा और दोनों ने प्रयाण किया।

❀ तीसरा परिच्छेद ❀

प्रवाह के विरुद्ध प्रयोग।

ज्योति पुरे के पवित्र आश्रम के एक भाग में दस बारह मुमुक्षु जनों में कितने ही पुस्तकों के पृष्ट पलट रहे हैं और कितने ही महात्मा विष्णुप्रसाद जी की आज्ञानुसार लेख लिख रहे हैं। इस मकान के ऊपर के खण्ड में महात्मा विष्णुप्रसाद जी, चित्त वृत्ति अस्वस्थ होने के कारण लेट रहे थे. और अपनी आत्मा के साथ मानो वाद विवाद करते हों, उस प्रकार आत्म सम्भाषण कर रहे थे।

'जिस समय में, हिंदू जन समूह का मत अनिच्छित दिशा में बहता हुआ देखने में आवे ऐसे समय में विरुद्ध दिशा में उपदेश करने वाले का मार्ग बड़ा कठिन होता ही है! जगत में सर्वत्र ऐसा ही हुआ देखने में आता है। न्यूटन ने संसार को एक नया सिद्धांत सिखलाने का साहस किया। जगत ने विरुद्धता प्रदर्शित की। न्यूटन ने इस विरुद्धता को एक प्रकार का तप माना, अपना मत नहीं छोड़ा। कारण कि वह मत अन्तःकरण पर अधिकार जमा चुका था, और अन्तःकरण प्रभु का स्थान है—ऐसा उसकी अटल मान्यता थी। ऐसा ही कुछ मार्ग मेरे सदृश जातियों के समुदायों को एकत्र कर वर्णाश्रम धर्म अबाधित सुरक्षित रखने का उपदेश करने वालों का आपड़ा है। समस्त पृथ्वी पर हिन्दू प्रजा को पहिचानने वाला तत्व केवल चार वर्ण हैं और वे जो अपने मूल स्वरूप में पुनः संस्थापित हो सकें तो हिंदू जाति के अनेकों अनिष्ट स्वतः नाश को प्राप्त हों। तथापि हिन्दू प्रजा में अब एक ऐसा तत्व प्रवेश हुआ है, ऐसे हिंदू उत्पन्न हुए हैं कि जो पूर्व काल से चली आती वर्णाश्रम संस्था को छिन्न भिन्न कर तोड़ डालने में जीवन गला रहे हैं। ऐसे लोग हिंदू प्रजा के उदय के मनोराज्य रच कर–वर्णाश्रम संस्था नष्ट हो तभी हिंदू

प्रजा की उन्नति हो—यह मान कर तन तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं, परंतु ईश्वर की इच्छा वैसी न होने से उनके प्रयत्नों को सफलता नहीं मिलती है। एक दो उदाहरण कुछ ऐसे बनने पर कि जिसमें उनकी इच्छानुसार इस संस्था के किले में खाँचा पड़ता है तब अवश्य वाह वाही करने लगते हैं। तथापि सूक्ष्म दृष्टि से देखने वालों को तो प्रतीत होगा कि हिंदू जन समूह तो बिलकुल बधिर है। ये क्या बतलाता है ? प्रयत्न और उसकी परिणाम गत घटनायें ये एक प्रकार की प्रकृति की अर्थ सूचक भाषा हैं और इस प्रकृति की अर्थ सूचक भाषा द्वारा ईश्वर अपनी आकांक्षाएँ संसार को बतलाता है। जन समुदाय के सांसारिक, राजनैतिक नेताओ ! आप लोग इस भाषा का अभ्यास करें। लाखों मनुष्यों को अमुक मार्ग से चलने का उपदेश देने के साथ ही उसके परिणाम का उत्तरदायित्व आपके सिर है। क्या ऐसा मानने का जन समूह का अधिकार नहीं है ? वर्ण व्यवस्था को नष्ट करने के प्रयत्न करने का उपदेश देने वाले 'जात्याभिमानिओ' ! कृपा कर दीर्घ दृष्टि पूर्वक विचारो कि वास्तविक उदय यह संस्था रखने में है कि उसको नष्ट करने में है ? श्वेत देवता समान जाग्रत स्वदेशाभिमान की अपूर्व अभिलाषाओं से प्रेरित आप उपदेश दे रहे हैं यह बात स्वीकार है, परोपकार की पवित्र अभिलाषाएँ आपको विचलित कर रही हैं—यह भी स्वीकार ! जन समूह को शीघ्रता से उदय की ओर प्रगति कराने में आप स्वात्मार्पण कराने तत्पर हैं—यह भी स्वीकार ! परंतु इस वर्ण व्यवस्था के नष्ट करने के आपके उपदेश से करोड़ों धार्मिक हिंदुओं के अन्तःकरण दुःखित हो रहे हैं, करोड़ों की इच्छा शक्ति आपके इस कार्य के वेग को रोक रही है। जिस वेग से वर्ण व्यवस्था नष्ट करने की गाड़ी अपने हिसाब से आप चलते बतलाते हैं, उस वेग को देखते वह पर्वत तोड़ने का कितने वर्षों में पार पड़ेगा, जिसका अन्दाज निकालना कठिन है, तो फिर आप यह आकाश कुसुम प्राप्त करने जीवन का अमूल्य समय किस लिये व्यतीत कर रहे हैं ? क्षण भर जैसे जीवन में ब्रह्माण्ड को हाथ

में लेने के मिथ्या प्रयत्नों की ओर अपनी शक्ति का व्यय क्यों कर रहे हैं? मान लीजिये कि वर्ण व्यवस्था कहने में आती है उतनी पुरानी-वेद वर्णित नहीं है, प्रमाण में आधुनिक है और समय के अनुसार मनुष्यों की आवश्यकताओं को नियमित करने के लिये बांधी गई है,ऐसा ही हो-तथापि जो संस्था हजारों वर्ष की अपनी हयाती पूरी कर रही है, जो संस्था तोड़ने के पहले महान् प्रयत्न हो चुके हैं इतने पर भी जिसके किले में से कंकरी खसकी नहीं है। जो संस्था अपने मूलरूप में आजाय तो हिन्दू प्रजा सांसारिक शान्ति एवं सुख का संपूर्ण अनुभव कर सकेगी; उसको किस लिये नष्ट कर डालना? पन्द्रह बीस वर्ष तक किसी मनुष्य के छप्पर का पानी उसके पड़ौसी के छप्पर पर होकर गिरता है तो उसके छप्पर के पानी के निकास के लिये उसी प्रकार गिरने देने का उसका अधिकार (Prescriptive right) बतलाने की तकरार आप ला सकते हैं, अमुक नदी का बहाव अमुक वर्षों तक बहने के कारण से उसे उसी प्रकार सुरक्षित रखने की बात भी ठीक गिनी जाती है, एक राज्य का अमुक हक कितना ही काल दूसरे राज्य को देने के कारण से वह हमेशा का होजाता है, उससे विरुद्ध रीति करने से क्लेश उत्पन्न होता है तो फिर करोड़ों मनुष्यों के अन्तः करण में हजारों वर्षों से प्रविष्ट करोड़ों मनुष्यों के जीवन क्रम का एक भाग बनी हुई इस संस्था को-केवल उसका बुरा भाग ठीक न करते--समूल नष्ट करने से कितने व्यक्तियों के अन्तःकरणों को दुखाने की हिंसा आपके सिर आती है?"

उपरोक्त विचार विनिमय करते जब [illegible]ज विष्णुप्रसादजी जो मकान के ऊपरी खण्ड में लेट रहे थे, उसी समय नीचे बैठे हुए मुमुक्षुओं में से ज्वालाप्रसाद ऊपर आये।

'प्रभो! आज कथा का समय होगया है, सुनने के लिये मुमुक्षुओं की संख्या कुछ विशेष है। चार दिन पहले रात्रि को मण्डल में हुई चर्चा

से उत्पन्न हुए क्लेश ने आपके स्वास्थ्य पर असर डाला है। आपकी आज्ञा हो तो आज कथा बन्द रखने का प्रबन्ध करें।'

विष्णुप्रसाद—" हां, यही ठीक होगा।"

आज्ञा होते ही ज्वालाप्रसाद ने नीचे भक्त जनों से कह दिया। महाराज को प्रणाम कर अपने २ घरों को जाने वाले भक्त जन एक एक करके ऊपर आने लगे, तब महात्मा विष्णुप्रसाद जी स्वयं नीचे आगये। सबों ने समाचार पूछ कर विदा मांगी।

महाराज विष्णुप्रसाद ईश्वर के एक परम भक्त थे! सत्ययुग के आदर्श मनुष्य तुल्य प्रभु ने उनको पृथ्वी पर भेजा था-ऐसा इस तरफ के लोगों का अनुमान था। इन्होंने बहुत काल पूर्व ही संसार का त्याग किया था, भगवां (जोगिया) कपड़े पहनना उनको निष्प्रयोजन प्रतीत होता था। इनकी अवस्था भी ठीक कही नहीं जासकती थी, किन्तु इनकी लम्बी श्वेत डाढ़ी युवावस्था को पूरी तरह से वश में रख स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रत्येक नियमों का विधिवत् पालन करना सूचित करती थी। परोपकार यह इनका मुद्रा लेख था। पचीस तीस मनुष्य इनके दर्शनार्थ प्रायः नित्य आते थे और उनके सत्कार के लिये इनके शिष्यों ने उत्तम व्यवस्था कर रक्खी थी। वानप्रस्थ स्थिति प्राप्त करने पश्चात् भी इनको ज्ञाति ही के सांसारिक प्रश्न इनके उपदेश के विषय बन गये थे। इनके उत्तम साहित्य के विकास से अनेकों मनुष्य उपज्ञातियां मिल जाने के सम्बन्ध में सम्मत होगये थे, तथापि कितने ही पुराने विचार के अग्रणीजन ऐसा करना नहीं चाहते थे, कारण कि चालू स्थिति के निभाने में ही कितनों की आजीविका चल सकती थी। ऐसे पुरुषों ने अपनी इच्छानुसार कितने ही युवकों को बनाकर कुछ समय से एक सदा छिद्र सन्तोषी-त्रासदायक भयंकर मण्डल विष्णुप्रसादजी और उनके शिष्यों के लिये खड़ा किया

था। इस टोली ने विष्णुप्रसादजी के उपदेशों से उन्मत्त ब्राह्मणों की उपजातियों के एकीकरण के नव अंकुरों को नष्ट करने के अनेक प्रयत्न किये थे, किन्तु जन समूह में इस मण्डली की कुछ मान्यता न होने के कारण विष्णुप्रसादजी के उद्देश्यों को उलटी पुष्टि मिलती थी। इससे उस मण्डली के नेताओं का वैर बढ़ा था। उन्होंने आपस में कुछ द्रव्य एकत्रित किया और विष्णुप्रसादजी को मार डालने के लिये द्रव्य देकर दुष्टों को ठहराने का विचार किया, परन्तु द्रव्य लेकर भगवान् के भक्त का खून करने के लिये कौन जन्म का पापी तैयार हो ?

❁ चौथा परिच्छेद ❁

शिष्य की धृष्टता।

भद्रवाला के स्वागत का दृश्य प्रति क्षण दृष्टि के सन्मुख रखते, अब आगे के कार्य में लक्ष देने के लिये तत्पर होते तथा महाराज विष्णुप्रसादजी की मूर्ति दृष्टि समक्ष रखते हुए मनहर और रामा चौधरी वेग पूर्वक अपना प्रयाण कर रहे थे। पिछली रात की वर्षा ने प्रकृति के लीलामय उद्यान–उपवनों को स्वच्छ कर दिया था, तथापि मनहर के मन को वे किसी प्रकार भी आकर्षित कर नहीं सकते थे रामाजी ही कुछ बात करनी चाहिये यह सोच कर कभी २ कोई प्रश्न कर डालता था।

'भैया, आपसे एक बात पूछता हूं कि आपको गुरुजी के विषय के समाचार किस प्रकार मिलते होंगे ?'

मनहर—रामाजी ये सब अवकाश की बातें हैं।

आठ का समय होते ज्योतिपुरा भी समीप आगया था। इतने ही में एक गोत्र आया। इस गांव के बाहर कूए के समीप दस बीस स्त्रियां एकत्रित थीं। रामा चौधरी ने पास जाकर देखा तो एक बारह तेरह बरस की बालिका को आभूषणों से सजाकर सुसराल भेजा जा रहा था और वह बालिका हृदय फाड़ २ कर रो रही थी। रामाजी को पीछा बुला लेने को मनहर उधर बढ़ा ही था कि वह बाला स्त्री मण्डली में से सिंहनी की तरह निकल कर कुए में कूद पड़ी। मनहर ने उस बाला के सम्बन्धियों पर दृष्टि डाल कर उन्हें पहचाना और पीछे आने वाले परिजनों में से एक समझदार सवार को आज्ञा देकर कूए में कुदाया। ये सब मानो एक पल भर में ही हुआ। अनावृष्टि का साल होने तथा आषाढ़ में ही बरसात होने से कूए में थोड़ा ही पानी था। अन्दर कूदे सवार ने सत्वर बाला को ऊँचा उठा लिया और उसको ऊपर लाने के लिये मदद मांगी। तुरन्त हां अन्य दो सवारों ने कूए में रस्से डाले तथा एक ढला उतारा और उस बाला को कुशलता पूर्वक ऊपर ले आया गया। पहले कूदे हुए सवार को ऊपर आया देखते ही इस बालिका की माता ने रोना प्रारम्भ किया, किन्तु उस सवार ने कहा कि "यह सब वृथा है"। बाला को एक खटोले पर सुलाया गया। इसको कोई चोट नहीं लगी थी, परन्तु कुछ बेहोशी हो—ऐसा मालूम होता था। मनहर ने नीचे उतर कर अपने गले का हार उस बालिका को पहिनाया। इतने में ही जादू समान मधुर पुष्पों के परिमल से उस बालिका के मुख से 'भद्रबाला—भद्रबाला' ऐसा शब्दोच्चार हुआ। मनहर और उसके साथियों ने उधर तुरन्त अपना मार्ग पकड़ा।

रामाजी—भैया, ये इन्द्रजाल का सा दृश्य मुझे कुछ समझ नहीं पड़ा।

मनहर—रामाजी, ये सब घटना तुम्हारे ऊपर के प्रश्न के उत्तर में ही घटी है। गुरूजी के संबन्ध में जो प्रपंच (षड्यन्त्र) रचने में

आया था उस टोली में बालिका का पिता भी था। ये संभवतः भद्र बाला के पास जारही थी कारण कि वही ये समाचार देने आई थी कि गुरुजी के विषय में अनिष्ट विचार योजना हो रही हैं। इसका विवाह प्रातः जो प्रथम कूए में कूदा था उसके साथ होने को था और ऐसी ही उस बाला की स्वयं अभिलाषा थी और उसके माता पिता भी सम्मत थे। ये भद्रबाला के उपदेश का परिणाम होना चाहिये। परन्तु टोली के मनुष्य एक दिवस अर्ध रात्रि में कहीं इकट्ठे हुए थे जिन में इसका पिता भी था। उसने ब्यालू नहीं किया था इसलिये उसे दूध देने के लिये यह बाला वहां आई थी, वहां जब उसको धमकाया गया तो सुकुमार बुद्धि और अवस्था वाली उसने राक्षसी प्रकृति वाले उस मण्डल को उपदेश देने का यह साहस किया जो कि सर्वथा उचित समय अनुकूल था। दो तीन दिवस में ही इस बाला को कोई अयोग्य जगह विवाह कर देने की सलाह हो गई थी और आज वह सुसराल जाती थी।

रामाजी–सुमति धीमती से मेरे पास में ही खड़ी हुई कह रही थी कि ये फूल तो सम्भवतः कुम्हला जांयगे परंतु यह हार सुरक्षित रहेगा। सुवर्ण के तार के शब्द बनाकर एक श्लोक रूप में उस पर ये फूल गूंथे गये हैं।

मनहर के हृदय में कुछ साहजिक पश्चाताप हुआ। स्नेह स्मरण हार! पर अब तो उसका विचार विशेष दुःखप्रद होगा।

घोड़ों को अब तेज दौड़ाया, रामा चौधरी घोड़े को पकड़ते भाग रहा था क्योंकि घोड़े की सवारी का उसको अभ्यास नहीं था। देखते २ ही ज्योति पुरा आगया। तारागण में चन्द्र के समान बचे हुए भक्त मंडल

में गुरुजी को खड़े हुए देख कर मनहर ने वारम्वार आल्हाद पूर्वक प्रणाम किये। और आश्रम में से सुमति द्वारा दिया गया दूसरा पुष्पहार जो रामा चौधरी के पास था लेकर उनके गले में पहराया। जिसको कि गुरुजी ने पीछा मनहर के गले में डाल दिया और बड़ी प्रसन्नता पूर्वक अपने परम भक्त के सुपुत्र से मिले। इसी क्षण में एक पिस्तौल मानो भक्त मण्डल में से छूटी। दो धड़ाके हुए! और चलाने वाला, भागो! दौड़ो! हो! हो! दगा! दगा! हो गया! कह भागा। कोलाहल करने वालों में से कितने ही पिस्तौल छोड़ कर भागने वाले के पीछे दौड़े और बाकी के गुरुजी की सम्हाल में लगे। गुरुजी के बाये हाथ में पीछे की तरफ और मनहर के दाहिने पांव की जांघ पर पीछे की तरफ गोली लगीं थीं। दोनों नीचे पड़े थे। उनको एक कमरे में पहुंचा कर शेष बचे भक्त उन सम्हाल में लग गये थे।

ज्योतिपुरे में पुलिस अधिकारी रहता था। एक दो चोरी के मामले में चोरी निकलवाने की अयोग्ता से अपने प्रधान की अप्रसन्नता का कारण बन गया था। इससे उसका 'शीटरोल' बिगड़ गया था और किसी बड़े मामले में अपराधी को पकड़ कर अपनी बिगड़ी को सुधारने की चेष्टा कर रहा था। ऐसे में ही उसको इस बात की खबर मिली और झट दौड़ पड़ा। उसके पीछे से दो सिपाही भी दौड़े और वारदात कहां हुई अपराधी किस तरफ भागा इत्यादि तलाश करने में चिन्तित थे कि पिस्तौल छोड़ने वाले को मजबूती से पकड़े चार आदमी पुलिस थाने की तरफ आते देखा, इसके शरीर पर खून का कोई दाग तक नहीं था। कहाँ से हो ? न पिस्तौल ही पकड़ी गई थी। इससे फौजदार भ्रम में पड़ने लगा क्योंकि माल बरामद और अपराध की पक्की साबिती हुए बिना उनके हाथ के पहिले मामले ही बिगड़ गये थे। केवल अपराधी! पकड़ने वाले स्वयं सम्भव है बदल जांय। विशेष में उनको यह पता लगा कि

महाराज विष्णुप्रसादजी और मनहर, जिनको एक २ गोली लगी है, वे बच जांय-यह सम्भव कम है। और विष्णु प्रसाद जी का तो श्वास चल रहाहै, अतः उनकी अन्तिम दशामें उनका वक्तव्य लेनेके लिये वे एक दूसरे अधिकारी को साथ लेकर उनके पास गये। जहां से पिस्तौल छोड़ी गई थी वह वहीं फेंकदी गई यह जब फौजदार को मालूम हुआ तब उसे कुछ शान्ति मिली। इसने वहां जो उपस्थित थे उनके नाम लिख लिये। पिस्तौल अपराधी के हाथ में रखकर देखा कि वह उसके हाथ में ठीक (fit) जमती है या नहीं और उसका पंच कयास कराया। इस स्थान का एक सामान्य नकशा नोट कर लिया और तत्पश्चात न्यायाधीश के साथ जिस कमरे में महाराज विष्णुप्रसाद जी और मनहर को सुलाया गया था, वहां गये। विष्णुप्रसाद जी दीर्घ श्वास ले रहे थे और सामान्य दृष्टि वाले को वे बेसुध प्रतीत होते थे। जिस समय मनहर को उन्होंने स्नेह पूर्वक हाथ पसार कर लिया था उस समय उनकी दोनों भुजायें उसकी बगल में थीं इससे उनके बांये हाथ में सीसे के चने के समान गोलियां लगी थीं। पुराने समय की सीसे की गोलियां छोड़ने वाली पिस्तौल थीं, जिसको डाक्टर ने सावधानी से शीघ्र ही बाहर निकाल लिया और उपचार कर दिया था। मनहर की जांघ में वैसी ही दूसरी गोली आर पार निकल गई थी और वह तो आनन्द पूर्वक हँस रहा था। थोड़े दिन की सम्हाल उपचार के बाद उसको आराम हो जायगा-ऐसा प्रतीत हुआ, किन्तु वृद्धावस्था के कारण विष्णुप्रसाद जी की स्थिति अधिक भयङ्कर न हो जाय इससे सचेत रहने के लिये अन्तिम वक्तव्य लेने न्यायाधीश उनके पास गये थे। थोड़ी देर में जब उन्होंने नेत्र खोले, तब उनसे पूछा गया—

"आपको अधिक कष्ट हो रहा है?"

विष्णु०—"मनहर! मनहर!!"

सबने कहा कि मनहर को भी गोली लगी है और वह पास में ही खाट पर पड़े हैं।

न्यायाधीश—विष्णुप्रसाद जी आपके ऊपर पिस्तौल चलाने वाले को फौजदार ने पकड़ लिया है। वह यह है। आप मुझे बतावें कि आपको मारने वाला यही है या अन्य कोई? इसको इसके अपराध के प्रमाण में दण्ड मिलेगा, आप चिन्ता न करें।

विष्णु०—जो मैं कहूं वह लिखिये—देह क्षण भंगुर है—न्यायाधीश ने लिखना आरम्भ किया—

"मेरे आश्रम में एक बार चोरी होगई थी—उस चोरी करने वाली भीलों की संगत में यह व्यक्ति जिसका नाम गोदड़शङ्कर या गोदड़ जी है, ब्राह्मण होते हुए भी मिल गया था। मैंने उसको क्षमा देकर कितना ही उपदेश भी दिया तब मनुष्य के कुछ सामान्य धर्म की ओर इसका लक्ष गया। इसका 'उदो' नामक एक लड़का है, जो बचपन में अधिक उत्पाती था इससे उसका नाम मैंने 'उद्धत' रख दिया था और बाद में वही नाम उसके माता पिता ने भी कायम रक्खा। इस लड़के को उत्तम शिक्षा मिले इसका मैंने प्रबन्ध कर दिया। गोदड़ में मेरा विश्वास है ऐसा कुछ २ मैंने दिखावा भी रक्खा, परन्तु मेरे हृदय के भीतर तो अभी विश्वास करना बाकी था। इसका लड़का पूर्ण विद्याभ्यास करले तो ब्राह्मण कुटुम्ब में या इनकी अन्तर्ज्ञाति में उसके योग्य कन्या तक के लिये मैंने प्रबन्ध कर लिया था।

परन्तु थोड़े ही दिवस हुए कथा में ही मैंने कहा था कि हिन्दू संसार के आधुनिक नियमों को देखते अनेक स्त्रियों को जो कष्ट झेलने पड़ते हैं, वे मेरे हृदय को अब असह्य हो गये हैं। ये दुःख मुझे देखने

पड़ते हैं, इससे तो मेरे देह को कोई गोली मार दे तो मैं उसका उपकार मानूं। गोदड ने चाहे जिस लालच से यह कार्य किया हो तो भी यह माना जा सकता है कि सम्भवतः उसने मेरी आज्ञा पालन करने के लिये यह किया हो। संसार उस पर मन चाहे आक्षेप करे मैं तो उसको निर्दोष मानता हूं। इसको शासन करने के कार्य में मेरी इच्छा उपयोग में लाई जाय तो उसको मैं विना शर्त क्षमा देने की आशा रखता हूं"

उपरोक्त वाक्य न्यायाधिकारी ने लिख लिये और विष्णुप्रसाद जी ने हस्ताक्षर कर दिये। अपने प्रेमाश्रु से बारम्बार विष्णुप्रसाद जी के चरण धोता गोदड उनके चरणों में गिर पडा।

पूर्ण प्रमाणों के अभाव में काम के कागज़ात बंद हुए और गोदड को ज़मानत पर छोड़ दिया गया।

विष्णुप्रसाद जी और मनहर को थोड़े दिन बाद पास ही की एक पहाड़ी गुफा में हवा बदलने के लिये उनकी इच्छानुसार ले जाने की तयारी हुई। शिष्य समूह में से उनकी आज्ञानुसार शिष्य भी साथ गये। क्षमा के अद्भुत मंत्र ने आस पास के वातावरण को पवित्र कर दिया। अनेक मनुष्यों के हृदयों में विष्णुप्रसादजी जैसे महात्मा के दर्शन के लिये उत्साह उत्पन्न हुआ। घर घर कुटुम्ब कुटुम्ब में इस घटना की चर्चा होने लगी। संसार में प्रेम के मंत्र प्रत्येक द्वारा उपदेश दिये जाते हैं किन्तु इससे तो सब मनुष्यों के हृदय इस मंत्र की उपयुक्तता समझने को उत्सुक होने लगे। प्रेम मंत्र की परिसीमा जगत ने प्रत्यक्ष देखली।

महिला उद्योग गृह, निराधार महिलाओं के आदर्श सदुपयोगी आश्रम तथा अन्य ऐसी संस्थाओं की अति वृद्धि के लिये निरन्तर प्रयत्नशील उपदेशिकाओं की सुव्यवस्था करने का उनका मागप्रनिक जीवन क्रम था। धर्मलक्ष्मी के प्रयत्नों के फल स्वरूप उनकी कन्या पाठशाला एक आदर्श संस्था थी, जहांसे निकले हुए भावी तीन स्त्री रत्नों भद्रबाला, सरयू, और निर्मला द्वारा भविष्य में अपना कार्य सम्हाल लिये जाने के आशातीत व्यवहार से वह अत्यन्त हर्षित थीं। सुदृढ़ विचार, उत्तम चरित्र, और स्त्रियों की उन्नति के लिये तीव्र हार्दिक इच्छा रखने में कौन श्रेष्ठ थी यह जानना कठिन था, तथापि तीनों के मार्ग पृथक २ थे। भद्रबाला विशेष धर्मपरायण थी। प्राचीन शिक्षा प्रणाली पर उसको अत्यन्त प्रेम था। प्राचीन पवित्र समय, पूर्व कालीन महर्षियों के आश्रम तथा पूर्णकालानुसार सारे संस्कारों की आर्यावर्त में पुनः स्थापना हो ऐसे स्वप्न प्रदेश में वह सदा निमग्न रहती थी। संस्कृत भाषा की उन्नति द्वारा संस्कृत में साहित्य और नाटक प्रचलित हों और जन समुदाय का विशेष भाग उसमें रस ले ये उसके सुन्दर से सुन्दर स्वप्न थे। अपने ही सदृश उत्तम चारित्र्यवान और विशेषतः स्वजातीय पुरुष से विवाह करे अन्यथा आजीवन कौमार्य व्रत धारण कर जन और स्त्री समाज की सेविका बने रहने में वह अपना मान समझती थी। उसने ये गुण मनहर में पाये। सांसारिक सुख की आकांक्षा रखते हुए समान विचार वाले व्यक्ति के सहवास द्वारा अपने मनोरथों की सिद्धी में दुगना योग मिलने के विचार से उसको वह अपने अन्तःकरण में स्थान दे चुकी थी, अतः उसके अन्तःकरण के लेन्स (शीशे) पर केवल मनहर की ही छाप पड़ सकी थी। इस अन्तःकरण के लेन्स (शीशे) पर तथा स्वयं उस पर पड़ी हुई छाप के जीवनांश पूर्ण रूप से अङ्कित हो चुके थे। मनहर के साथ एक दो बार मिलने के प्रसंग प्राप्त न होते तो अवस्था प्राप्त होने

पर वह इच्छा पूर्वक किसी प्रयत्न में पड़ती या नहीं, यह संदिग्ध बात थी कारण कि वह प्रारब्धवादी थी।

सरयू स्वप्न प्रदेश में विचरने वाली स्त्री नहीं थी। वह व्यवहार कुशल थी, पल पल का मूल्य आंकती थी और निरन्तर प्रयत्न शील रहती थी। सदुद्योग और सद्विचार में ही उसका समय व्यतीत होता था। अथक उत्साह और श्रद्धा पूर्ण सत्कर्म पूर्व के शुभाशुभ कर्मों को भस्मीभूत कर प्रारब्ध को भी क्षण भर एक ओर रख देते हैं, यह उसका मुद्रालेख था। बाल्यकाल में माता पिता रहित होजाने से यद्यपि वह दुःखित थी, तथापि अपने प्रयत्नों से ही अपना मार्ग निकाल लेने की उसको पूर्ण आशा थी।

A. K. Raul
Son of J. N. Kaul

निर्मला अपने नामानुकूल निर्मल हृदय की बाला थी। अवस्था में यद्यपि भद्रबाला और सरयू से दो वर्ष छोटी थी, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखनेवाले को बाल्यकाल के चारित्र्य किरणों के पीछे वह अपने को सदाचारी होने के स्पष्ट अनुमान कराती थी।

महेन्द्रप्रसाद और धर्मलक्ष्मी के लक्ष्मीप्रसाद, कुञ्ज बिहारी और मधुसूदन तीन पुत्र थे। लक्ष्मीप्रसाद की अवस्था २० बरस की थी और इसी अवस्था में उत्तम शिक्षा पाकर वह अपने माता पिता के सेवा कार्य में पूर्ण सहायक बन गया था। कुञ्जबिहारी और मधुसूदन क्रमशः चार और दो बरस के बालक ही थे। लक्ष्मीप्रसाद के सौन्दर्य, शिक्षा, चारित्र्य और सदुद्योग वृत्ति को देख कर उसका सम्बन्ध करने में लोग अपने को भाग्यशाली मानते, परन्तु इनकी ज्ञाति में कन्याओं की एक बड़ी कमी थी। पुरुषों की संख्या कम थी और विधवाओं से जाति भरी पड़ी थी।

निर्मला।

गुजरात के उत्तर विभाग में जंगली झाड़ियों तुल्य प्रदेश के भद्रिपुरा नामक एक छोटे से ग्राम में जन्म भूमि थी। आस पास के दो चार गांवों में ही उन ब्राह्मण रहते थे, जिसमें अनुमानतः तीनसौ पुरुष और हो जाती थीं। इनमें २९० के करीब विधवाएँ थीं। अशि का हित न रखने वाले समुदाय में सबसे पहिले ज्ञाति उत्पात लक्ष्य कराने वाला सारी ज्ञाति में एक अपराधी गिन लिया जाता है। ज्ञाति में कन्याओं की एक दम कमी होने के कारण कई एक कुल इतने संकुचित हो गये थे कि केवल विक्रय से कन्या लाने वाला तो पवित्र कुटुम्ब गिना जाता था। कुछ काल से साटे (बदले) की प्रथा भी अनिवार्य रूप से जारी करनी पड़ी थी। समुदाय छोटा होने के कारण वर-कन्याओं के सम्बन्ध में कोई कारण उपस्थित होने पर जन्म पत्रिकाओं को न मिला कर भी ज्योतिषी लोग विचार कर मार्ग निकाल देते थे। "मनुस्मृति में लिखा है कि देश काल का विचार करके शास्त्राज्ञा में उचित परिवर्तन किया जाय"। इस सूत्र को ऐसे प्रसंगों में आधार मान लिया जाता था, किन्तु यदि कोई साहसी पुरुष अपनी ज्ञाति के ही अन्य समुदाय में से वर या कन्या लाने की बात भी करता तो वह एक ज्ञाति का एक बड़ा अपराध करता था, अतः 'धोबी जाके क्या करे दीगम्बर के गाम' वाली कहावत के अनुसार ऐसी चर्चा बन्द ही रक्खी जाती थी। सेठ महेन्द्रप्रसाद ने एक-दो ऐसी चर्चा में अपना साहजिक अनुमोदन देकर विचार प्रकट किये तो उनको भी ज्ञाति के अगुआओं के विपरीत व्यवहार का भोगी बनना पड़ा था। इस अपराध का प्रायश्चित्त करने के लिये उन्होंने अपने गांव के पास ही के रेल्वे स्टेशन के समीप एक छोटासा 'सैनीटोरियम' बनवाकर उसमें ज्ञाति व्यक्तियों के लिये हर प्रकार की अनुकूलता करादी थी। उस पर भी अ

ते हैं ' इत्यादि २ अफवाहें उड़ाकर उस मकान को
बना दिया था।

रसाद को ज्ञाति वालों की प्रीति सम्पादन करने के प्रयत्न यह भी था कि लक्ष्मीप्रसाद की अवस्था विवाह योग्य हो ु ज्ञाति की कन्या एक लाख रुपया देने पर भी बिना साटा (ादला) किये मिल नहीं सकती थी। इस समय में साटे की निन्दित रीति करने के लिये यह कुटुम्ब किसी प्रकार तत्पर नहीं था और यदि तत्पर हो भी जाता तो कुटुम्ब में कन्या कहां थी? अतः महेन्द्र-प्रसाद और धर्म लक्ष्मी को लक्ष्मीप्रसाद के सम्बन्ध की पूर्ण चिन्ता हो रही थी। औदीच्य ज्ञाति की कितनी ही अन्तर्ज्ञातियों में एक पर दूसरी और दूसरी पर तीसरी इस प्रकार पांच पांच कन्याओं के टीके मिल जांय और अपने समुदाय की मर्यादित परिसीमा के बाहर कोई भी न आसके, यह एक प्रकार से अनुचित और जेलखाने से कुछ ही कम प्रतीत होता था। कौनसा मनु प्रगट होकर इस दुःख की पराकाष्ठा मिटा सकेगा! हिन्दू शास्त्रों के सिद्धान्त उनके वास्तविक स्वरूप में बतला कर कौनसा निस्वार्थी शास्त्री इस ज्ञाति के लोगों को समझा सकता है! सैकड़ों मा बापों के लड़कों को लड़की न मिलने और लड़कियों को लड़के न मिलने से संतप्त हृदयों को शान्त करने का उपाय बतलाने कौन खड़ा हो? अपने बहुमुल्य जीवन के भोग की निर्जीव कीर्ति की अभिलाषा किये बिना हिन्दू मा बापों के आंसू पोंछने के लिये अचल धैर्य प्रदर्शित कर ज्ञाति के सारे समुदायों को एक कर प्राचीन वर्णाश्रम स्थापन करने का परिश्रम उठाने की किसको पड़ी है? साधु, सन्यासी, उपदेशकों, देश सेवकों और आचार्यों के हृदयों द्वारा परम कृपालु परमेश्वर अपनी आज्ञा ज्ञाति के अगुआओं के कान तक पहुंचाने में जो ेलम्ब करता है, इसका कारण समझ में क्यों नहीं आता? क्या ज्ञाति

भूमि में भविष्य में ऐसा कोई भूकम्प होने वाला है कि समुदायों क
करने में लोग शून्य और वधिर बन गये हैं।

उक्त विचार महेन्द्रप्रसाद को निद्रा या तन्द्रा में हर समय घेरते थे। कितनी बार तो ये विचार उनको घण्टों निमग्न रखते थे। एक दिन प्रातःकाल जब वे इन्हीं विचारों में निमग्न बैठे थे, उसी सम मानो पुण्य उदय होता हो एक डाकिये ने उनको कुछ पत्र लाकर दिये। उनमें से समाचार पत्रों को एक ओर रख कर बाकी निज व्यवसाय सम्बन्धी पत्रों में निम्न लिखित आशय का एक पत्र निकला–

"दैवी सम्पत्ति विभूषित धर्मानुरागी श्रीयुत सेठ महेन्द्रप्रसाद जी की सेवा में —

"विपत्तियों के बादलों से घिरा हुआ, महाखंड में भी न हट सकने वाले दीर्घ विश्वास के साथ यह पत्र आपको रात्रि के दो ब लिख रहा हूं। इसमें की गई प्रार्थना यदि अस्वीकार भी होगी तो अ हृदय का भार केवल आप सदृश ही पवित्र हृदय के किसी सत्पुरुष समक्ष स्वीकार होगा, इससे कुछ अंश में वह भार कम होने में सन्तो मानूंगा।

"कहा जाता है कि दुनियाँ में अपना दुःख दूसरे के सामने रोने से कुछ लाभ नहीं है, किन्तु आपको यह पत्र लिखने की मुझे एक प्रेरणा हो रही है, जिसका कि विशेष खुलासा मैं नहीं कर सकता। हम लोगों की सांसारिक स्थिति एक अधमता को पहुंच गई है, कि जिसस उत्पन्न होने वाली चिन्ता लड़कियों के मा–बापों को इतना अधिक चिन्तित कर देती है कि वे योग्य अयोग्य का विचार कर नहीं सकते, अतः अमुक व्यक्ति को अमुक विषय पर लिखना हितकर होगा या
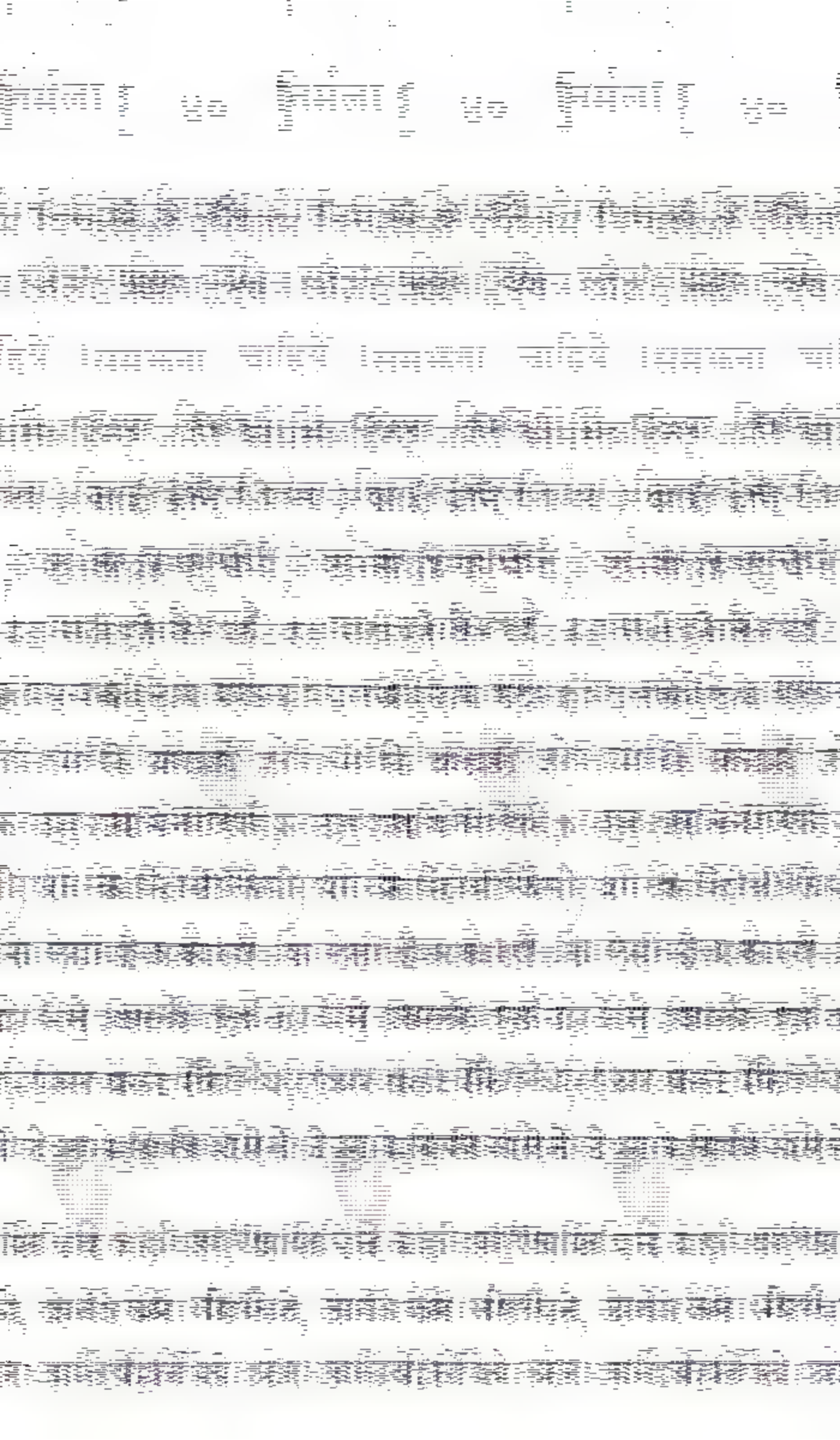
के लिये मैंने भी आपके समुदाय से मिलजाने का निश्चय किया है। अभी मेरे हृदय के ये विचार मैं केवल आपके सामने ही रखता हूं। आपके चिरंजीव लक्ष्मी प्रसाद के साथ उसका विवाह हो, इसमें आपकी सम्मति से अनुग्रहीत होने पर मैं अपने कुटुम्बी जनों के समक्ष इस विषय को प्रकट करू। यदि लिखियेगा तो मैं आपसे अवश्य मिलूंगा।

प्रत्युत्तर का अभिलाषी—
ज्वालाप्रसाद।

❀ परिच्छेद छटा ❀

मृत्युलोक के कष्टों का रूपान्तर।

पत्र पढ़कर महेन्द्रप्रसाद को साश्चर्य आनन्द मिश्रित उत्कंठा हुई, साथ ही चित्त में विचार किया कि ब्राह्मण ज्ञाति का अभी कुछ पुण्य बाकी है कि जिससे उस जाति के पृथक् २ व्यक्तियों को इस जाति के हित के लिये कुछ करने की प्रेरणा होती है। धन्य है इस जाति को जिसमें ऐसे नखशिख संतप्त देह वाले समय में भी ऐसी व्यक्तियों का जन्म होता है। मैं सर्वथा भूलता हूं। देशोद्धारक, ज्ञातिउद्धारक, व्यक्तियों का जन्म तो विशेषतः ऐसी संकट मय परिस्थिति में ही संभव है। उपरोक्त विचार करते २ महेन्द्र प्रसाद ने प्रत्युत्तर लिख डाला। उसमें ज्वालाप्रसाद को लिखा कि जैसे बने वैसे समय सिर एक दिवस आकर उससे मिल जाय। जैसे ही उसने पत्र पर सरनामा लिखना आरम्भ किया, वैसे ही धर्मलक्ष्मी ने उस कमरे में प्रवेश किया।

" क्या कोई उपयोगी पत्र लिखा जा रहा है? डांक अभी दोपहर की रवाना होगी। "

" मेरे एक पुराने मित्र ज्वालाप्रसाद यहां मिलने आने वाले हैं। उनको उत्तर लिखा है। "

" निर्मला देवी के पिता ? "

" हां ; इनकी पुत्री का नाम भी तुम्हें मालूम है ! "

" स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार बढ़े इसलिये जब वे अपने जीवन को स्वात्मार्पण करना चाहती हैं, फिर वे प्रसिद्ध क्यों न हो ? इनकी अभी पूरी सोलह वर्ष की अवस्था भी नहीं हुई है, उस पर भी इतनी ही अवस्था में वे संस्कृत भाषा इतनी अच्छी जानती हैं मानो उनकी मातृ भाषा ही हो ! इस तरफ स्त्रियों की धार्मिक उन्नति के लिये साक्षात् भगवती ने ही मानो अवतार धारण किया हो, उस प्रकार वे अपनी शिक्षा के कारण हम स्त्रियों में वन्दनीय होगई हैं।

" और–और–इनका विवाह कहां हुआ है ? "

"नाथ ! हम स्त्रियों के अंधकार को दूर करने श्वेत देवता तुल्य जागृत अन्तःकरण वाली इस भगवती को स्त्रियों की उन्नति के प्रयत्न के आगे विवाह निर्माल्य सदृश है। अतः उन्होंने असिधारा व्रत सदृश कौमार्य व्रत रक्खा है। इनके सद्गुणों का पारावार नहीं। "

" ज्वालाप्रसाद की एक सुशिक्षित पुत्री दसेक वर्ष की थी, जिसको मैंने उत्तम संस्कृत के श्लोक बोलते सुना था, उसका नाम तो कुछ नमूं बहन जैसा था, तुम कुछ भूलती तो नहीं हो ?"

'हां, वही, वही स्वामी ! वही नमूं बहिन। आप चार पांच बरस हुए कालेज में पारितोषिक वितरण के उत्सव में गये थे, और आकर कहा था कि भारत का उदय ऐसी सन्तानों से है। वही नमू बहन ! बचपन का उनका

वही नाम था, किन्तु अब उनका पूरा नाम निर्मला देवी प्रकट हुआ है। यहाँ की उनकी 'महिला उन्नति सभा' की शाखा का कार्य प्रचार करने के लिये निर्वाचित मंत्रिणी होने का मुझे मान मिला है। अग्रिम सप्ताह में वे यहां आने वाली हैं। हां, तो मैं आपके पास इसलिये आई हूं कि आज कल हिन्दुओं में वर्णान्तर लग्न करने की चर्चा खूब ज़ोर से चलरही है। वर्णव्यवस्था का नाश होते हुए ब्राह्मण, दर्ज़ी, ढेड या चमार की कन्या ले आवें तो भी कुछ हानि नहीं; और वे विवाह न्यायालयों द्वारा भी नियमित विवाह मान्य हों-यही इसका आशय है। इसके विरुद्ध स्वभाव से ही सारी हिन्दू जाति खलबला उठी है, और अभूतपूर्व चर्चा चल निकली है। हिन्दू जाति को प्रकट करने में वर्णाश्रम धर्म एक मुकुट रूप चिन्ह है। इसका नाश होने से हिन्दू जाति का नाश होना सम्भव है। आधुनिक कष्टों के दूर करने के उपाय में यह सूचित किया जाना एक भारी भूल है। हिन्दू संसार के साम्प्रतिक कष्टों को नष्ट करने का खरा उपाय तो यही है कि प्राचीन वर्णाश्रम धर्म फिर स्थापित किया जाय। पहिले सारी ब्राह्मण जाति एक होजाय तो अन्य जातियां भी इस उदाहरण से वर्तने लगेंगी। किन्तु ब्राह्मणों की अनेक ज्ञातियों के शिक्षित और विशेषतः अशिक्षित नेताओं को यह बात सुझाकर उनको इस आवश्यक कार्य की वास्तविकता बतलाना कठिन ही नहीं, अशक्य है। इसके लिये बड़ौदे से निकलने वाले 'प्रातःकाल' के संपादक श्री पं० जगन्नाथ जी ने एक सूचना समस्त ब्राह्मण जाति के लिये प्रकाशित की है, कि प्रत्येक ब्राह्मण जाति में से ब्राह्मण जाति का नाश रोकने के लिये कटिबद्ध व्यक्तिओं की एक ब्राह्मण जाति अलग ही बनाना चाहिये। इस प्रकार कम से कम एक हज़ार ब्राह्मण एक होने पर उनकी एक ब्राह्मण जाति बनने पर उसमें उपजातियों का भेद न विचारते हुए प्राचीन पवित्र समय के अनुकूल ब्राह्मण विवाह पद्धति के अनुसार परस्पर कन्या व्यवहार जारी होना चाहिये। ऐसा होने पर वर्णाश्रम धर्म के उत्सुक

अनेक ब्राह्मण सम्मिलित होंगे। उपरोक्त विचारों में अपनी भी सम्मति होनी चाहिये।

महेन्द्र—यथार्थ ही है, हमको पूर्ण अनुमोदन करना उचित है। इतना ही नहीं, इस कार्य में अपने पूर्ण आत्मबल से सहायता करनी चाहिये। नडियाद निवासी तत्ववेत्ता प्रो० मणीलाल जी महोदय ने जो बात वर्षों पहिले प्रकट की थी, उसके क्रियात्मक होने का अब समय आ रहा है।

\+ \+ \+ \+ \+

ज्वालाप्रसाद को सेठ महेन्द्रप्रसाद का सत्कार पूर्वक प्रत्युत्तर मिलने से हर्ष का पारावार नहीं रहा। लड़की के बाप को, वृद्धि-मस्तिक जन्य रूढी के उपासक अशिक्षित अगुआ लोगों की आसाक्ति को न गिन कर समीप ही की अन्तर् ज्ञाति के एक पवित्र और सुखी कुटुम्ब में सम्बन्ध करने का पत्र ऐसे संयोगों में मिले जब कि वर्णाश्रम धर्म को नीचा किया जाता है, इससे बढ़ कर क्या बात है? पहिली तीन कन्याओं को ज्ञाति में लड़कों की कमी के कारण कन्याओं के मा बापों द्वारा वमन के तुल्य तिरस्कृत कुटुम्बों में विवाह करने के कारण हिन्दू संसार की दुःख मय दशा का उसको पूर्ण विचार था। इन लड़कियों के दुःखों के चित्र यद्यपि प्रत्यक्ष उसके सन्मुख नहीं चित्रित हुए थे, किन्तु परोक्ष रीति से वह जितना जान सकता था उसीका उसके हृदय में तीव्र आघात सा होगया था। भरत भूमि में जन्म होना यही महान् पुण्य का परिणाम है, उसमें भी ब्राह्मण जाति में जन्म होना तो और भी श्रेष्ठ है, इत्यादि कथन जब २ उसके सन्मुख कहे जाते थे तभी वह एक गहरा निश्वास लिया करता था और आधुनिक समय में भारत में जन्म होने के कारण उसके हृदय को बड़ी लज्जा मालूम होती थी। अपनी अन्त-र्ज्ञातियों में सुशिक्षित युवकों की कीर्ति जब सुनने में आती हो, ऐसे युवकों

को उनके समुदाय में कन्या न मिल सकती हो, प्राचीन वर्णाश्रम धर्म की तथा महात्मा मनु की आज्ञा हो तो भी एक जाल में फंसी हुई, जीते हुए ही अधर्म का आचरण कराने वाली और मरने पर नरक में ले जाने वाली रूढ़ी उपासकों की क्रूर आज्ञाओं के शरण होने में अपने अंतःकरण के विरुद्ध वर्ताव कर वह अपनी आत्मा, ज्ञाति और देश के प्रति कर्त्तव्य करने में शिथिलता करता हो ऐसा उसे प्रतीत होता था।

विवाहित कन्याओं के दुःखों की कर्म कथा सुनने के प्रसंग इनके समक्ष कदाचित् ही आये थे, कारण कि ज्वालाप्रसाद की धर्म पत्नी बिजली बाई का हाथ ऐसी व्यवस्थाओं में विशेष रूप से रहता था। वह उनके विवाह कराने में कारण भूत थी। प्रचलित पद्धति में लेश मात्र परिवर्तन करने में पाप है, ऐसे विचार बिजली बाई के बाल्य काल में ही दृढ़ करने में आये थे। बिजली के पिता ज्ञाति के एक अगुओं में से थे और अगुआपने में प्राप्त द्रव्य से ही उनके कुटुम्ब का काम चलता था। वे पट्टे पर धूल डाल कर ग्राम की पाठशालामें एकाध बरस नहीं के बराबर लिखना पढ़ना सीखे थे। जाति में ऊँचे नीचे दाव पेच, प्रपंच पाश और जाति का मनुष्य "परज्ञाति" में से लड़की लाने का पाप करें ऐसे प्रसंग पर पंच फैसले में अग्र भाग लेने के कार्य में वे कुटुम्ब की एक प्रतिष्ठा समझते थे।

ऐसे पिता की पुत्री बिजली बाई के संस्कार अपने पिता के विचारों के अनुकूल बचपन से ही उत्पन्न हो चुके थे, अतः प्रचलित रूढ़ि में लेश मात्र भी फेर फार की बात करने में आती थी, तब तो वह अपने नामानुकूल बिजली की तरह तड़क कर उठ खड़ी होती थी। हृदय की कठोरता का अभ्यास बचपन से ही था। वह भी समय पाकर बढ़ते २ पूर्णता को प्राप्त हो गया था। तथापि एक देखने वाले को उसके हृदय

की कठोरता का विचार एक दम तो नहीं प्रतीत होता था, कारण कि वसन्त ऋतु के सुकुमार पुष्पों के जाल में छिपे हुए सिंह के सदृश सौंदर्य में हृदय की कठोरता अदृष्ट वत् थी। बिजली के पिता लड़कियों के पढ़ाने के पूरे विरोधी थे, अतः ये पैत्रिक विचार भी बिजली बाई ने एक विशेष अंश में प्राप्त कर लिये थे, तथापि ज्वालाप्रसाद ने पहली तीन पुत्रियों को लिखना पढना आजाय—यह विचार कर उन्हें ग्यारहवें वर्ष से पढ़ाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया था और अपनी जीवन की बड़ी भूल को सुधारने के लिये निर्मला देवी के अभ्यास में तो पूर्ण ध्यान रखने में आया था।

बिजली बाई के संस्कार ज्वालाप्रसाद के परिचय से किसी प्रकार भी नहीं बदले थे, परन्तु निर्मला की शिक्षा में उसको अपने हृदय के विरुद्ध पति के साथ सम्मत होना पड़ा था। निर्मला का सद्भाग्य था कि जब वह पांच या छः वर्ष की थी तभी से उसकी तीनों बड़ी बहिनों क दुःख प्रारम्भ होगये थे। इन दुखों की कक्षा में यद्यपि अन्तर था तथापि एक का दुःख एक से बढ़ कर था। निर्मला लिख पढ़ कर कुछ समझने योग्य हुई इस अर्से में तो तीनों बहिनों की ससुराल के दुःखों के रुदन के पत्रों से उसका दिल घबड़ा गया। निर्मला के पास आये हुए उसकी बहिनों क पत्र यदि प्रकट किये जांय तो उनका एक बड़ा पोथा तैयार हो जाय और दुःखी हिन्दू संसार में गाय के समान दीन कन्याओं के दुःख आंख पर पट्टी बांध कर ही देखने वालों को बिजली की रोशनी के समान बतावें।

बड़ी बहिन का नाम गंगा था। उसकी अवस्था पचीस वर्ष के लगभग थी। जब उसको यह पता लगा कि निर्मला को माता पिता ने पाठशाला में भेजना प्रारम्भ किया है तब स्वयं अत्यन्त दुःखी होते हुए भी उसके चित्त को सुख मिला, किन्तु लिखना पढ़ना न आने के कारण

छोटी बहिन के शिक्षण के प्रति अपना सन्तोष प्रगट करने के लिये वह अत्यन्त अकुलाती थी। उसकी सुसराल धन जन से सामान्यतः सुखी थी। घर में देवर, जेठ, ननदें, जेठ के लड़के, देवर के साले, उनके लड़के सब मिल कर करीब १५ व्यक्ति थे। उन सबों के लिये भोजन बनाना गंगा का कार्य था। बर्तन मांज चुकते ही तुरन्त दोपहर के समय कुएँ पर से पानी खेंच कर लाने का करीब ३ घंटे का काम गंगा का ही था। इतने में ही पांच बज जाते और सायंकाल के भोजन बनाने का समय होजाता। जिससे कि रात्रि के कहीं ग्यारह बजे तक गंगा बर्तन वगैरह मांझ साफ कर निवृत्त होती थी। उसके लिये संसार तो एक शून्य दुःखमय जेल खाना या नर्क के समान था। गंगा के विवाह से पूर्व उसकी सौत क्षय रोग से दो वर्ष पहिले ही मर चुकी थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पति बम्बई शेयर बाजार में सट्टा करने लगा था, जहां से वह अपने जीवन के साथ गुप्त रोग खरीद लाया था। वह रोग पूरी तरह उसके शरीर में जमा नहीं था कि उसी अरसे में बिजली बाई ने उसे जमाई रूप से निश्चय कर ज्वालाप्रसाद से कह कर गंगा का उसके साथ विवाह करा दिया था। गंगा की पड़ोस में उसके नेहर (पीहर) की परिचित दाई का कुछ २ काम जानने वाली एक गंवारिन रहती थी। उसने भी गंगा को उसके विवाह के बाद उसके पति की शारीरिक स्थिति की चेतावनी दे दी थी। अतएव विवाह का अर्थ गंगा के लिये तो यही था कि सुसराल जाकर सुबह ५ बजे से रात के दस बजे तक भट्टी पर लगे रहना, बासन मांजना, कपड़े धोना और पानी भर लाने में समय निकालना। एक बार ग्राम में माता का प्रकोप होने से लोगों ने ग्राम के बाहर जाकर जागरण किया। उस दिन रसोई न करने के कारण गंगा को घर सम्हालने के लिये रात के ८ बजे भेज दिया गया था। आज ही विवाह होकर आने के बाद कहीं गंगा को किसी के साथ

बातचीत करने की थोड़ी छुट्टी मिली थी। आज ही उसका चित्त कुछ प्रफुल्लित प्रतीत हुआ; कारण कि ग्राम के बाहर आसमानी रंग के आकाश के नीचे नीले झाड़ होते हैं, उसका अपनी भट्ठी की मजदूरी के बाद चिर समय तक अनुभव मिला था। काम काज तो स्त्रियों का अवतार है और होना ही चाहिये। स्त्रियों को घर का काम काज एक प्रकार से उनकी कसरत की आवश्यकता को पूरी करता है, परन्तु एक सुखी कुटुम्ब में विवाहिता होते हुए गंगा की कसरत सख्त कैद वाले कैदी की कसरत के समान होगई थी। उसके पति को जिसका उसके लाड़ करने वाले बापों ने नाम नटवर शंकर रक्खा था हींग, तेल, मिर्च और खटाई का स्वाद जाने वर्षों बीत चुके थे, उस पर भी एक समय किसी पुराने मित्र ने चुपके से बड़ी ही अच्छी तरह बनाकर उसे (बड़े) भजिये खिला दिये थे, जिसका परिणाम यह हुआ कि इसके मुख से गरमी निकल पड़ी थी जिससे कि इससे बोला नहीं जाता था। पिछले छै मास से किसी भी प्रकार के उद्यम बिना बिस्तर में पड़े रहने के कारण पक्षाघात होजाने से उसको कहीं बाहर नहीं ले जाया जा सकता था। गंगा के साथ उसका दूसरा विवाह होने से और इस बीच में स्वयं यथेच्छ बर्तने से नटवर को किसी प्रकार की अभिलाषा पूर्ण करने की इच्छा मन में नहीं रही थी। अतः उसके लिये 'नटवर तो जगत में नाच रहा था' परन्तु सद्‌गुण की मूर्ति पवित्र सुकुमार गंगा ने कादम्बरी के समान पति के चैतन्यमय देह के समक्ष ब्रह्मचर्य का उग्रतप आचरते हुए सुसराल की मजूरी में जीवन गला देने का असिधारा व्रत् ग्रहण किया था! अरे, पोलिटिकल ढींग मारने वालो! होमरूलरो! तुम लोग ब्यूरोक्रेसी के रथ चक्र के नीचे पिसने की पुकार करते हो, किन्तु हमारे हिन्दू संसार में इकाई (अ आ इ ई) नहीं जानने वाले किन्तु सारे शास्त्रों का तार तम्य जानते होने का आडम्बर कर ज्ञाति की व्यक्तियों को नाक पकड़ कर एक

एक बड़े गढे में ढकेलने वाले अनघड़ अगुआओं के अत्याचारों का तुमको ध्यान नहीं है, अन्यथा अपनी आवाज़ में खर्च होने वाली शक्ति का व्यय तुम इन अत्याचारों के घटाने में करते इसमें सन्देह नहीं है। अरे सत्याग्रहिओ! देश भक्तो! स्वयं सेवको! स्वर्ग के सदृश सुखदायक हमारे चारों वर्णों में से इन अनेक वर्णों में, अनेक संकुचित समुदायों में, जीवित ही मृत्यु के समान जीवन बिताने वाले गोलबन्दी के इस क़ैद खाने में हमको कौन लाया? इसके विरुद्ध तुम अपना एकत्रित आत्मबल प्रयोग कर इस हिन्दू प्रजा के ऊपर होने वाले जुल्मों को रोकने के लिये कटिबद्ध होगे? उपरोक्त विचार गंगा को कभी कभी ध्यान में आजाते, और उसके दुःखी जीवन पर बिजली की चमक के समान उसको अमूझते; परन्तु जीवन को नीच बना सके ऐसा कोई भी विचार उत्पन्न हो उसके पूर्व ही वह उसके सद्विचार की ज्वाला में भस्मीभूत हो जाता। इस रीति से बिजली बाई के संस्कार उसमें कुछ २ दीखते थे और विशेषतः ज्वालाप्रसाद के विचारों का संग्रह पैतृक था, अतः इन विचारों के सुरम्य क्षेत्र में ही जीवन बिता कर संसार की कटुता वह कम कर सकती थी।

नटवर को एक खाट पर डाल सारा कुटुम्ब जागरण में चला गया था। गंगा घर आकर लालटेन लेकर उसको किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो पूछने उसकी खाट के पास गई। इतने में पति के मुख से "पाँई—पाँ......ई—" यह शब्द सुना। नटवर की इस विचित्र भाषा से परिचित होने से उसने उसके मुख में दो चम्मच निर्मल जल डाला।

काठ के पुतले के समान नटवर को पानी पिलाते समय अपने दुःखी जीवन पर ब्रह्माण्ड फटता हो वैसा निश्वास छोड़ने का विचार, गंगा के हृदय तल में उत्पन्न हुआ। बिजली बाई के स्वभाव का जो मातृक अंश

उसको मिला था उसका ही ये परिणाम था। किन्तु ज्वालाप्रसाद के उच्च संस्कार जो उसके मन में उत्पन्न हुए उन्होंने इस विचार को उत्पन्न होने से रोका। हिन्दू संसार में इतनी अधिक अधमता आजाने पर भी बालकों को बाल्यकाल के जीवन क्रम में गुंथा हुआ धार्मिक शिक्षण अब तक कुछ अंश में मिलता है। अन्य प्रजाओं का जीवन क्रम धर्म से स्वतन्त्र और पृथक् ही है जब कि हिन्दू प्रजाके धार्मिक सूत्र और जीवन क्रम ओत प्रोत गुंथे हुए हैं। एक हिन्दू धर्म से और जीवन से एक साथ ही पृथक् हो सकता है।

संकटमय समय के बाद इस प्रकार किसी अंश में बचे हुए धर्म में शेष सूत्रों को आज कल के हिन्दू युवकों के मस्तिष्क में दृढ़ कर "अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः" इत्यादि सूत्रों का यथा विधि शिक्षण देकर पुनः सत्ययुग प्रवर्तित करने का पुण्यवान समय प्रयत्नशीलों के सामने उपस्थित है। अमुक व्यक्ति के, या प्रजा के जीवन में कष्टों के प्रसंग जैसे कि वर्णाश्रम-धर्म की कुछ आवश्यकता नहीं है, इत्यादि प्रश्न उठाने वाले खड़े हों यह तो होना ही चाहिये। ज्यों ही नटवर की खाट के आगे से गंगा घर में जाने को हुई त्योंही उसकी सहचारी जो उसकी नेहर (पीहर) की तरफ से सम्बन्धिनी थी और जो कुछ २ दाई का काम भी जानती थी, जैसा कि ऊपर कहा गया है आई। अपने अनेकों कष्ट गंगा अपने माता, पिता, या बहिनों को समझा नहीं सकती थी कारण कि बुद्धिमान् और उच्च संस्कारों वाली होते हुए भी अपने विचार काग़ज़ पर ला सके उतने लिखने पढ़ने से भी विजलीबाई ने उसे वञ्चित रखा था। अतएव वह इस परोपकारिणी साध्वी 'शान्तिबाई' के पास निवृत्ति मिले इससे कुछ २ लिखना पढ़ना सीखती थी।

"शान्ता बहन! आज मेरा हृदय भरता है। मेरे विचार जिस प्रकार मैं कहूं क्या वैसे ही तुम काग़ज़ पर लिखोगी?

गंगा लिखाती गई और शान्ता ने लिखना शुरु किया।

"बहिन निर्मला !

आठेक दिन हुए मैंने तुझे अपना कितना ही दुःख भार पत्र द्वारा भेजा है। आज फिर उन्हीं रोवनों से तेरे सुकुमार हृदय को कष्ट देना मैं नहीं चाहती। शान्ता बहिन द्वारा दी गई शिक्षा से अब कुछ दिनों बाद मैं स्वयं तुमको पत्र लिखूंगी और भोगना पड़ने वाली अनेक विपत्तियों की कर्म कथा स्वयं मैं तुझे लिखूंगी। थोड़ा ही लिखना पढ़ना जानने से दुनिया एक नये रूप में दीखती है। लड़कियों के मा बापों को ज्ञान बढ़ाने के लिये नहीं तो कम से कम लड़कियां विवाह के पश्चात् ससुराल में सुखी रहती हैं या दुःखी, यह उनके ही लिखे अक्षरों से जानने के लिये अत्यन्त आवश्यक है कि उनको लिखना पढ़ना तो सिखाना ही चाहिये।

नम्र बहिन ! दुनियां में यदि कहीं जीव को नर्क है तो वह अपने हिन्दू संसार की गोल बन्दियों में, अपनी ज्ञातियों के अनघड़ अगुआओं और इन गोल बन्दियों से बाहर जरा भी न देख सकने वाले अपने भीरु मा बापों के अन्तकरणों में है! हिन्दू संसार में सास और ननदों के अपनी बहू के प्रति अन्तःकरण वज्र से भी कठोर होते हैं—यह निश्चय समझना। कुंए में गिर कर, फांसा डाल कर, विष खाकर इत्यादि अनेक प्रकार से आपघात अधिक से अधिक किस प्रजा में होते हैं ? पत्थर को आंखें होंगी तो वे जो आंसू बहाते होंगे, वह किसका दुःख देख कर ? हिन्दुओं द्वारा पाल पोप कर बड़ी का रूढियों के अधीन हुई गोलबन्दी के जाल में प्राणों से प्यारी कन्याओं का डाला जाना अभी कब तक जारी रहेगा ? अगुआ लोग अभी कब तक सोया करेंगे ? अनेक सुधारों की जो आवाज लगायी जाती हैं उनमें अपने समुदाय बढ़ा कर वर और कन्या की लेना देना बढ़ाना यह सब से आवश्यकीय सुधार है, ऐसा हम अशिक्षित स्त्रियां मानती हैं। क्या अगुआ कहेजाने वालेलोग इसको अभी तक

नहीं समझते ? ज्ञातियों के संकुचित समुदायों में पड़े रहने में दुःख है क्या इसको अभी प्रमाणित करना बाकी है ? यद्यपि इन समुदायों में फँसे रहने के दुःख से सद्भाग्य से ही कोई कुटुम्ब मुक्त होगा, तथापि अन्य सुधार होते हैं और यह महत्त्व की बात प्रजा के नेताओं ने एक ओर कैसे रख छोड़ी है ? ढेड़, भील, मोची, ब्राह्मण को एकाकार करने के लिये शास्त्र के आधार ढूंढ निकालने में आते सुने जाते हैं तो फिर सारे ब्राह्मण एक हों, ऐसे आधार, अभी हिन्दी प्रजा के नेताओं को क्या नहीं जमते हैं ? कथा में सुना था कि मनु महाराज ने तो ऐसा कहा है कि देश काल स्थिति के अनुसार अपने जीवन में उचित फेर फार करना यह बड़ा आधार हम अशिक्षित स्त्रियां तो जानती हैं और धर्म के ज्ञाता शास्त्री क्या नहीं जानते हों ?

"जिस कुटुम्ब को अपने पिता जी ने वमन की तरह बाहर निकाल दूर किया था उसी में मुझे डाल देने का प्रसंग ये कुछ कम संताप की बात है। यमुना और सावित्री के दुःख की कर्म कथा से रोमांच खड़े होते हैं। वह मैं चार छे दिन पश्चात् लिखूंगी। उनके पत्र जब २ मेरे पास आते हैं तभी तब पांचेक मिनिट अवकाश निकाल कर पढ़वाती हूं और आंसू बहाती हूं।"

"नमू बहिन ! हमको तो मनोबल रहित माता पिता ने दुःख सागर में फेंक दिया है, परन्तु प्रजाओं का सब दुःख दूर करने वाली शिक्षा तुम्हारी सहायता करेगी। तुम अपने ध्येय में दृढ़ रहना। दुःखित विवाहित जीवन से पवित्र कौमार्य व्रत सौगुना सुखकर है। या तो समुदाय बढ़े और या अपने जीवन इस प्रकार के पापमय सांसारिक नियमों में स्वाहा हों, तभी ऐसे अनेक योगों के परिणाम से नेताओं के कान उघड़ेंगे।

तुम्हारी गंगा के आशीर्वचन

द० शान्ता।

❀ परिच्छेद सातवा ❀

मित्रों की भेट।

उक्त दुखी कन्याओं के पिता ज्वाला प्रसाद को महेन्द्र प्रसाद का सत्कार पूर्वक उत्तर आनन्द मय प्रतीत हो—इसमें नवीनता नहीं है। इन्होंने तुरन्त अपनी इच्छा सेठ महेन्द्र प्रसाद से मिलने की जाहिर की; इधर सेठ के यहां उनके सत्कार के लिये तैयारियां होने लगीं।

ज्वाला प्रसाद भी तुरन्त आये, पुराने मित्र एक दूसरे से परस्पर स्नेह पूर्वक मिले। महात्मा विष्णु प्रसाद के विषय में वार्ता प्रारम्भ हुई; महेन्द्र प्रसाद ने उद्योग की उपाधि युक्त जीवन में इन महात्मा का दर्शन लाभ न लेने के लिये बड़ी लाचारी प्रकट की।

ज्वाला०—उस बात को दो ढाई वर्ष हो गये, अब तो वे कहीं पर्वतों की गुफा में निवास कर रहे होंगे, क्यों कि याद में उत्साह पूर्वक कितने ही भक्त जन लौट २ कर पर्वतों की गुफाओं में भूल भाल कर वापिस आये हैं।

महेन्द्र०—आपने यह भी सुना होगा कि महात्माजी ने गोदड़शंकर नाम के व्यक्ति द्वारा घोर निन्दित कर्म होने पर भी उसको बचाने के प्रयत्न किये थे। क्षमा का अश्रुत पूर्व मंत्र उन्होंने संसार को समझाया था। संसार में बड़ी २ निन्दा हुई कि अपराधी को सज़ा नहीं होने से अपराध करने वालों को उत्तेजना मिलती है। महात्मा घबरा कर मार के भय से चले गये, परन्तु वे गये सो गये ही गये। गोदड़शंकर को उसी दिन से बड़ा पश्चाताप हुआ। इसका सारा समय पश्चाताप करने में ही जाता, इससे उसको

ज्वर आने लगा और दो ढाई मास में ही मर गया। उसका लड़का उद्धत तो पूरा उद्धत ही रहेगा, ऐसा प्रतीत होता है, और उनकी विधवा स्त्री एक सेठ के सुखी कुटुम्ब में रसोई बनाती है।

महेन्द्र०—तब क्या महात्मा विष्णु प्रसाद जी के दर्शन भी नहीं होंगे?

ज्वाला०—जीवित होंगे तो जो भाग्य में होगा वह होगा। मुझे आपका नाम इन्होंने ही बताया। त्यागी के सदृश रहते हुए भी ज्ञाति और अन्तर्ज्ञाति के लगभग प्रत्येक व्यक्ति को वे पहिचानते थे, इनके सारे प्रयत्न इन्हींके काम आते, क्योंकि इनका भक्त मण्डल बहुत बड़ा है।

महेन्द्र०—मेरा अहो भाग्य!

ज्वाला०—अहो भाग्य तो मैं अपना समझता हूं कि ज्ञाति के पंचों के भविष्य के कष्ट को न गिनते हुए आप मेरे इन विचारों में सम्मत होते हैं। मुझे विष्णु प्रसाद जी ने गोवर्द्ध शंकर के कुकृत्य की दुःखद घटना से पहिले ही एक पत्र लिखा था जो यह है:—

"भाई ज्वाला प्रसाद!

कन्याओं के भाग्य अब मत बिगाड़ना। भक्तिपुरे के महेन्द्र प्रसाद के पुत्र लक्ष्मी प्रसाद के साथ निर्मला का विवाह करने के प्रयत्न में रहना। इस कुटुम्ब में अन्तर ज्ञातियों की एकता का वातावरण सम्पूर्ण बल पूर्वक मैं देख रहा हूं, वह दृष्टांत रूप अवश्य होगा—ऐसी मेरी मान्यता है। मुझ से मिल जाना, मिलने में आलस्य नहीं रखना चाहिये, मिल जाने से ही—खुलासा होगा।

विष्णु प्रसाद के जय सच्चिदानन्द।"

ऊपर के पिछले शब्दों का रहस्य समझने में नहीं आया, अतः जान बूझ कर मैं इसका स्पष्टीकरण करने गया था, वहां वह नित्य की घटना हुई। अब तो इसका अर्थ अपने आप समझ में आ रहा है।

महेन्द्र प्रसाद ने विष्णु प्रसाद जी का पत्र हाथ में लिया। वह आसुओं से भीजने लगा, अतः उसने दुखी हृदय से उसे ज्वाला प्रसाद के हाथ में दे दिया। इस प्रकार जब कि दोनों मित्र बैठे हुए थे पीछे के कमरे का दरवाजा खुला और लक्ष्मी प्रसाद आकर दोनों को प्रणाम करके पास बैठ गया।

महेन्द्र०—मैं इकला ही नहीं परन्तु मेरे कुटुम्ब के सारे मनुष्य अपनी ज्ञाति के समुदाय एक हों, इसमें जो भी विघ्न आवें उनको सहन करने को तत्पर हैं।

अन्य दूसरी कितनी ही बात चीत के बाद ज्वाला प्रसाद ने सहर्ष विदा ली। विवाह की तैयारियां होने लगीं और वे तैयारियां भी आदर्श थीं। चाहे जितनी निन्दा हो किन्तु खर्च अत्यन्त आवश्यकीय ही रखने का कार्यक्रम निश्चित हुआ। विवाह के गानादिक भी समयानुसार निश्चित हुए। और किसी युद्ध में जैसे परीक्षा के बाद बलवान योद्धाओं को ही ले जाने में आता है वैसे ही बराती भी निश्चित हुए।

ज्वाला प्रसाद की योजना में बिजली बाई किस प्रकार सम्मत हो? इस साधु पुरुष को अपने घर जाते ही वातावरण क्लेशमय प्रतीत हुआ। बिजली बाई ने बिवाह के चौघड़िये में ही आत्मघात कर डालने का भय दिखलाया। इस भय को ज्वाला प्रसाद ने जरा नहीं गिना। कारण कि इसके इस प्रकार के ये भय प्रदर्शित उद्गार पहिले ही नहीं थे। अन्त में विवाह तो निर्विघ्न समाप्त हो गया, किन्तु बिजली बाई की इच्छानुसार

न होने से उसके संतप्त हृदय को एक बड़ा आघात हुआ। जिससे कि उसको ज्वर आने लगा और ८-१० दिन की बीमारी के पश्चात् ही उसका देहान्त हो गया। जाति के अगुआओं (पंचों) ने उसको विष देकर मार डाला गया है-यह बात उड़ाई और उसका कारज यदि हो तो उसमें जीमने नहीं जाना ऐसा निश्चय किया। ज्वाला प्रसाद ने कारज ही नहीं किया। इसके बाद पंच लोग नित्य प्रति रात्रि में एकत्रित होते। ज्वाला प्रसाद के दो अपराध ठहराये गये। (१) परजाति (?) में लड़की का विवाह किया (२) संदिग्ध संयोगों में बिजली बाई की मृत्यु हुई। इन दोनों अपराधों की शिक्षा देने के लिये प्रथम तो उस कुटुम्ब का बहिष्कार किया। इसको ज्वाला प्रसाद ने ज़रा नहीं गिना। इस पर जाति का जो व्यक्ति ज्वाला प्रसाद के कुटुम्ब के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध रखता उसका भी बहिष्कार किया गया। इससे ज्वाला प्रसाद को कष्ट होने लगा। वह महेन्द्रप्रसाद के सन्मुख आकर रो पड़ा। महेन्द्र प्रसाद की भी कुछ ही अन्तर से ऐसी स्थिति हो चुकी थी, परन्तु जाति के लिये बड़े बड़े उपकार करने से इनके विरुद्ध केवल गुपचुप ही बातचीत हो सकती थी, किंतु ज्वाला प्रसाद की स्थिति तो पंचों ने बड़ी ही बेढब करदी थी। बरात विदा हो तो मार्ग में लूटने के लिये भीलों की एक टोली को कुछ दे लेकर तैयार कर लिया गया था। इससे निर्मला को पिता के यहां ही रखकर लक्ष्मीप्रसाद और अन्य बरातियों को शनैः २ भिन्न २ प्रकार से भेजना पड़ा था।

विवाह को १५ दिवस ही हुए होंगे जब कि एक दिवस रात्रि को पिता पुत्र चिन्ता में मग्न बैठे थे कि दसेक वर्ष की एक कन्या ने आकर लक्ष्मीप्रसाद के हाथ में एक चिट्ठी ला रक्खी।

"आप निश्चल रहना। दृढ़ और निश्चल हैं यह विचार कर ही मैंने विवाह किया है। मुझे सम्मत होने में कुछ समझना नहीं

पड़ा था। मैं अपनी माता वगैरह सब को अपनी शक्ति भर और मर्यादा पूर्वक समझाती थी ।

"आपके कुटुम्ब की साधुता—जनसमाज पर परोपकार करने में होने वाले व्यय के लिये आपके पूज्य पिता श्री की सुकीर्ति—संसार को अपने जन्म से शोभित करने वाली स्त्रियों में एक होने का गुजरात को वास्तविक अभिमान रखाने का आपकी पूज्य मातु श्री का आदर्श भव्य जीवन, और आपके अन्तःकरण की पवित्रता इनके कारण ही मैं आपसे विवाहित होने में अपना अहोभाग्य समझ बैठी हूं।"

"जाति के हठधर्मी, अज्ञान पंच तो चार दिन चकले की तरह चीं चीं कर रहेंगे, परन्तु अन्तर्जातियों के एक करने के लिये हमने जो दृष्टान्त रक्खा है उससे होने वाला अक्षय पुण्य अपनी आत्मा का सदा का साथी रहेगा। कदाचित् हाल की यह शून्यता, ऐसा कष्ट, ऐसी भयानकता कुछ समय तक ही रहे उससे किञ्चितमात्र डरने का नहीं है। असत्य के पैर झूठे होते हैं। ये पञ्च लोग हृदय के मलीन, निर्माल्य और भीरु हैं। इनकी मंडली में मेरे समीप के इस तरफ के सम्बन्धी हैं उनका हृदय टटोलते मुझे प्रतीत होता है कि जगत की इस रंग भूमि पर से हम दोनों कुछ दूर कुछ काल के लिये चले जांय तो इस कष्ट का बड़ा अंश अपने आप शान्त हो जाना चाहिये। यह तो मेरा अनुमान मात्र है, परन्तु जो उसमें मैं सच्ची ठहरूँ तो अपने दोनों कुटुम्बों में थोड़े समय में शान्ति हो जायगी।"

"आपको यह उपाय क्या मैं सूचित कर सकती हूं? इसमें मेरी हिम्मत यदि विशेष अनुचित प्रतीत हो तो मुझे क्षमा करें। आपका विचार अमेरिका जाने का है सो आप सहर्ष जैसे बने वैसे शीघ्र वहां को प्रयाण करें, परन्तु लिखते हृदय विदीर्ण होता है कि मैं आपके साथ नहीं रहूंगी। अपनी कुशलता के लिये यह आवश्यक है कि आपके

बाद तीसरे या चौथे जहाज में आपके पत्र के अनुसार अपनी एक या दो सहचारियों के साथ मैं भी आ मिलूंगी। पत्र शीघ्रता में लिखना पड़ा है।"

आपकी दासी—
निर्मला।

पत्र पढ़ कर लक्ष्मीप्रसाद ने देखा कि इसमें सामान्यतः देखने में आते हैं, वैसे विशेषत्व के विशेषण नहीं हैं और पूर्ण मर्यादा युक्त है, अतः वह पत्र उसने पिता को दे दिया। महेन्द्रप्रसाद ने उसे पढ़ा—

महेन्द्र—पुत्र! मैं प्रसन्न हुआ हूं, जैसा प्रभु ने मुझे सुपुत्र दिया है वैसी ही कदाचित् विशेष हिम्मत वाली मुझे पुत्र वधू मिली है, यह देखते हुए इन लोगों का त्रास मेरे हिसाब में कुछ नहीं है। मुझे इसकी सूचना बिलकुल व्यावहारिक प्रतीत होती है। और व्यवसाय के बढ़ाने के लिये अमेरिका जाने में हमको कुछ विचार भी नहीं है। विचार तो जब तक ये हैं तभी तक रहेगा, समुदाय जब तक एक नहीं होते तब तक रहेगा, परन्तु मेरी राय में तुम भले ही जाओ, 'शुभस्य शीघ्रम्।' ऐसे में ही पास के कमरे में सारी बातें सुनने वाली धर्मलक्ष्मी आगई और इसने भी पूर्ण अनुमोदन किया। पत्र लाने वाली लड़की को लक्ष्मीप्रसाद ने प्रत्युत्तर लिख दिया।

दूसरे दिवस से लक्ष्मीप्रसाद के अमेरिका जाने की तैयारियां होने लगीं और दो सप्ताह के अन्दर २ तो वह भी अपने पिता श्री को अपूर्व धैर्य बंधाता, अन्तर्जातियों के छिन्न भिन्न नियमों को श्राप देता, उद्योग के साधनों को भारत में लाने की लम्बी सूची बना कर अमेरिका जाने के लिये विदा हुआ।

❀ परिच्छेद ८ वां ❀

महेन्द्रप्रसाद और होरमस जी ।

महेन्द्रप्रसाद के मिलनसार स्वभाव के कारण उनकी औद्योगिक प्रवृत्ति ने हिन्दू जाति के अतिरिक्त मुसलमान और पारसी जाति में भी उनके अनेक स्नेही कर दिये थे। उनमें से एक सेठ होरमस जी थे। सेठ होरमस जी को अफ्रीका के एक बन्दरगाह में खाड़ी के एक अंग्रेज ठेकेदार के हिस्सेदार बनने का सुयोग प्राप्त हुआ था। इस खाड़ी में से मोती निकलते थे। उनके बाल्य काल में उनसे एक जीवराम ज्योतिषी ने कहा था कि उनके "भाग्य में मोती का व्यापार लिखा है"। इस पर जिस दिन से उस ठेकेदार के साथ इस खाड़ी के हिस्सेदार के नाते वे मिले उसी दिवस ५) पांच रुपये उन्होंने भारत में जीवराम ज्योतिषी को देने के लिये भेज दिये थे और दूसरी कितनी ही दान की रकमें उन्होंने अपने से सम्बन्धित शालाओं में दी थीं।

बम्बई में सेठ होरमस जी का बंगला समुद्र के किनारे था और जब लक्ष्मीप्रसाद बम्बई कॉलेज में अभ्यास करता था तब इस बंगले का एक भाग उसने किराये पर लिया था। समुद्र किनारे ही यह बंगला होने के कारण लक्ष्मीप्रसाद ने अपने अनवकाश में तैरने की कला भी अच्छी तरह हस्तगत करली थी।

एक दिवस सेठ होरमस जी से सम्बन्धित एक पारसी कन्या पाठशाला की लड़कियों की तैरने की प्रतिद्वन्दिता हुई और सेठ होरमस जी की इच्छा से इस बंगले के पास की जगह ही इसके लिये पसन्द की गई। सेठ होरमस जी का पुत्र मि० सावकशा अधिक अध्ययन नहीं कर सका

था, अतः वय अधिक हो जाने के कारण उनके कुटुम्ब की रीति के अनुसार निकट भविष्य में ही उसका विवाह संबंध कर देने की आवश्यकता प्रतीत हुई। सेठ ने आज की प्रतिद्वन्दिता में अव्वल नम्बर आने वाली लड़की के लिये इनाम रक्खा था अवश्य, परन्तु उनकी आन्तरिक इच्छा कोई योग्य कन्या मिले तो उसके माता पिता के साथ संदेश चला कर सावकशा के लिये संबंध निश्चय करने की थी, परन्तु मन्द भाग्य सावकशाह उसी पाटशाला की दाई की कक्षा में अभ्यास करने वाली शीरीबाई नामक एक गरीब कुटुम्ब की लड़की के साथ सन्देश चला रहा था। इस बात का सेठ होरमस जी को पता न था।

शीरी को तैरना खूब आता था, किन्तु सेठ होरमस जी के भोले स्वभाव से कुटुम्ब में अपने अन्तःकरण का भेद दे देने से सावकशा वह भेद जान गया था जो कि उसने शीरी से भी कह दिया था, जिससे उसे आज अपने आत्मबल में शंका होने लगी थी और हुआ भी वैसा ही। लड़कियां तैरने लगीं। कोई दो फरलॉग की दूरी पर एक थैली तैर रही थी जिसमें एक संदूकची में इनाम की चिट्ठी थी। वही थैली सब से आगे पहुंचने वाली को वापस लाने की थी। शीरी का मन मानो बिक चुका हो जैसा था। "यह इनाम मैं न जीत सकूं तो बस हो चुका! मेरा भाग्य अँक चुका!" इसी ख्याल में देखते देखते उसका पानी पर से काबू छूट गया और वह सबसे पीछे रह गई इतना ही नहीं किन्तु डूबने लगी! जिन लड़कियों ने ये देखा उन्होंने चिल्लाना प्रारम्भ किया। कोलाहल मच गया। शीरी गई! शीरी गई! हो चुका! मार्के का समय था। लक्ष्मीप्रसाद यह देख रहा था। वह तुरन्त ही समुद्र में कूद पड़ा और देखते देखते शीरी को लेकर बाहर आया। कितनी ही सम्हाल के बाद वह होश में आई। इनाम का फैसला मुल्तवी रखने में आया।

उसी बंगले में शीरी को रक्खा गया। सावकशा उसकी देख रेख में रहा। इन दिवसों में सावकशा और लक्ष्मीप्रसाद में मित्रता हो गई। सावकशा ने अपने अन्तःकरण के विचार लक्ष्मीप्रसाद को प्रकट किये।

लक्ष्मीप्रसाद इस दंगल में मध्यस्थ (अम्पायर) नियुक्त हुआ था। उसने युक्ति पूर्वक सेठ की चित्तवृत्ति सावकशा की रुचि की ओर फेरदी, जिसके परिणाम स्वरूप सावकशा और शीरी का विवाह हो गया, जिसमें महेन्द्रप्रसाद के कुटुम्ब ने पूर्ण भाग लिया।

लक्ष्मीप्रसाद के विवाह के समय तो जाति में गिनेगांठे कुटुम्बों में ही निमन्त्रण पत्रिका भेजी गई थीं, परन्तु सेठ होरमस जी जैसे मित्रों को पहिले से ही आग्रहपूर्वक निमन्त्रण भिजवाये गए थे। होरमस जी उस समय आफ्रिका में थे। इस प्रसंग पर ख़ासतौर से वे आफ्रिका से आये थे। आज वे मिलने को आने वाले थे, इसलिये महेन्द्रप्रसाद के घर एक प्रकार का आनन्द मनाया गया।

सेठ महेन्द्रप्रसाद ने उनका खूब अच्छी तरह से सत्कार किया, किन्तु इस सत्कार के आनन्द उपलक्ष के अन्तर्हित जाति के झगड़े की सुस्ती छिपी हुई थी। होरमस जी के पूछने पर महेन्द्रप्रसाद ने सारी व्यवस्था कह सुनाई और लक्ष्मीप्रसाद के अमेरिका जाने का वास्तविक कारण भी समझाया।

इतने में कुञ्जबिहारी और मधुसूदन सेठ के इन दो बालकों को दो माइल दूर की गुफा के पास के शिवालय में दर्शन कराने नौकर ले जाने वाला था सो वह उन्हें पहिले सेठ होरमस जी की मुलाकात के लिये ले आया था। हाल ही में विवाह का उत्सव घर में हो चुकने से दोनों बालकों को अच्छी तरह वस्त्रालंकार से सजाकर लाया गया था। दोनों बच्चों को देखकर होरमस जी बहुत प्रसन्न हुए, किन्तु टीका की कि:—

"सेठ साहब! ये देवताई भुलके विना गहनों के मज़े के नहीं लगते? आपकी इस रूढ़ि से तो बाबा तोबा तोबा है।"

'देवताई भुलके' इस विचित्र भाषा से महेन्द्रप्रसाद को बड़ी हँसी आई।

महेन्द्र०—साहेब जी! आप पारसियों ने भाषा को बिगाड़ दिया है, ऐसा आक्षेप आप लोगों पर आता है। परन्तु कई जगह तो आपकी इस बिगड़ी भाषा में कुछ मीठी नज़ाकत मिली मालूम होती है, क्यों है न?

होरम०—यह तो आप लोग मीठी नज़र से देखते हैं, इसी से ऐसा लगता होगा परन्तु इतना तो जरूर है कि लिखने बोलने में भी भाषा के नियम बांधे गये होंगे तो उसमें भी हम लोग स्वतन्त्र रहेंगे। हमारी इस बिगाड़ी गई भाषा में कृत्रिमता या बनावट बहुत कम देखेंगे। अच्छा! आपको ज़्यादा समय न रोकते अब जिस काम से मैं आया हूं वह—

महेन्द्र०—कहिये, आराम से कहिये!

होरम०—आपको अगले महीने में खास हमको मान देने के लिये बम्बई पधारने का है सावकशा से छोटे छोकरे शाहपर जी का लगन है।

महेन्द्र०—मेरे ध्यान में मि० शाहपूर जी की तो २५—३० वर्ष की उम्र होगी, क्यों?

होरम०—नहीं साहेब! उसको तो सिर्फ २२ वां साल चलता है, उसका बदन ज़रा मज़बूत होने से ऐसा लगता है, अभी तक तो उसका विचार शादी करने का ही नहीं था, मगर अभी हाल में एक ठिकाना मिल जाने से शादी के विचार पर आया है।

महेन्द्र०–आप लोगों में लड़कियों की कमी तो, मैं जानता हूं नहीं होतीहै ?

होरम०–हमारे में ऐसा है कि आबरूदार खानदान हो और पढ़ा लिखा होशियार लड़का हो तो उसके लिये लड़कियों की मांग के दराड़े पड़ते हैं। और दूसरी बाजू ऊंचे खानदानों में पढ़ी लिखी और काबिल लड़की हो तो उसकी अच्छे खानदान में शादी होने में देर नहीं लग सकती। नवसारी जैसे शहर में ग़रीब लोग अपनी ही हैसियत के खान्दानों से रिश्ता कर गुज़ारा कर लेते हैं। बीच के लोगों को तो हम लोगों में भी बड़ी तकलीफ है।

महेन्द्र०–किन्तु जैसी 'फिरके' बन्दी हमारी जाति में है, वैसी आप लोगों में तो नहीं है ?

होरम०–'फिरके' यानी ?

महेन्द्र०–यानी सौ दोसौ आदमियों का समूह मिल कर एक दस्तावेज बनाले कि हम लोग आसमान ऊपर से टूट पड़े या पाताल फट जाय तो भी अपने दोसौ घरों में ही लड़कियों की शादी करेंगे। इन दोसौ आदमियों के फिरके से बाहर लड़की जाय तो जाति या बिरादरी उसका तिरस्कार करे, उसको जात बाहर करे या दण्ड करे।

होरम०–तोबा, तोबा, ऐसा तो कुछ भी नहीं है, हमारी सारी आबादी करीब १ लाख की है, तो भी उसमें सारी कौम के सुभीते और आराम की ख़ातिर वग़ैर लिखे कितने ही कायदे निभवाये जाते हैं। आपस में ही शादी करने वाले खान्दानों में जुज़ बदनामी के अलावा ज़्यादातर हैसियत की बराबरी देखी जाती है। बाज़ार गेट में मामूली तरह से साबुन की फेरी लगाने वाला एक पारसी सर.धनजीशा मातवरशा के यहां लड़के की मांग करने नहीं निकल

पड़ेगा। अपनी ही हैसियत के लोगों में से लड़का या लड़की की तलाश पहिले करेगा। आप लोगों में जिसे आप 'फिरके' कहते हैं उसे एक कुण्डाला या कैदखाने का नाम दिया होता तो ज़्यादा ठीक था। उसकी तरफ से मरो या गिरो मगर उस फिरके में से ही लड़का लड़की तलाश करनी पड़े। हम लोगों में भी तकलीफ़ है, मगर शादी करने वालों की आज़ादी पर रोक करने के ज़ियादा मौके नहीं होते, इसके लिये हम लोग मगरूर हैं, इतने ही हम आराम में हैं। शाहपूर जी का दाखला लीजिये! कैसा मज़बूत जवान! आप लोगों में ऐसे जवान कुंवारे मैंने दो चार ही देखे होंगे! लड़कों की कमी होना यह तो सभी कौमों का एक तरह का धीमा अपघात है। इससे तो वह ज़माना आयगा कि इस कौम का ढूढ़े भी पता नहीं लगेगा। इसीलिये ऑनरे० मि० पटेल ने एक बिल रक्खा था, मगर सेठ साहेब! आप लोग इसे बढ़ने क्यों नहीं देते? मि० पटेल की कौम परस्ती के लिये तो दो राय होही नहीं सकती।

महेन्द्र०—इसमें कौम परस्ती का सवाल नहीं है मि० होरमस जी! हम लोगों में बहुत अर्से से 'वर्णाश्रम धर्म' स्थापित है। अर्थात् ब्राह्मण ब्राह्मण की कन्या से विवाह करे और क्षत्री क्षत्रियों में से शादी करे। मगर ऑनरे० मि० पटेल के बिल का मतलब यह था कि एक ब्राह्मण एक ढेढ़ की लड़की से विवाह करले तो वह विवाह कानूनन जायज़ है। उसी तरह ऐक ढेढ़ एक ब्राह्मण कन्या से विवाह करले तो वह भी कानूनन ठीक मानना चाहिये। यह विषय हिन्दुओं के धर्म शास्त्र के अनुसार विवाह के महान् नियमों का उच्छेदन करता है। मि० पटेल ने ही यह स्वीकार किया है। उन्होंने उस बिल में ही बताया था कि

"Any custom or any interpretation of Hindu Law the contrary not-with-standing". अर्थात् यह देखते हुए उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि हिन्दुस्तान में रिवाज या धर्म शास्त्र मि० पटेल के बिल से विरुद्ध अभी तक विद्यमान हैं ?

होरमसजी—तो क्या यह आजकल की सी चालू हालत रखना चाहिये ?

महेन्द्र—कभी नहीं ! आजकल की दशा भी बड़ी दुःखमय है, सौ-सौ दो दो सौ की दलबन्दियां या समूह या कहिये घेरखाने, कमी के कारण लड़कियों का व्यापार, सन्तोष प्रद मेल न मिलने से लड़कियों को भुगतने पड़ने वाले दुःख और परिणाम में आत्म-घात की संख्या, पैसा पास होते हुए भी कन्याओं की कमी के कारण माता पिताओं का अपने लड़कों का शीघ्र विवाह कर देने से अभ्यास तो जहाँ का तहाँ रह जाता है और "टींगूजी बिन चींगूजी" जैसे बावन रावों से भरा हुआ हमारा यह देश ! अधमता की परिसीमा आ रही है, और शताब्दियों के दुःखों से दुखी कुटुम्ब सहज शिक्षा के प्रकाश के कारण अन्धकार में दृष्टि डालने के लिये समर्थ हुए हैं। जाति के स्वार्थी अगुआओं की अत्याचारी प्राणघातक आज्ञाओं का अब अधिक आदर नहीं हो सकता। ज्ञाति का हित चाहता है, ऊंचे स्वर से पुकारता है कि रूढ़ियों का पुराना सेहरा अब एक ओर रखकर भावी प्रजा के हित के लिये हिन्दुओं के सांसारिक नियमों में परिवर्तन की आवश्यकता है।

होरम०—उस पर भी आप ऑनरे० मि० पटेल के बिल के साथ सहानुभूति नहीं रखते, और आजकल की हालत पर इस तरह

अफ़सोस भी ज़ाहिर करते हैं, तो फिर आप कैसा क़ायदा रखना चाहते हैं ?

महेन्द्र०—आपका प्रश्न यथार्थ है। आरम्भ में हमारे यहां चार वर्ण स्थापित हुए थे; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । ये प्रत्येक वर्ण अपनी अपनी जाति में से कन्या ले सकते थे। उस समय, ब्राह्मणों की इतनी अधिक उपजातियां नहीं थीं। इस समय तो हमारी स्थिति निकम्मी होती जारही है। ब्राह्मण ब्राह्मण में या पास की उपजाति में ही वर कन्या इच्छानुकूल योग्य हैं परन्तु हमको तो देखने भर को ही हमारा धर्म हमारे पंचों ने अच्छी तरह समझा रक्खा है और हमारे समुदाय में ही लड़के लड़कियों की शादी करनी पड़ती है। यह स्थिति बीच के अव्यवस्थित समय के कारण ही होगई है, जिसका इतिहास लम्बा है, परन्तु अब इस स्थिति में हम अपनी इस अवनत दशा और अधमता को सहन नहीं कर सकते। अतः पहिले के अनुसार पुनः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की चार जातियां बन जांय, इसी पर हमारा लक्ष्य है। हिन्दू समाज के शुभ चिन्तकों का हमारे इस लक्ष्य के प्रति पूर्ण अनुमोदन है। ऐसा होने से लड़के लड़कियों की कमी एक दम बन्द होगी। हिन्दू संसार के सांसारिक दुःख नष्ट होंगे, संसार सुधार की अनेक प्रकार की पुकार करने वालों की चित्तवृत्ति देशोन्नति के अन्य मार्गों में जुट जायगी। औद्योगिक और राजनैतिक प्रवृत्ति को अवकाश मिलेगा।

होरम०—मेरे ख्याल में अगर ऐसा है तो मि० पटेल को अपना बिल वापिस ले लेना चाहिये।

महेन्द्र०—और वही हुआ भी है। इतना अधिक करने की आवश्यकता भी नहीं थी। सिर्फ़ 'Caste' के आगे 'Sub' शब्द लगाने से सारा मतलब सिद्ध हो सकता था। इस शब्द के लगाने से बिल का सारा मतलब बदलकर यह होता है कि अंतर्जातियों के पक्षपाती हों तो विवाह अनियमित नहीं होने पाते। उदाहरण के तौर पर औदीच्य टोलकिया और औदीच्य सहस्र ब्राह्मणों के परस्पर विवाहों को उसकी मदद मिलती है। किन्तु हमारी इच्छा यह है कि विवाह जैसे महत्वपूर्ण विषय में सरकारी क़ानून हमको अन्धे बैल की तरह रास्ता बतलावे उससे तो हम ही स्वयं अपने नियमों को सुधार लें, यह अधिक वाञ्छनीय है।

इतने में ही एक हृष्ट पुष्ट युवक के आजाने के कारण उक्त बात-चीत बन्द हुई, और सेठ होरमस जी इजाज़त लेकर बिदा हुए।

❀ परिच्छेद—नवां ❀

गोदावरी का आत्मघात ।

केवल 'Sub' शब्द लगाने से ऑन० मि० पटेल का बिल हिन्दू प्रजा को माननीय हो ऐसा आपको इस पारसी सज्जन से नहीं कहना चाहिये था।

आह्लाद उत्पन्न करने वाले उस हृष्ट पुष्ट युवक ने अन्दर आते ही कहा।

"कारण" सेठ ने पूछा।

कारण यही कि हिन्दू प्रजा अब अशिक्षित नहीं है। आठ दस वर्ष पूर्व ऑन० मि० वसू ने इससे भी अधिक गम्भीर एवं महत्व का बिल रक्खा था। वह भी अन्त में अस्वीकृत हुआ था। इस बिल में हिन्दुओं के अन्य ज्ञातियों में परस्पर होने वाले विवाह को क़ानूनन ठीक मानने की प्रार्थना थी। उसमें 'sub' शब्द लगाने से अन्तर्ज्ञातियों में होने वाले विवाहों को नियमित माना जाय ये ठीक है, किन्तु अब हिन्दू प्रजा पागल या ग़ाफ़िल नहीं रही है। पिछले चार पाँच वर्ष की जाग्रति ने कितनी शताब्दियों का कार्य किया है, अतएव अब सांसारिक विषयों में सरकारी सहायता मांगने की अपेक्षा समझदार हिन्दुओं के समक्ष ही वर्णाश्रम धर्म का महत्व समझाने की आवश्यकता है। ऐसे प्रश्नों का निर्णय सरकार द्वारा होने की अपेक्षा प्रजा के द्वारा होना अधिक शोभा देता है। जिस प्रकार स्वराज्य के लिये इंगलैंड की प्रजा के कान खोलने की आवश्यकता प्रतीत होती है उसी प्रकार इस विषय में अपनी ही प्रजा में चर्चा कर वर्णाश्रम धर्म पुनः संस्थापित हो वैसा करना आवश्यक है। यही हितकर है। इसी से हिन्दू धर्म का अनुसरण कर पवित्र जीवन बिताने वाले करोड़ों व्यक्तिओं के चित्त से असन्तोष हटेगा। अन्यथा 'sub' शब्द बढ़ाकर भी बिल पास करावें तो भी उसका पालन करना प्रजा के हाथ में है, और उसके बाद के आन्दोलन का तुम्हारी दृष्टि में क्या मूल्य है? अवाञ्छित क़ानून के सामने असन्तोष कितना अधिक होगा? और—

इसी समय धर्म लक्ष्मी इस कमरे में आई। घड़ी भर को शान्ति व्याप गई।

धर्म लक्ष्मी—"अहो भाग्य! आज भाई को बोलते सुन रही हूं"

"यह कैसे"? सेठ ने बात काट कर पूछा।

धर्म लक्ष्मी—चौबीसों घण्टों के विशेष भाग में किताबें पढ़ना, घड़ी भर शाम को घूमने जाना, निवृत्ति के समय में अनन्य उदासीनता

उग्र मनन रूप तप, कौन जाने क्या करना विचार रक्खा
है। महान् तपस्वी बनकर—

"क्यों, क्यों, देवी ? इतना अधिक ! मैं कुछ समझा नहीं," सेठ ने कहा—

"मैं भी कुछ पूरा समझती नहीं। आज कल करते हुए इनको चौबीस बरस होने आये। हम इसके पालक—इनके मानों ट्रस्टी—अरे कहिये कि माता पिता, अतएव इनकी हाल से सारी चिन्ता हमको ही रही। जाति में अभी कन्या की कमी है। वह इनकी दृष्टि में है। अगुआओं की इच्छा पूर्ण न हो तबतक वे लोग बन्द होने के नहीं। इतने पर भी कितने उद्योग से इच्छा शंकर की लड़की उत्तम का विवाह करना मैंने विचारा था। वह बात भाई से एक समय कहते—

"पर मैं यह नहीं जानता हूं, देवी ! तुम प्रयत्न कर रही हो यह बहुत अच्छी बात है। मैं सत्य कहता हूं कि इस विषय में मैं अनभिज्ञ हूं," सेठ ने कहा।

"पर प्रयत्न करने से क्या, ! भाई से यह बात मैंने सहज में एक बार कही थी, झट "नौन्सेंस" कह कर मुझको फटकार दिया। उसके बाद दो दिन तक उपवास किया और तब से मौन पड़े हुए पुस्तक पढ़ा करते हैं। उनकी उपस्थिति को घर में कोई भाग्य से ही जान सकता है उस प्रकार एक योगीराज की तरह मानों ईश्वर स्मरण मनन में व्यग्र वे चुपचाप जीवन बिता रहे हैं। इसीलिये मैं कहती हूं कि आज ही उनको कहते हुए सुन रही हू"।

इस स्थान पर इस युवक के कुछ वृत्तान्त की आवश्यकता है। इसकी माता इसको कुछ मास का ही छोड़कर मरगई थी। इसके पिता की अवस्था उस समय चालीस वर्ष की थी। घर की स्थिति बहुत

Please dont write in books

सामान्य थी और वैसे में इस युवक की माता के पीछे उसके पिताने घरकी जो कुछ पूंजी थी उससे एवं और कर्ज करके जाति भोजन किया। ब्याज दर ब्याज के चक्र में कुटुम्ब झोका खाने लगा और उस चिंता के भार से इस युवक का पिता डेढ़ दो बरस की लम्बी बीमारी पाकर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

इस युवक के घर में अब कोई नहीं रहा था अतएव वह अपने पिता के एक वृद्ध चाचा की देखरेख में रहने लगा। वह भी एक गरीब मनुष्य था परन्तु दया के कारण और कुछ कर्तव्य समझकर भतीजे के निराश्रित बालक को उसने अपनी देख रेख में रखा। ज्योंहीं वह युवक वहाँ गया त्योंही उसके पिता के लैनदार इस वृद्ध चचा के पास दौड़ आये। भतीजे के लड़के का पालन करना ही एक भार रूप था, वहां हजारों रुपयों का ब्याज दर ब्याज से जुड़ा हुआ देना यह वृद्ध चचा किस रीति से दे सकते थे? लैनदारों के तकाजे से अन्त में वे तंग आगये। इसके अपने कुटुम्ब में कोई नहीं था। केवल जैसा कि यह युवक उस समय बालक था वैसे ही एक दूसरे भतीजे की एक कन्या चौदह एक वर्ष की निराधार होने से उसका भी वह निर्वाह करता था और कुछ ही समय के पश्चात् इस कन्या का उसने बड़े शहर में अच्छा प्रतिष्ठित धनवान् कुटुम्ब देखकर विवाह कर दिया था। इतना कर इसको संसार की उपाधि से मुक्त होना था, परन्तु इस कन्या के विवाह के पश्चात् कुछ ही मास पीछे इस भतीजे 'युवक' का, जो उस समय बालक था, भार भी उसके ऊपर आ पड़ा था।

कन्या जिसका नाम गोदावरी था उसका इस वृद्ध पुरुष ने अच्छा प्रतिष्ठित धनवान् कुटुम्ब देखकर विवाह कर दिया था, उसके श्वसुराल वालों की जीविका देखने का अवकाश उसको बहुत कम मिला था। सिर्फ कुटुम्ब देखा था, धन भी देखा था परन्तु लड़की के श्वसुराल वाले

गोदावरी का आत्मघात।

अपने कुटुम्ब में जीवित मूर्ति रूपी हुंडी को एक से अधिक करने की व्यापारिक वृत्ति वाले हैं यह बात वह भोला मनुष्य नहीं जान सका था। इस लड़की का विवाह किये पूरे छः महीने ही व्यतीत हुए होंगे कि इतने में ही इस कुटुम्ब में एक दूसरे धनवान कुटुम्ब की तरफ़ से अच्छी रक़म टीके में देने की मांग आई। अतएव गोदावरी को पीहर भेज देने का निश्चय उसकी श्वसुराल वालों ने किया। जितने कुछ समय में गोदावरी अपने पिता के वृद्ध चचा के पास रही थी उतने समय में उसके दादा ने उसको कुछ ऊँची शिक्षा देदी थी और उसका, एक अच्छे कुटुम्ब में विवाह कर देने की बात से वह अपने कर्तव्य को कर चुकने का हार्दिक आनन्द अनुभव करता था। इसी समय गोदावरी की सुसराल से पत्र आया कि वह बहुत दिनों से यहां है। उसके लिये कोई देखता तक नहीं है अतएव उसको एक दम बुला लिया जाय। इस जहाँगीरी हुक्म से बुड्ढा स्तब्ध हो गया! किस की लड़की! कैसे पीहर में! और किस को लाने के लिये भेजें?

यह बालक केवल पाँच वर्ष का था। उसको एक आदमी के साथ गोदावरी को बुलाने के लिये भेजा। सुशिक्षिता, समझदार और साध्वी गोदावरी को उसके ससुराल वालों ने इसके पीहर की स्थिति को देखकर निबाह लिया होता तो अच्छा होता, ऐसा यह वृद्ध पुरुष विचारता था। इसलिये इसको बुलाने के लिये भेजते हुए इसके अन्तःस्थल में बड़ा दुःख हुआ। परन्तु इसके चित्त में एक विचार उत्पन्न हुआ कि पूर्वकाल में सुने गये कण्व ऋषि के देखते हुए तो मैं इस बालिका का बहुत पास का सम्बन्धी हूं। मृत्यु पर्यन्त देह से देह के धर्म निभाना चाहिये। यह सोचकर पाँच वर्ष के इस युवक और भूमिये को गोदावरी को बुला लाने भेजा। पर युवक ने वहां जाकर क्या देखा? साध्वी और गरीब गोदावरी अपने ऊपर

कोई बात न आने पावे इतनी बात के लिये हाथ जोड़ती, पैर पड़ती थी। सास ससुर पास पास बैठे थे उनके पैर अपने आँसू से भिगो रही थी। ऐसे दुःख में अपना भाई आया हुआ देखकर वह उससे मिलने दौड़ी। गोदावरी ने हाथ पैर जोड़ने के, प्रार्थना के, सारे प्रयत्न निष्फल होते देखे। बालक भाई के आजाने से इसने हृदय को कुछ धैर्य दिया। मध्याह्न का समय था। दो दिवस से गोदावरी ने, अपने सास ससुर से विनती करते हुए भी नहीं मानने से, अन्न सदृश कुछ भी लिया न था। इतनाही नहीं परन्तु पाषाण हृदय उसके सास ससुर ने बुलाने आये हुए भाई का ज़रा सन्मान तक नहीं किया। गोदावरी के चित्त में खेद पर खेद होने से उसका हृदय पूर्ण रीति से भर गया। उसने पाँच एक मिनिट ठहर कर कुछ विचार किया, और सहसा भाई के साथ पीहर जाने को उद्यत हुई। 'यह तेरे चीथड़े! कौन रखने आवेगा इनको भी साथ लेती जाव!' सासने जाते ही कहा। गोदावरी ने उसका किञ्चित प्रत्युत्तर नहीं दिया, किंतु उसके मैके से आया हुआ भूमियाँ ताड़ गया कि बहिनको कुछ क्लेश हुआ मालूम होता है। अतएव तत्काल ही कपड़े और पुस्तकों से भरा उसका बक्स इसने सिर पर रख लिया और यह भी बेपरवाह जैसा मुख बनाकर गोदावरी के पीछे चल पड़ा।

नगर के बाहर पहुंचने के बाद एक अहीरिये के झोंपड़े में कुछ फल उसने देखे। परिचय निकाल कर वहां उसने चिलम पी, और माँगकर कुछ फल बालक को दिये जो उसने अच्छी तरह खाये। गोदावरी को भी आग्रह पूर्वक दिये परंतु उसने नहीं लिये। अतएव स्वयं भी वह पीछे पीछे बिना खाये ही चल दिया।

सायंकाल के करीब छै: बजे वे लोग भक्तिपुरा, जहां कि उनको पहुंचना था, पहुंचने को हुए। गोदावरी को उस समय प्यास लगरही थी

"ठहरो बहिन ! अब गाँव आधे कोस भी नहीं है" भूमिये ने कहा ।

(परन्तु गोदावरी ने तत्काल ही पानी पीने की इच्छा प्रगट की । पास में ही एक कुआ अवश्य था, किन्तु वह बहुत गहरा था । गोदावरी ने भूमिये का बड़ा साफ़ा लेकर पेटी में से निकाले हुए लोटे को बाँध कर पानी खींचना चाहा, किन्तु वह कपड़ा सितह तक नहीं पहुंचा । अतः पास के ही खेतों में किसानों को बता कर उनके पास कपड़ा हो तो ले आने को गोदावरी ने भूमिये से कहा । भूमिया उस तरफ लेने दौड़ा । सौ कदम भी नहीं गया होगा कि, गोदावरी ज़ोर से 'अम्बे मात की जै' कह कर कुए में कूद पड़ी । भूमिया यह सुनकर तुरन्त ही पीछे दौड़ा और लड़के को पकड़ लिया क्योंकि वह कुए में देखने जा रहा था ।)

भूमियाँ बड़ा लाचार हुआ । पास के खेतों के किसानों को बुलाकर रस्से की सहायता से एक मनुष्य को कुए में उतारा । यह सब करने में पन्द्रह मिनिट नहीं लगे होंगे । नीचे पहुंच कर कुए में उतरने वाले व्यक्ति ने एक छोटा खटोला माँगा जो कि उतार दिया गया । उस पर डाल कर गोदावरी को कुए से ऊपर निकाला, परन्तु उसमें जीव नहीं रहा था ।

भक्तिपुरे में ही सूर्यास्त होने को आया । भूमियाँ के साथ भेजा गया बालक गोदावरी को लेकर अभी आ पहुंचेगा, इस आशा से इसके पिता के वृद्ध चाचा टकटकी लगाये उसके आने की राह देख रहे थे । देखते देखते वह थक गये अतएव उन्होंने इनके आने के मार्ग की ओर एक आध मील सामने जाना निश्चय किया । ये कुए पर आ पहुंचे वहाँ इन्होंने गोदावरी को चार दयालु किसानों द्वारा कुए में उतर कर निकाली हुई, भूमियाँ चिल्लाता हुआ, बालक उसके पास पड़ा हुआ,

इत्यादि दृश्य देखे। भतीजे की लड़की, लाड़ चाव से पालन की गई, सुशिक्षिता कर धनवान कुटुम्ब में विवाहित हुई, विवाह के कुछ ही महीनों बाद उसके बिना अपराध केवल दूसरे टीके की रकम की लालच से सौत आने के कारण इस रीति से उसका आत्मघात और यह हमारे हिन्दू समाज का विचित्र नियम!

"हम हिन्दू लोग हजारों वर्ष पहिले बहुत उन्नत थे। हमारे धर्म शास्त्र सारे भूगोल के मनुष्यों को शिक्षक रूप हैं।" इस आशय की हमारी भूतकाल की भावनाएँ और भविष्य के स्वप्न किसी काम के हैं? भूतकाल की भावनाओं को अब एक ओर रख दो। यूनान के वे किसी काम नहीं आईं। भविष्य को विचार सदृश करना, वर्तमान में प्रयत्नवान् रहना, यह बड़ा नियम एक व्यक्ति के जीवन को उसी प्रकार प्रजा के जीवन को एकसा लागू होता है। आपकी सन्तानें, लड़कियाँ योग्य लड़के नहीं मिलने से और लड़के योग्य लड़कियाँ न मिलने से दुःखी होती हों जोकि तुम्हारे शास्त्रों से भी आगे बढ़ कर कर डालने वाली सैकड़ों उपजातियों के कारण हुआ है तो महात्मा मनु की आज्ञानुसार देश काल और स्थिति का अनुसरण कर तुम उसमें सुधार कर सकते हो। महात्मा रानाडे आज जीवित होते तो तुमको यही परामर्श देते कि उपजातियों का एकीकरण करो और पूर्वकाल का वर्णाश्रमधर्म पुनः संस्थापित करो, जिससे धर्म की रक्षा होगी और प्रजा में लड़के और लड़कियों की कमी के सारे कष्ट नष्ट होंगे।

भक्तिपुर से जातीय लोगों को बुलाकर दुःखी गोदावरी के देह का इसी जगह अग्नि संस्कार करने में आया। सेठ महेन्द्रप्रसाद भी कुछ दूर के कुटुम्बी होने से आये हुए थे। उन्होंने स्वतन्त्र व्यवसाय आरम्भ किया था। परन्तु बम्बई के साहसिक पारसी व्यापारियों के समागम के

कारण [illegible] उनका व्यापार जम रहा था। वृद्ध पुरुष का रोना सुन कर सेठ महेन्द्रप्रसाद के दिल पर बड़ा असर हुआ और वे कहने लगे, देखिये! यदि इस बालक की देख रेख में आपको किसी प्रकार की असुविधा प्रतीत हो तो इसको आनन्द से मेरे यहां छोड़ दीजिये। यह कुटुम्ब में रहेगा और जो इसके भाग्य में होगा उतनी शिक्षा प्राप्त करेगा।

"और इसके लेनदारों के लिये मैं क्या करूं?" इस वृद्ध पुरुष ने पूछा।

महेन्द्रप्रसाद सेठ ने उनका भी हिसाब निश्चय करके अपनी कोठी से निकलने वाली धर्मादा रकम से उनको चुकाने का वचन दिया। इस प्रकार यह वृद्ध पुरुष अत्यन्त कष्ट प्रद बन्धन से मुक्त हुआ। गोदावरी की स्थिति से इसको बड़ा आघात हुआ। हिन्दू सांसारिक बन्धनों के प्रति इसके चित्त में तिरस्कार उत्पन्न हुआ। इसको कुछ ऐसा भास हुआ कि यह संसार तुच्छ है। अतः इसके चित्त में उग्र वैराग्य उत्पन्न हुआ और किसी गुफा में मानो इस रीति से चला गया कि जगत में इसके विषय की कोई चर्चा ही नहीं है।

महेन्द्रप्रसाद सेठ के कुटुम्ब में इस बालक के आने के पश्चात् उनकी कोठी में द्रव्य की दिन प्रति दिन वृद्धि होने लगी। इधर धर्म लक्ष्मी का प्रेम भी उस बालक पर दिन प्रति दिन बढ़ने लगा। बालक भी अच्छे संस्कार वाला देखने में आया और पूर्व जन्म की कुछ शिक्षा लेकर ही जन्मा हो, ऐसा प्रतीत हुआ। धर्मलक्ष्मी को उस समय लक्ष्मीप्रसाद के अतिरिक्त अन्य कोई सन्तान नहीं थी। अतएव इस बालक का पालन कर उसको योग्य शिक्षा देने की व्यवस्था करना उसने अपने ऊपर ले लिया।

इस रीति से पाला हुआ यह बालक अवस्था प्राप्त करते हुए अतुल पराक्रमी और दिव्य देहधारी प्रगट होने लगा। उत्तम गुरु-शिक्षा

क्या नहीं कर सकती? इसकी मानसिक वृत्तियां सुदृढ़ और उच्च प्रकार की होने लगीं। इस पर भी गोदावरी को बुलाने जाना—ससुराल में उसका रोना—कुए में गिरना ये सारे दृश्य इसके चित्त से भूले न थे और यह सब घटना जो अद्यापि नहीं समझ सकता था, वो अब वय प्राप्त करने पर समझने लगा और हमारे सांसारिक बन्धनों की ओर उसके हृदय में तिरस्कार का भाव उत्पन्न हुआ। धर्मलक्ष्मी के साथ समय २ पर यह हिन्दू—समाज के नियमों के विषय में वार्ता विनोद करता और उसको बात चीत में हरा देता था। धर्म लक्ष्मी इससे फूली न समाती थी वरंच उसके माता तुल्य स्नेह में वृद्धि होती थी। बाईस वर्ष का हुआ, तब से धर्म लक्ष्मी इसके लिये कन्या की तलाश में लगी। जाति में समुदाय या गोल बँध गये थे। इन समुदायों के बाहर से लड़की लाना पीनल कोड के गम्भीर से गम्भीर अपराधों के इकट्ठे भार से भी अधिक भाररूप अपराधित कृत्य गिना जाता था। अगुआओं की रिश्वत की इच्छा पूर्ण न हो तब तक किसी जगह किसी का भी विवाह नहीं होने दिया जाता था। अन्त में इच्छा शंकर नामक एक गरीब ब्राह्मण की उद्यम बाई नामक लड़की का, जिसका कि सम्बन्ध कहीं नहीं होता था विवाह इस युवक के साथ करने की योजना अनेक प्रयत्नों से की गई और इस विषय की सर्व प्रथम बात धर्मलक्ष्मी ने इस युवक से की, जिसके सुनते ही वह चमक उठा और बोला:—"माता मैं क्या स्वार्थी हूं? जाति और उसके द्वारा प्रजा को सुख देने का जिसका लक्ष्य नहीं है, उसका जन्म वृथा है! जाति के अनेक सज्जन समुदाय रूपी कैदखानों में सड़ते हैं, कुछ लोग तो कन्याओं की कमी के कारण कुआरे रहते हुए दिन पूरे करते हैं और कितने ही अपने दल में लड़कियाँ उभर पड़ने के कारण एक ऊपर दूसरी और दूसरी ऊपर तीसरी कन्या लासकते हैं। इस समय में मैं अपने लोगों को पूर्व कालीन वर्णाश्रम धर्म पुनः स्थापित

कर कन्याओं की कमी दूर करने के उपदेश के लिये निकल पड़ूं तो क्या बुरा है ? गोदावरी के कुए में गिरने की मानो कलकी ही बात है। मैं उसको भूल नहीं सकता, इस लिये कृपा कर मेरे लिये किसी प्रयत्न में अभी पड़ियेगा नहीं—"

धर्म लक्ष्मी—" क्यों भईया ! इच्छा शंकर की लड़की अनपढ़ है और ज़रा अच्छी नहीं है इसलिये तो ऐसा नहीं कहते हो ?"

" माता यह मैं तुम्हारे ही मुख से सुन रहा हूं। मुझको सताइये नहीं। ईश्वर के लिये ! मुझे इस विषय में कष्ट न देने की मेरी प्रार्थना है। हिन्दू समाज जिस समय दुःख सागर में डूब रहा है, ऐसे समय में मुझे मेरा धर्म पालन करने में विघ्न न डालिये। ऐसे में अभी विवाह करना ! 'नौन्सेन्स' "

यह नौंसेन्स कहने पर तुमको कष्ट देने के प्रायश्चित करने के लिये मुझको दो उपवास करने पड़ेंगे।

ऊपर की बात के बाद धर्म लक्ष्मी ने फिर यह विषय छेड़ कर उसके चित्त की भावना को कभी दुखाया न था। और यही बात वह सेठ के आगे कह रही थी, जहां से हमारी बात का विषयान्तर हुआ है।

धर्म लक्ष्मी—रूइया भले ही योगीराज बन जाय या उपदेशक बन कर निकल पड़े इसमें इन्कार नहीं; परन्तु ऐसा करने से पहिले अपने सन्मुख इस विषय की चर्चा चला कर इसके कारण पूछोगे या नहीं ?

महेन्द्र प्रसाद—धन्य है, देवी, तुम्हारी भावना को ! तुम इस विषय के कारणों में उसके साथ नहीं उतरी हो !

धर्मलक्ष्मी—मेरे तो चार प्रश्नों में ही बोलती बन्द कर देता है।

इसी जगह दो बालकों को ले जाने वाला नौकर हांपते हांपते आकर ज़ोर से चिल्लाया।

"सेठ साहब! माँ बाप—गज़ब होगया! कुञ्जविहारी और मधुसूदन को दो बावाजी जैसे दिखाते दाढ़ी वाले बदमाश उठा लेगये! मैं बहुत दूर तक गया—दौड़ा! मेरे कपड़े झाड़ी में फट गये! पर कोई हाथ न आया! थक गया हूं—अरे बापरे—मर जाऊँगा, थकने के दुःख से अधमरा हो गया हूं–किसी को भेजना चाहिये। अरे बापरे" इतना कहते कहते वह भूमि पर आड़ा पड़ गया।

नौकर हाँपता हाँफता पीछे दौड़ने के कारण थक कर भूमि पर पड़ गया यह देख वहाँ खड़ी हुई माता का हृदय टुकड़े टुकड़े होने लगा। धर्मलक्ष्मी "हाय! हाय!" करती आक्रन्दन करने लगी।

महेन्द्रप्रसाद ने समय देखकर पड़े हुए नौकर के मस्तिष्क पर ठण्डे पानी में भिगोकर रूमाल रक्खा। युवक वहाँ खड़ा था दौड़ा और तीन दूसरे नौकरों को सम्हाल के लिये बुला लाया।

महेन्द्रप्रसाद—देवी, धैर्य रक्खो! मुझे असर नहीं होता। ईश्वर पर तुम्हारी अगाध श्रद्धा की और तुम्हारी भक्ति की जिस क्षण कसौटी होती है, उसमें तुम एक अज्ञान और नास्तिक के समान जड़कपन को जाने दो। अनन्त ब्रह्मांड का नायक! मेरा परमात्मा! अब तो इन बालकों का जवाहिरात के लिये बध होना रोक दे यही हमारी प्रार्थना है!

महेन्द्रप्रसाद से आगे बोला नहीं जा सका। दीवार पर बनी हुई श्रीकृष्ण परमात्मा की अनेक किरणों सहित चित्रित छवि के सामने वह निर्जीव के समान घड़ी भर देखता रहा। इतने में ठण्डे पानी से कुछ आराम मिला हो इस प्रकार भूमि पर पड़ा नौकर स्वस्थ होने लगा। अपने ऊपर सेठ की कृपा देखकर, अपने सारे अपराध माफ हुए समझ कर, सेठ द्वारा अपनी की गई सम्हाल से स्वस्थ हुआ और रोता रोता बोला।

आज सबेरे जल्दी उठ कर दोनों भाई यहीं मेरे पास खेलते खेलते दौड़ कर आये थे। मुझ से कहा कि तेरी छत्री को खोलने की जगह हमने ऐसी अच्छी तरह पीतल की कील लगा दी है कि अब वह कभी खुल नहीं सकती। मैंने कहा कि यदि ऐसा है तो मुझे दूसरी छत्री मिलेगी। फिर कहा कि हमको बाहर फिराने ले जाय तो दिला देंगे, ऐसी ऐसी बातें करते थे। थोड़ी ही देर बाद मैं उनको स्नान कराने ले गया।

इतने में ही युवक तैयार हो आया। उसने अपनी ज़रूरत के सामान की एक छोटी सी गठरी, हर एक स्थान में बिछाने योग्य बिस्तर और नौकर की छत्री, जिसमें कि बच्चों द्वारा चोबे लगाने की हँसी करने को नौकर ने कहा था, वह शीघ्रता में ले ली और बोला, 'मैं जाता हूं।'

"कहाँ?" महेन्द्रप्रसाद सेठ ने पूछा।

"भाइयों की तलाश में!"

इतना कहते हुए गद्‌गद् कण्ठ से परमात्मा का स्मरण करता हुआ वह आगे बढ़ा। महेन्द्रप्रसाद ने धैर्यता पूर्वक जाते जाते उससे कहा।

भाई ईश्वर तेरा सहायक हो! मैं भी यहाँ से इसी क्षण इसी प्रवृत्ति में लगता हूं और चारों दिशाओं में अनेक मनुष्यों को दौड़ादेने का प्रयत्न करता हूं।

युवक इन शब्दों को पूरा सुन भी न पाया था। उसका हृदय इसने दृढ़ करके ऐसी घटनाओं का कारण खोज ने की ओर लगा दिया था। उसके जाने के पश्चात् महेन्द्रप्रसाद ने धर्मलक्ष्मी को धैर्य बँधाते हुए कहा—

देवी, देखो, यह लड़का तो गया, अब ज़रा धैर्य्य रक्खो, परमात्मा इसके अनुकूल हो ऐसी प्रार्थना करो। हम सारे नौकरों के साथ जिस मन्दिर में वे दर्शन करने गये थे, वहाँ जाते हैं और पुलिस विभाग को ध्यान रखने का प्रबन्ध करते हैं। अन्य भी जो कुछ आवश्यक होगा करेंगे। आकाश पाताल एक कर डालते हुए यदि ये बालक जीवित होंगे, तो वापिस तुम्हें मिल जायँगे। सबसे बड़े में बड़ा मेरा हथियार अपने प्रभू में श्रद्धा ही है और यही तुम्हारा भी हो! तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी मन्दिर तक भले ही चलो। पर एक बात याद रखने की है, देवी! इससे सीखना इतना ही है और अपने इस दुःखी चौघड़िये में मुझे न कहना चाहिये तो भी कहना पड़ता है कि, आभूषणों से बालकों को सजाया जाता है वो उसके लाभ का एक पक्ष है और आवश्यकीय परिजनों के बिना उनको लुटेरों की आँखों के आगे प्रदर्शित कर, खेल कूद में छोड़ कर उनकी जान जोखम में डालना यह आभूषणों के उपभोग का दूसरा पक्ष है।

❀ परिच्छेद १० वां ❀

बावन लाख का दूसरा बोझा।

सारे संसार के राजा महाराजाओं के रत्नादिक एकत्रित क्या किसी प्रदर्शन में देखने को नहीं मिलते ?" इस आशय के वैभव में ही मस्त रहने वाले और वैभव के तरंगों की विचार-सृष्टि में जीवन बिताने वाले सम्राट के इस विचित्र प्रश्न का प्रत्युत्तर भारत वर्ष का कोई कवि शिरोमणि देगा, तो वह यही कि "जन समाज का उपकार करने के लिये ही जिसने देह धारण किया है, जीवन के प्रत्येक क्षण में मातृभूमि के उदय का ही जो मंत्र वास्तविक रूप में जपा करता है, ऐसे एक देशाभिमानी नर वीर का अन्तःकरण उससे कहीं अधिक मूल्यवान, विशेष लाभकारी और भव्य प्रदर्शन है" ।

"जन समूह के लाभ के लिये ही जीवन बिताने वाले पवित्र और परोपकारी नर रत्नों के जीवन का मूल्य आँकने के लिये मनुष्यों द्वारा निश्चित की गई आंकड़े की संख्या तुच्छ प्रतीत होती है। जोगिया वस्त्र धारी साधुजनों में जन समाज पर उपकार के लिये जीवन बिताने वाले कुछ अपवादों के अतिरिक्त अन्य साधुओं ने जन समूह को रोते छोड़कर स्वयं शीघ्र मोक्ष मिलने का मार्ग ग्रहण कर एक प्रकार से स्वार्थ-साधन का वेष किया है" यदि यह आक्षेप किया जाय, तो क्या अनुचित है ? प्रस्तुत जीवन में जिस समय मातृभूमि की सन्तानें अन्य प्रजा के सन्मुख उसकी छत्र-छाया में स्वतन्त्रता में रहने की याचना करने में प्रयत्नशील हो रही हैं और जिसके लिये अन्य सभी उद्यमों को कुछ काल के लिये एक ओर रख दिया है, ऐसी दशा में एक भूमि की मांटी से उत्पन्न

होकर उसी भूमि की मांटी में पुनः मिलने के लिये उत्पन्न होते हुए भी इन सन्तानों की आवाज़ में अपनी वास्तविक आवाज़ न मिलाने वाला क्या पक्का कृतघ्नी नहीं ? ऐसे जोगिया वस्त्रधारियों से तो हमारे श्वेत वस्त्रधारी साधु महाशयों की चरण रज हमारे शीश पर अधिक शोभित होगी। वैभव में लोटने वाले धनाढ्य जिस प्रकार हवा खाने के लिये किसी समय अमेरिका जैसे देश की यात्रा के लिये जांय और वहां अपने धन का सदुपयोग जनसमाज के हित के लिये कर बतावें, उसी प्रकार अनन्त पुण्यसंचय के कारण अधिक काल तक स्वर्ग में रहने से उकता कर स्वर्ग के ये देवता पृथ्वी पर आकर परोपकार करने की ही प्रकृति के अधीन रहते हुए जन समाज पर परोपकार करने में अपना जीवन बिताते दृष्टिगोचर होते हैं और प्राकृत पुरुषों में सामान्यतः वैराग्य उत्पन्न न होते हुए भी श्वेत वस्त्रों को जोगिया कर उदर निमित्त अनेकों उपाधियों में हम उनको पड़े हुए देखते हैं। उनके लिये तो 'दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम' वाली कहावत चरितार्थ होती है। इससे तो वे लोग किसी अच्छे उद्योग में लग जांय, तो देश का कुछ लाभ हो यह कहना अनुचित नहीं है। परन्तु ऐसे लोगों को उनकी इच्छा से उद्योग प्रदेश में भेज देने की चाबी हाथ आनी चाहिये।"

उपरोक्त अनेक विचार मन में करता वह युवक भक्तिपुरे से बाहर निकलकर जेष्ठ मास की अमावस के दिन पहाड़ी और भयानक जंगल झाड़ी वाले एवं दुष्काल के कारण और भी अधिक भयानक रोग धारण किये हुए प्रदेश में जारहा था। सौभाग्य से बादल होने के कारण उसको धूप नहीं सता रही थी, अतः छोटी गठरी तथा छत्री बग़ल में दाबे, खुर्जी कन्धे पर डाले, हाथ में एक लकड़ी लिये प्रातः स्मरणीय सती सीता की तलाश में जाते हनुमान जी की भांति अद्यावधि निभाये गये ब्रह्मचर्य से उत्पन्न वेग के कारण मन में ये तरंगें करता वह युवक चला जारहा था :—

"देखो, इन बालकों को उड़ा ले जाने वाले भी बाबाजी !" विचारे हांपते हुए नौकर के किये गये वर्णन को देखते हुए तो उनका भी जोगिया वेष होना चाहिये। इस प्रकार के ५० लाख से भी अधिक मनुष्य दीन भारतीयों की परसेवा की कमाई पर वृथा भाररूप हो जाने वाले भारत में मौजूद हैं। किसी प्रजा में दूसरे की कमाई पर आधार रख कर निरुपयोगी जीवन बिताने वाले इससे चतुर्थांश मनुष्य भी होने का ठीक ठीक हिसाब बताने वाले किसी विद्वान के लिये १ लाख रुपये का इनाम महाराजा गायकवाड़ सदृश देशाभिमानी निकालें, तो क्या कोई प्राप्त कर सकता है? ऐसे जोगिया वेषधारी चाहे अपराध या पापपूर्ण जीवन व्यतीत करते हों * अनीति में आसक्त रहते हुए संसार में अज्ञात रूप से पापमय जीवन बिता रहे हों; परन्तु केवल जोगिया वस्त्र पहिन कर एक दो मन्दिर में गद्दी लगा कर बैठें अथवा गलियों में फिरें, इससे उनको हमारे कुटुम्ब के एक विशेष अंगीभूत समझ कर उनका पालन करना हमारा धर्म होगया है। यदि ऐसा हम नहीं करते हैं, तो पापी या नास्तिक समझे जाते हैं।"

उक्त विचारों की लहर में युवक चला जा रहा था, कि इतने में—"ठहरो ! तुम कौन हो ? कहां जाते हो ?" दो काले घोड़ों पर चले आने वाले अपरिचित एवं अन्य देशीय घुड़सवारों में से आगे वाले ने युवक से पूछा।

यह अब तक भक्तिपुरे से क़रीब तीन मील ही आया होगा। युवक ने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था, कि इस प्रकार अपरिचित

---

* विशेष अनुसन्धान के लिये 'क्रिमिनैल ट्राइब्स' नामक पुस्तक पढ़िये।

I wish ... [handwritten]

लुटेरे-सदृश व्यक्तियों से यहां अकस्मात् भेंट होगी, अतएव वह किसी प्रकार भी आकस्मिक घटना के लिये तैयार नहीं था। क्षण भर हृदय स्थिर कर सावधान हो, समय से सचेत हो, प्रत्युत्तर देने का विचार कर ही रहा था कि, इतने में--

"क्या बहिरा है? गूंगा है? क्यों? जवाब नहीं देता है?" आगे वाले सवार ने फिर पूछा।

युवक अभी स्तब्ध ही खड़ा था, इतने में पिछले सवार ने जो अवस्था में कुछ बड़ा था, अगले से कहा--

"अरे जाने दे ना! निरा रैवारो और बहिरा सा दीखता है! कुछ नहीं है! चल बढ़!"

दोनों सवार आगे बढ़े। जहां तक वे दिखाई पड़े, युवक देखता ही रहा। तब पास के एक टीले पर चढ़ कर उसने उनकी ओर देखा, तो वे भक्तिपुरे की परिक्रमा सी करते, बीच में आने वाले आड़े मार्ग को छोड़ कर दौड़ते जाते दिखाई पड़े। युवक ने घड़ी भर में अनेक तर्क-वितर्क कर डाले।

सायंकाल का समय होने आया था। पास ही कुछ ऊंचे एक टीले पर एक पुराना देवालय प्रतीत हुआ, वहां जाने का रास्ता नहीं दीखता था, किन्तु विकट मार्ग होते हुए भी युवक उस ओर चल दिया। दिवस अस्त होने के पूर्व ही वह जीर्ण देवालय के निकट जा पहुंचा। सावधान रहने के विचार से और आगे न जाकर रात्रि यहीं व्यतीत करने का विचार कर वह युवक मन्दिर के आगे वाली कोठरी की ओर गया। इतने में ही उसने सामने से चार स्त्रियों को अपनी ओर आते देखा।

इन चारों स्त्रियों में से युवक ने एक को तो पहिचान लिया। कारण कि तीन वर्ष पूर्व छै मास तक वह महेन्द्रप्रसाद सेठ के घर पर नौकर रही थी। उसकी अवस्था लगभग चालीसेक वर्ष की होते हुए भी वह पैंतीसेक की प्रतीत होती थी। वह भावसार जाति की थी। पति से अनबन होजाने के कारण उसके पति ने उसको पंच साक्षी त्याग दिया था और तब से केवल मजदूरी कर वह अपना निर्वाह करती थी। निठाले संग साथ के कारण सेठ के घर से भी उसको छुड़ा दिया गया था। उसकी अन्य तीन सहेलियां उससे कम अवस्था की थीं, जो कि युवक के देखने में पहिले नहीं आई थीं।

"चमेली! इस समय कहां से आरही है?" सहसा मिलने से कुछ वार्तालाप करना ही चाहिये, यह विचार कर युवक ने पूछा।

"हम सब इस देवालय में दर्शन कर आईं और कथा सुन आईं" इतना कहकर वे सब उतरने लगीं।

युवक ने फिर कहा—"अरे, मगर ठहर तो चमेली! भवितपुरा तो यहां से दूर है—आस पास कोई ग्राम नहीं है—यह मार्ग यद्यपि कभी मुझे भयानक नहीं प्रतीत हुआ, परन्तु अभी मुझे दो सवार मिले, इससे मेरे विचार से तुम जैसी तीन चार स्त्रियों का यहां से अँधेरे में जाना हानिकारक है-"। युवक के वाक्य को पूरा करने के पहिले ही चमेली कहते हुए उतरने लगी कि—"हमको क्या हानि है? हम तो अभी पहुंच जायेंगी"।

"वाह, स्त्री जाति! 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' वही यह!! अस्तु! मनुष्य के सामान्य धर्म के वश होकर मुझे उनके भय की सूचना देने के अतिरिक्त अन्य कुछ प्रयोजन नहीं"

यह विचार करता हुआ युवक मन्दिर के पास की कोठरी में प्रविष्ट हुआ। युवक ने जो दृश्य वहां देखा, वह अपने देश की स्थिति देखते हुए पाठकों से अनेक वार देखा हुआ होना चाहिये। "साधू महाराज" लगभग पैंतीस वर्ष की अवस्था वाले कुछ शुष्क प्रकृति और श्याम वर्ण के थे। हर घड़ी दम लगाने के कारण उनके नेत्र लाल रहते थे। इस समय उनके पास तीन मनुष्य उपस्थित थे, जिनको कि शिष्य कहना चाहिये। साधू के पास बैठने वाले को शब्द चिन्तामणी में दूसरे पर्याय के अभाव के कारण मेरे विचार से शिष्य कहना अनुचित नहीं है। इनमें से एक तो किसी दलित जाति का हिन्दू प्रतीत होता था; अन्य दोनों २-२ इंच लम्बी दाढ़ी वाले युवा पुरुष थे। एक ओर चिलम, रकाबी और प्याले तथा दूसरी ओर खेलने के लिये तितर बितर ताश पड़े हुए थे, जिनसे कि कुछ ही समय पूर्व उनका ताश खेल चुकना स्पष्ट विदित होता था।

सेठ महेन्द्रप्रसाद की पारमार्थिक वृत्ति का लाभ अनेक व्यक्तियों को प्राप्त होता था। इन साधू महाराज को दो वर्ष पूर्व इसी देवालय के जीर्णोद्धार के लिये सहायता दिलाने का इस युवक ने कार्य किया था। महाराज के व्यवसाय में जीर्णोद्धार का कार्य तो ज्यों का त्यों ही रह गया था परन्तु इस युवक ने उनकी सहायता की थी, अतः निरुपाय वश उनको कहना पड़ा—"आओ, फक्कड़! लो, तुम भी गांजे का एक दम लगाओ!"

युवक यह दृश्य देखकर चकित रह गया। उसने मन में गहरा श्वास छोड़ा "ऐसे भी बाबा!" और मन में कुछ विचार करते हुए उसने महाराज से कहा—

"महाराज ! मैं गांजा नहीं पीता हूं ।" मानो पराधीनता वश इस समय अन्यत्र जाना नहीं था—युवक चुपचाप वहीं बैठा रहा ।

"लाओ ! लाओ !!" कुछ उगी हुई दाढ़ी वालों में से एक बोला, "वो क्या दम लगायेगा ? देख, फक्कड़ !

जो न पिये गांजे की कली,
उस लड़के से लड़की भली—"

यूं कहकर युवक के अतिरिक्त चारों जने खूब हँसे ।

युवक ने अस्थान में आना अनुभव किया, परन्तु रात्रि इसी स्थान पर व्यतीत करने के अतिरिक्त उसके लिये अन्य मार्ग नहीं था । जिस कार्य के लिये वह यह यात्रा कर रहा था, उसमें इस प्रकार के मनुष्यों का सहमिलन कदाचित् उपयोगी भी हो जाता है, ऐसा विचार कर उसने सहन शक्ति को सहायता के लिये आव्हान किया और अपनी मानसिक उच्च स्थिति से मानो नीचा उतर कर वह इस मण्डली के सन्मुख आ बैठा ।

जहां बाबाजी बैठे थे, उस कोठरी के पास ही दो कोठे और थे । ये दो सौ वर्ष पूर्व के बने होने के कारण इतने जीर्ण हो चुके थे कि उनको गिराने के लिये लैंडो की एक लात का प्रहार भी विशेष ही पड़ता । इसके अधोभाग को ईंटें सारी घिस चुकी थीं—। दीवारों में भक्काले पड़े थे । एक कोठे में बाबाजी की रसोई होती थी और दूसरे में एक खटोला बिछा हुआ पड़ा था । भूमि पर नीचे एक चटाई बिछी पड़ी थी । दीवार पर गांजे और भांग की एक थैली टँगी हुई थी । मैंचेस्टर की मिलों के बने कपड़ों के थानों के स्त्रियों के चित्र दीवार पर गोंद से चिपका कर उस दीवार को सजा दिया गया था ।

बाबाजी पर उपकार होते हुए भी उन्होंने युवक से भोजन या पानीके लिये पूछकर उसका स्वागत तक नहीं किया । यह युवक खाट वाले कोठे में गया, अपना सामान एक ओर रक्खा, पास की गठरी एक कील पर टांग दी और छत्री दूसरी कील पर टांग कर उसपर अपनी चादर रखदी । रात अंधेरी होने के कारण दीवार की सूराखों से कुछ प्रकाश आरहा था । कोठे में २-३ मिनिट ठहर कर वह पीछा बाहर आया। चारों जने परस्पर गुपचुप बातें करते प्रतीत हुए परन्तु युवक ने इसका ध्यान न कर बात चीत प्रारम्भ की ।

"महाराज ! यह मकान इतना जीर्ण होगया है, यह बात मैं जब आप सेठ के पास आये थे, तब जान जाता, तो केवल ढाईसौ रुपये की सहायता जो हुई थी, उससे कुछ अधिक आपका निश्चय सत्कार हुआ होता–"

"अरे, फक्कड़ !" बाबाजी बीच में ही बोल उठे। "कौन देता है और कौन लेता है ! हमारे नसीब में लिखा था, सो हमको मिल गया। क्यों सच बात है न ?" युवक के अतिरिक्त चारो ही निष्प्रयोजन हंस पड़े और एक के बाद एक गांजे की चिलम लेने लगे ।

युवक ने जाना कि बाबाजी इतने कृतघ्नी नहीं प्रतीत होते, किन्तु इससे भी आगे बढ़कर इस मण्डली के जो कृत्य हों, उनमें भी मिले हुए होने चाहिये; परन्तु जिस कार्य के लिये वह अभी निकला था, उसमें उसको तत्पर होने की आवश्यकता थी। अतएव बाबाजी के कृत्यों के विचार को उसने हृदय में एक ओर रख दिया । दिन भर के परिश्रम के कारण उसको बड़ी कड़ाके की भूख लगरही थी । घर से गठरी में उसके रसोइये ने कुछ खाने को बांध दिया था, परन्तु उसके देखने में पानी कहीं भी नहीं आया; अतएव उसने बाबाजी से पूछा–

"महाराज ! यहां पानी कहां मिलेगा ?"

"नीचे की तलहृया में !" बाबाजी ने सूखा जवाब दे दिया। इस जवाब से क्षण भर तो युवक स्तब्ध रहा, किन्तु निडर होकर अपनी लकड़ी और गठरी में से लोटा लेकर नीचे जाने के पूर्व गठरी के लिये कुछ चिन्तित होकर उसकी ओर देखने लगा। गठरी में कुछ रक़म नहीं थी, किन्तु कितने ही कागज़ात तथा अन्य वस्तुएं थीं जो दूसरे के लिये निरर्थक थी, पर उसके उपयोग की थीं, अतएव चिन्ता भरी दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए वह अपनी लकड़ी और लोटा लेकर नीचे उतरा। अमावस की रात और बादल होने के कारण तारागणों का टिम-टिमाता प्रकाश तक न था। लगभग ३०० क़दम नीचे उसको उतरना था। रास्ता बतलाने वाला भी वहां कोई न था। बाबाजी और उनके तीनों साथी गांजे की धुन में गप्पें लड़ा रहे थे। युवक नीचे उतरने लगा। जंगल, अंधेरी रात और ग्रीष्म काल होने से जानवर का भय स्वाभाविक था। ऐसे में हो जिस स्थान पर उसे चमेली तथा अन्य तीनों स्त्रियां मिलीं थीं, उसी स्थान पर उसने एक चालीसेक वर्ष का पुरुष प्रयत्न कर चढ़ता देवालय में आते हुए देखा। युवक को देखकर वह रुक गया। उसकी जेब में एक छोटी डिब्बी थी, जिसका बटन दबाते ही बिजली का सहसा प्रकाश हुआ। युवक को उसने पहिचान लिया और युवक ने भी सेठ महेन्द्रप्रसाद के यहां एक सराफ के मुनीम के रूप में समय समय पर हुन्डो के रुपये देने के लिये आने के कारण उसको पहिचाना।

"इस समय कहां से ?" युवक ने पूछा।

"इस देवालय के जीर्णोद्धार के लिये बाबाजी को पचीस रुपये देने के लिये मुझे भेजा है। आते आते देर होगई। प्रातःकाल

मुझे यात्रा में जाना है, अतएव अभी दे आऊं यह विचार कर निकला था, परन्तु अँधेरा होगया। इस समय आप कहां जारहे हैं ?" मुनीम ने पूछा।

"मैं नीचे तलइया से पीने के लिये पानी का लोटा भरने जा रहा हूं"। युवक ने कहा।

"ठहरो, मेरे पास यह रोशनी की सहायता है, अतएव मैं ही शीघ्र जाकर लेआऊंगा।"

"अगर ऐसा है, तो मैं भी साथ चलता हूं" यह कह कर युवक और वह मुनीम साथ साथ नीचे उतरे और तलइया से पानी लेकर तुरन्त ऊपर आगये। दोनों ने कोठरी में जाकर यथेच्छा फलाहार किया और जल पिया। मुनीम बाहर आया। बाबाजी ने उससे कहा, "देखो, बच्चा! यह समय योगियों की समाधि का है, सो रात के समय इधर कभी मत आना। समझे!"

"अरे महाराज! यह तो आपके इस मंदिर की मरम्मत के लिये अपने मालिक के यहां से पच्चीस रुपये लेकर आये हैं"। युवक ने बाहर आकर कहा।

"ऐसा है तो बहुत अच्छा, उस बिस्तर पर रक्खो!"

यह बात हो रही थी कि उसी समय दो सवार घोड़ों के पीछे चलते हुए ऊपर आए और कोठरी के आगे आ खड़े हुए।

"अब इसकी बारी है, मेरे सिर से दण्ड उतरा।" एक ने बाबाजी के सामने जाकर कहा।

"चल, चल, अभी ।" दूसरा कहने वाला था कि दाढ़ी वालों में से एक ने उसको इशारे से रोका । युवक ने यह देख लिया । इतने में दाढ़ी वाले दोनों जनों ने नवागन्तुक सवारों को कोठरी से कुछ दूर ले जाकर कान में कुछ कहा ।

यह सब बातें युवक कुछ समझ नहीं सका, अतएव उसने बाबाजी से कौतूहलवश प्रश्न किया कि, "ये लोग कौन हैं ?"

"तुम लोग अन्दर जाकर सोजाओ !" बाबाजी ने उत्तर दिया । युवक को बहुत बुरा लगा, किन्तु समय देखकर अन्दर जाकर अपनी खाट पर आ बैठा । इतने में बाबाजी के अतिरिक्त पांच मनुष्यों में से एक ने, जो टोली बांधकर एक ओर बातें कर रहे थे, आकर उस कोठे का जिसमें युवक बैठा था द्वार बन्द कर बाहर से सांकल चढ़ा दी ।

युवक को कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि दोनों बालकों का हरण करने वाले या तो ये लोग ही होने चाहियें, अथवा ये उनकी ओर से रखे गये जासूस होने चाहिये । थोड़े काल में ही अपने उद्देश्य का स्थान हाथ में आया हुआ देखकर उसके अन्त:करण में कोठे में बन्द होते हुए भी सन्तोष की भावना उत्पन्न होगई । स्वतन्त्रता के भोग से ध्येय साध्य हुआ, अथवा ध्येय का मार्ग प्रत्यक्ष हुआ ! युवक किञ्चित् भी अधीर नहीं हुआ । इतना होने पर भी वह अपने छुटकारे के लिये प्रयत्नशील रहा । कोठे में एक छोटी जाली थी, उसमें से उसने बाबाजी को पुकारा ।

"चुप रहो ! तुम्हारे बदन पर मैं बैंत लगाऊंगा ।" एक सवार ने कहा ।

युवक ने देखा कि इन लोगों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है और किसी नीची जाति के लुटेरे हैं; अतएव सावधानी के लिये इसने पहिले अन्दर से कोठे की सांकल लगा ली और फिर पूछा—

"क्यों मियाँ बेंत लगाओगे ? क्या तुम्हारा कुछ अपमान हुआ है ?" युवक ने पूछा।

"दोपहर को तुम हमको मिले थे और बहिरे होने का ढोंग किया था।" एक सवार बोला।

युवक ने जान लिया कि ये वे ही सवार थे, जो दोपहर को मिले थे।

"मियाँ तुम खड़े रहते तो, मैं तुमको जवाब देता। तुमको देख कर मैं स्तब्ध होगया था। मेरी ज़बान खुलने के पहिले तो तुमने घोड़े दौड़ा दिये थे। क्यों ठीक है न ?" युवक ने कहा।

"हम तुम्हारी कुछ नहीं सुनते हैं, ज़्यादा बोलेगा, तो अभी तेरी जान ली जायगी।" सवार ने उत्तर दिया।

"मियां, जान तो किसी की कोई ले नहीं सकता, वह तो अपने रास्ते पर ही चली जाती है"—

इतने में ही विश्वास्यपात्र एक आदमी ने आकर इन लोगों को सूचना दी कि भक्तिपुरे के थाने से पुलिस के सिपाही आ पहुंचे हैं और जगह जगह तलाश करने के लिये निकलेंगे। यह सुनकर टोली के पांचों आदमी भयभीत हुए। बाबा भी बिचारा डरा। विश्वासपात्र आदमी के कहने पर एक मिनट भी ख़राब नहीं किया जा सकता था। जिस कोठे में युवक बन्द था

उसके लिये बाबाजी ने एक बड़ा ताला दिया जो सवारों ने तुरन्त लगा दिया और चुपके से टोली के इन पांचों मनुष्य तथा बाबाजी उन्हों ने पहाड़ी उतर कर अपना रास्ता लिया। पच्चीस रुपये देने आने वाला मुनीम भी कभी का चला गया था, कारण कि वह प्रातःकाल ही जाने के लिये कहरहा था।

ताले में बन्द इकला पड़ा हुआ युवक अमावस की अँधेरी रात्रि की भयानकता के कारण ज़रा नहीं डरा। उसको तो यही विचार आता था कि "यद्यपि मैं इस प्रकार बन्द हूं, परन्तु मधुसूदन और कुञ्जविहारी को ले जाने वाले अथवा उनको ले जाने में सहायता करने वाले चोर मिलगये। ईश्वर करे वे बालक जीवित हों और मैं यहां से छूटकर इन लोगों का पीछा करूं"। यही विचार भिन्न भिन्न रूप में उसके चित्त में उठ रहा था। विचार ही विचार में आधी रात होगई। इतने में ही कोठे के पीछे से मानो कोई चोर सेंध लगाता हो, एक के बाद एक ईंट निकाली जाने लगीं।

आधी रात तो आने वाली आपत्ति से छूटने सम्बन्धी तरंगों में युवक ने व्यतीत की। ऐसे विषम समय में भी थकावट के कारण कुछ सन्तोषवृत्ति स्वीकार लेने से उसे निद्रा का आभास होने लगा। निद्रा के झोंके आने से उसे प्रतीत हुआ कि परम कृपालु परमात्मा ने अकस्मात विपत्ति के बादल विस्तृत करना विचारा हो, अतएव वह सचेत होगया। पहिले तो उसे ऐसा मालूम हुआ कि कोई जानवर किसी जन्तु के लिये भाग रहा हो, अथवा बिल खोदता हो, परन्तु छिद्र में से ध्यान पूर्वक देखा, तो बाहर से किसी मनुष्य का हाथ एक के पश्चात् एक ईंट निकालता हुआ मालूम पड़ा। इसने सोचा कि ऐसा करने वाला चाहे जो भी अज्ञात पुरुष हो, और छूटने के

पश्चात् इसके साथ चाहे जो गति हो, किन्तु इसके हाथ से स्वतन्त्रता का द्वार खुलता है। यह देखकर उसने प्रथम ईश्वर का उपकार माना—

"हे परमात्मा! हम पामर प्राणी अपने छुटकारे के लिये अपनी बुद्धि के अनुसार अनेक प्रकार के प्रयत्नों से जीवन व्यतीत करते हैं, परन्तु हे सर्वव्यापी प्रभो! आपकी एक इच्छामात्र से हमारी विविध विपत्तियां विद्युत वेग से विलीन हो जाती हैं। हम मिथ्या ममत्व करते हैं कि हमारे प्रयत्नों का अमुक परिणाम प्राप्त हुआ है। प्रभो! आपकी इच्छा मात्र ही सर्वत्र प्रबल है और उसी के आधीन रहने की हम मनुष्यों को अपना प्रयत्न करने के साथ साथ सुमति दीजिये। प्रभो! घड़ी भर पहिले ही मैं इस कारागृह तुल्य कोठरी में अपने को बन्द देखता था। बाबाजी और उसके साथी पुलिस के थाने के भय के कारण पलायमान हो गये हैं। यहाँ से मैं किस प्रकार छूट सकूंगा, इसका ध्यान मुझे नहीं था। इस ही समय मुझे प्रतीत हुआ कि विषम स्थिति में पूर्व पुण्यों के कारण मनुष्यों की किस प्रकार आप सहायता करते हैं।

इस प्रकार युवक विचार कर रहा था कि अकस्मात् चार छै ईंटों का एक रोड़ा खिसका और एक खिड़की जितनी जगह होगई। अन्दर से बाहर खड़े हुए मनुष्य को युवक ने स्पष्ट देखा। ज्योंही बाहर से ईंटें खिसकाने वाले ने अन्दर युवक को देखा, त्योंही वह भयभीत होकर भागता बना। युवक ने अपनी गठरी, लकड़ी, इत्यादि लेकर एक दम छलांग मार बाहर आकर उसको न भागने को कहा—

"तू चाहे जो भी हो! तेरे इस कार्य से मैं छूट सका हूं, अतएव तेरे भागने का कोई कारण नहीं!"

मनुष्य खड़ा होगया और युवक ने पास जाकर उससे कहा—

"भाई ! तुम्हारे आने से जेल के सदृश इस कोठे से मेरा निकास हुआ है, अतएव तुमने एक बड़े मित्र का कार्य किया है।"

अमावस की रात थी और तारों का भी पूरा पूरा प्रकाश न था, क्योंकि आकाश में पृथ्वी को कुछ भी प्रकाश देने वाले बुध, गुरु, मंगल के तारों पर तितर बितर बादल छा गये थे और चन्द्र के लिये प्रतीक्षा करता मानो शुक्र का तारा बहुत समय पूर्व ही क्षितिज में उतर आया था। ऐसे समय में भी इस मनुष्य की आकृति का एक दो बार परिचय होना युवक को प्रतीत हुआ। आल्हाद और प्रेम की भावना से उसके कन्धों पर हाथ फेरते हुए युवक ने कहा—

"तुमने भागने का किसलिये विचार किया ? यह कहो।"

"भाई, ऐसा करने से इस कोठे में बहुत द्रव्य मिलेगा' यह मुझसे कहा गया था, इसी लालच से--"

"तब फिर वह द्रव्य लिये बिना तुम कैसे जाते हो ?"

"समझ लीजिये कि वह हमको मिल गया ; इस दीवार में छेद कर देना मात्र ही मेरा काम था"।

"परन्तु तुम्हारे दूसरे साथी आकर क्या लेंगे ? इस कोठे में तो कुछ भी नहीं है, यह मैंने कुछ घंटों के परिचय से जान लिया है।"

"अन्य साथी भक्तिपुरे से अभी आते होंगे, यह तो वे परीक्षा करेंगे।"

"भक्तिपुरे का एक एक भील महात्मा दादूराम की कंठी के बिना नहीं —"

युवक इस प्रकार कह रहा था कि, दादूराम का नाम सुन कर वह भील कूदने और नाचने लगा। "वाह ! दादूराम महाराज ! तुम्हारा नाम सुनकर पवित्र होगया। भाई ! दादूराम महाराज ने हजारों भीलों को दुर्व्यसन से मुक्त किया है। रात के समय हमारे कन्हैया प्यारे की महिमा के गीतों की धुन में जो घर के आंगन को तीर्थ स्थान सदृश कर देता है, वो दादू महाराज का प्रताप !"

"वाह दादूराम ! वाह कन्हैया !"

"पावन किये गोमती के जल हो लाल.........

मुरली वाले रणछोड़ रे—"

श्रीकृष्ण की धुन में यह भील अंधेरी रात में भी प्राचीन वत् मानों प्रतीत हुआ और उपरोक्त भजन ऊंचे स्वर से गाने लगा।

युवक ने कहा–"भलेमानस, तुमको मैं भक्त कहूं या तलाशी लेने आने वाला चोर कहूं ?"

"इस चमड़े के थैले को चाहे जो कहो रे !

नीम में इक डाल मीठी रे।

रणछोड़ रंगीले।"

यह कह कर वह फिर गाने लगा।

इसकी श्रीकृष्ण भक्ति की धुन इस निर्जन वन में दूर तक पहुंचने लगी और देखते ही देखते इसी स्थान पर दौड़ते हुए चार मनुष्य आ पहुंचे । इनमें एक तो बाबाजी को कुछ ही समय पूर्व मंदिर की मरम्मत के लिये अपने सेठ के दिये हुए पचीस रुपये देने आने वाला वही मुनीम था, जो युवक के साथ जाकर नीचे से पानी लाया था। अन्य व्यक्ति अपरिचित थे । मुनीम ने अपनी बिजली की बत्ती (टौर्च) दिखलाते हुए कहा—

" अब यहां विलम्ब करना अनुमतियुक्त नहीं "

" मेरे मित्र, तुम यहां लौट कर किस प्रकार आये ?" युवक ने मुनीम से पूछा ।

मुनीम—"मैं इस कृतघ्नी बाबाजी को सहायता में पचीस रुपये देने नहीं आया था। सत्य पूछते हो तो तुम्हारी सम्हाल करना ही मेरा हेतु था । तुमको कोठे में बन्द कर बाहर से ताला लगा दिया गया था, तब अन्य कुछ उपाय प्रतीत न होते देख मैं नीचे चला गया था । पहाड़ी के नीचे मेरे लिये एक तेज़ घोड़ा तैयार था । मैं तुरन्त ही भक्तिपुरे गया और कोठे में जो लाखों का खज़ाना था, उसे लेने हम हमारे भक्त को कष्ट दिया ।"

" वाह ! वाह !" युवक ने कहा ।

" महेन्द्रप्रसाद सेठ ने कैसे कैसे प्रबन्ध करने विचारे हैं ?"

यह प्रबन्ध किसने किये हैं, यह हमको अभी प्रकट करने की आज्ञा नहीं, परन्तु सेठ महेन्द्रप्रसाद ने चारों ओर मनुष्यों को दौड़ा दिया है, इसमें सन्देह नहीं ।

❀ परिच्छेद ग्यारहवां ❀

सेवा बुद्धि या सकाम भक्ति

नरहरी—होगा, स्वामी ! किसी अन्य भला चाहने वाले का ये प्रयत्न होगा । परोपकारी अन्तःकरणों में निर्दोष की रक्षा के लिये, अन्तर्यामी परमात्मा वास करता ही है । भाई ! ऐसे परोपकारी व्यक्ति का नाम मुझे इस प्रातःकाल में स्मरण आया है; अतः राम नाम की तरह वह भी कहने में क्या दोष है ?

मुनीम—आज्ञा भंग का, अन्य कुछ नहीं ।

नरहरी—ऐसा है ? वाह ! होगा, उसके लिये अभी मैं आग्रह नहीं करता, परन्तु यदि सच पूछते हो तो तुम जो कहीं इस मण्डली के साथ न होते, तो मैं तो चित्तमें ऐसा ही विचार करता कि मैं एक टोली से निकलकर लुटेरों की दूसरी टोली में फंसा हूं । अच्छा, इस भक्त को यह किसने समझाया कि जिस कोठे में मुझे बन्द किया गया था उसमें लाखों का ख़ज़ाना था ?

मुनीम—लाखों का ख़ज़ाना क्यों नहीं था ? किसी देश की सम्पत्ति उस देश के सिपाहियों की, क़िलों की, या तोपों की संख्या में ही नहीं होती, देश की असली सम्पत्ति तो सुशिक्षित, उत्तम चरित्र वाले देश प्रेमी युवक ही हैं ।

नरहरी—और ये तुमको किसने सुझाया ?

मुनीम—प्रकृति ने ! समय ने ! स्माइल्स ने ! *

नरहरी—अरे ! तुम्हारा भला हो ! तुम अंग्रेजी जानते हो ?

मुनीम—अंग्रेजी पढ़ा होता तो किसी ऑफ़िस में पन्द्रह रुपये की नौकरी करने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही नहीं मिलता ! इस मुनीमाई में रोटी तो खाने को मिलती है सो—

वे पहाड़ी से नीचे उतरे। सूखे हुए मैदान से कुछ झाड़ियों के पुष्पों के पराग से मिश्रित सुगंधित शीतल समीर की लहर आरही थी। अन्धकार का साम्राज्य पूर्ण रीति से जम चुका था, अतः नेत्रों को आनन्दित करने वाला कुछ भी दीखता न था। भक्त को गीत गाने के लिये रखना पड़ा था क्यों कि प्रत्येक झाड़ी में लुटेरों के छिपे होने का भ्रम था, अतएव वे लोग जैसे हो वैसे शान्ति से उदय की बाट देखते हुए प्रयत्नपूर्वक मार्ग से चले जा रहे थे।

अंधकार क्या सर्वदा रहा करता है ? जीव, जन्तु, मकानात और जगत के सारे स्थूल पदार्थों को जिस प्रकार अमुक समय के लिये ही परवाना मिलता है, उसी प्रकार संसार को अमुक वस्तु स्थिति के लिये भी ऐसा ही प्रकृति का नियम स्पष्ट समझ में आता है।

दूर पर—कर्णेन्द्रिय के सुनने की मर्यादा की सीमा पर, कुकडू-कूं होने लगा ! संसार में मुर्गे को जन्म देने की ब्रह्मा की योजना यदि कभी सबसे अधिक उपयोगी दिखाई दीगई हो, तो वह इस प्रकार अमावस्या की अंधेरी रात्रि में चलने वाले यात्रियों के लिये होनी चाहिये। बिना अग्नि के धूआँ नहीं होता; उसी प्रकार ग्राम के बिना मुर्गे नहीं होते अतएव पास में ही ग्राम होने का आभास हुआ।

---

* Smile's character में इस आशय का उल्लेख है।

किन्तु इतने में ही दूरदर्शी भक्त की तीव्र आंखों ने कुछ ही दूरी पर अग्नि भी प्रज्वलित देखी। भय और आशा की भावना से सब ने उस पर विचार किया। समीप आने पर पर्णकुटी में कोई मनुष्य भट्टी सिलगाकर बैठा हुआ देखने में आया। जाड़े की सी सर्दी नहीं थी, चौमासे की खेती ठीक करने का समय नहीं था, ग्रीष्म के मध्यान्ह में तप करने का भी समय नहीं था; तो फिर वह मनुष्य अंधेरी रात में अपने पास आग जलाकर कैसे बैठा रहा होगा। इस सम्बन्ध में सब ने अपनी अपनी समझ के अनुसार भिन्न भिन्न विचार किये। भक्त ने कहा कि 'भूत है' मुनीम ने विचारा कि कोई चोर है। दूसरे भील आश्चर्य में चकित होकर देखते ही रह गये। युवक ने जाना कि यदि इकला पुरुष है, तो वहां जाने से कुछ रहस्य का पता लगेगा, अत: वहीं जाना चाहिये।

समीप आते ही उन्होंने देखा कि सारी रात्रि भर तापने को एक बड़े लक्कड़ के जलने से उसके अंगारों की बड़ी भट्टी पास की पर्णकुटी की एक कोठरी में जल रही थी! कुछ ही दूरी पर एक व्याघ्र-चर्म पर सूखे हुए बबूल के काठ के समान एक मनुष्य की निद्रावश आकृति प्रतीत होती थी। पास ही में एक तंबूरा पड़ा था, एक शंख भी देखने में आया। "यहां कभी किसी महाराज का ऐसा स्थान पहले हमने तो देखा नहीं!" मुनीम ने "महाराज" निद्रा में हों तो जगाने के विचार से पास आकर कहा।

" हम इतनी इतनी देर करके बहुत बार आते हैं, परन्तु ये 'अस्थान' तो आजही देखते हैं! भीलों में से एक बोला।

'मेरा प्यारा कन्हैया! कन्हैया! बस रहा सब लोक में' कहकर भक्त ने नाचना आरम्भ किया। 'मुरदा तो नहीं है? एक दूसरे भील ने कहा।

नरहरी के पास में जाते ही 'बाबाजी' आलस मरोड़ते हुए बैठे होगये।

"इस समय तुम्हारे पास तम्बाकू है?" उन्होंने कहा

'अरे महाराज! आप बोल उठेंगे, यह घड़ी भर पहले हमने नहीं जाना था। लीजिये ये तम्बाकू,' कहकर एक भील ने चिलम निकाल कर भर दी।

"कहां से आते हो?"

मुनीम ने जवाब दिया 'महाराज! इस ओर गाम कितनी दूर है?

"भूल गये हो?"

"संसार में भूले ही पड़े हैं! महाराज! क्या आपकी तरह हैं? आपने यहां आसन कब का जमाया है? हमारे लिये तो बड़ा अच्छा हुआ दो घड़ी विश्राम मिलेगा"—

"वाह महाराज!" भक्त से नहीं रहा गया।

"सब संसार हुआ घर मेरा,
क्या मेरा क्या तेरा—
ज्ञान बिना ये सब अंधेरा
मिटा नहीं तुझ फेरा।
वाह, वाह, जोगी जी, क्या सुनूँ ज्ञान तुम्हारा जी"

"महाराज! ये तम्बूरा भी किसी समय बजाते होंगे?" मुनीम ने कुतूहल मात्र से पूछा।

"तम्बूरा नहीं, यह तो इकतारा कहलाता है ! इकतारा ! मेरे पास लाओ।"

"वाह ! वाह !" भक्त ने यह कह कर हाथ में लेकर घूर घूर कर उसे देखा और फिर गाने लगा--

"तेरा भरोसा मुझे भारी रे
कुंज विहारी तेरा भरोसा मुझे भारी०"

मुनीम--भक्तवर, अब अपनी चतुराई रहने दीजिये ! अब महाराज के हाथ में तम्बूरा और इकतारा दीजिये।

बाबाजी--हमको अच्छी तरह से नहीं आता है !

एक भील--महाराज ! तब इसको रख क्यों छोड़ा है ?

दूसरा भील--तुझे इससे कुछ मतलब ? रक्खा है तो देख काम आया। सवेरे के समय भक्तराज ने भगवान का नाम सुनाया। वाह, वाह, मेरे कुंजविहारी तुम्हारा ही नाम जपते हैं।

युवक ने विचार किया कि इस स्थान में मनुष्य की बस्ती नहीं दिखाई देती, भीलों की जानकारी के अनुसार यहां पहिले पास के ही किसी उजड़े हुए ग्राम का स्मशान था। बाबाजी का स्वरूप पहले किसी के देखने में न आया था। अतएव ऐसा एक अपरिचित मनुष्य बिलकुल निर्जन बन या कहना चाहिये कि एक समय के स्मशान में किसी प्रकार के साधन बिना और किसी की सोबत बिना अंधेरी रात्रि में बिना प्रसंग अग्नि जलाकर पड़ा रहे, इसमें कुछ कुतूहलजन्य हेतु होना चाहिये। योग की साधना करने वाले इस प्रकार अकस्मात् आवश्यकतानुसार आसन जमालें ये असम्भव नहीं था, किन्तु यह मनुष्य निरा

अज्ञानी प्रतीत होता था और बिना साधन इस प्रकार ऐसे स्थान पर उसकी स्थिति अनेक कल्पना कराती थी।

युवक ने मुनीम को पर्णकुटी से बाहर ले जाकर अपनी शंका प्रकट की। मुनीम ने अन्वेषण करने की आवश्यक सम्मति प्रकट की। भील लोग भी गुपचुप इस सम्बंध की वार्तालाप में लग गये और बीच बीच में कोई कोई उतावले होकर बाबाजी के लिये भय उत्पादक शब्द उच्चारने लगे।

युवक को विचित्र ही संयोग देखने में आया, बाबाजी की आकृति में भय या अन्य कुछ भी बात ज़रा देखने में नहीं आयी। कुतूहल की सीमा बढ़ने लगी, अतः युवक ने शान्ति से कहा—

"महाराज! आप गुजराती तो समझते मालूम होते हैं?"

"जी हां" महाराज ने कहा।

"देखिये, इस नितान्त निर्जन वन में किसी समय के स्मशान में किसी प्रकार के साधन बिना, अंधेरी रात्रि में आपका पड़ा रहना देखकर हमको तर्क वितर्क होते हैं, अतएव आप यदि हमारे साथ ही चलें तो क्या कुछ हानि है?"

"अहा, ऐसी सज्जनता का मुझे आज ही अनुभव हो रहा है। कितने घंटों के–कितनी घड़ी के शेष जीवन के लिये मैं तुम्हारे साथ चलूं, भाई?"

"क्यों? ऐसे शोकोद्‌गार की क्या आवश्यकता है? जीवन की लम्बाई तो सांसारिकों को प्रिय होती है, त्यागी को तो—

'अवैद्य वा मरण मस्तु युगान्तरेवा' युवक ने कहा।

" अरे भाई ! तुम जो कहते हो वह ठीक है।' परन्तु मैं सांसारिक भी नहीं हूं और त्यागी भी नहीं हूं। मैं तो उभय भ्रष्ट हूं। मनुष्य तो रहा ही नहीं, साथ ही पशु भी नहीं होने पाया हूं, घड़ी दो घड़ी में मेरा अन्त समय समीप होने का मुझ से कहा गया है।

" ऐसा किसने कहा है ? " युवक ने पूछा।

बाबाजी–" भला तुम ही जानो। मुझे उसकी अब कुछ चिन्ता नहीं है। पर–पर–पर–पहिले उस शंख को एक ओर रखदो, उसको कब्ज़े में लेलो।"

युवक––" ये क्यों भला ? "

बाबाजी–" कारण कि जिस प्रकार मेरी मृत्यु शीघ्र होने का मुझ से कहा गया है, उसी प्रकार वह शंख तुम सब की मृत्यु का कारण ही पड़ेगा। भय की सूचना देने के लिये यह शंख फूंकने की संज्ञा रखी गई है। यद्यपि अब यह करने की मेरे लिये कोई आवश्यकता नहीं रही है, तथापि तुम में से कोई भी यह शंख फूंक देगा, तो तत्काल हथियार-बंद तीन चार या अधिक व्यक्ति दौड़ आवेंगे और उसका परिणाम बड़ा भयंकर होना सम्भव है।

भक्त––अरे वाह ! श्रीकृष्णचन्द्र के हाथ में रहे शंख के कुटुम्बी ! तेरी ऐसी अधोगति हो चली है ?"

भील––अरे, ज़रा फूंकियो !

युवक—महाराज ! तो आप क्या किसी क्रान्तिकारी घातकी टोली के भोग हो गये हैं ? निर्भय रहिये, अब आप मृत्यु की भ्रान्ति तज दें और हमारे साथ ही चलें । आप जिनके लिये कहते हैं वे कहां होने चाहिये ? यहां कब आने वाले हैं ?

बाबाजी—मेरी कथा कुछ लम्बी है, उसको पूर्ण करने का यह स्थान नहीं है । पहिले उस शंख को कब्जा में ले लो, कारण कि इसके फूंकने की चाल प्रारम्भ न हो यह अत्यन्त आवश्यक है ।

सुत्तोम—इन सब बातों से पहिले आपके जीवन का संक्षेप में कुछ भेद जानने की हम सब को अधिक आवश्यकता दिखाती है । हथियार बन्द हम बारह आदमियों की टोली अपनी रक्षा के लिये पाने को है, अतः यहां भ्रान्ति का कुछ कारण नहीं । केवल आप कौन हैं ? और आप को मारने का भय बता कर आपका जीवन मृतवत् करने वाले कौन हैं ? और इस पर भी आप यहां इकले क्यों कर पड़े हुए हैं ? यह जिज्ञासा है ।

बाबाजी—मैं कोई बाबा जी नहीं, महाराज नहीं, त्यागी नहीं, संसारी नहीं, यह भी कही चुका, छोटी अवस्था से हो एक घातकी टोली के कब्जे में फँस जाने वाला एक भाग्यहीन मनुष्य हूं, जिसका आज भोग देने वाला हूं ।

'किस लिये ?' युवक ने पूछा ।

बाबाजी—इस टोली के हेतुओं को शक्ति प्राप्त हो, इस टोली के मनुष्य पकड़ने से बच सकें और इस टोली का खूब द्रव्य

मिले, इत्यादि इत्यादि उद्देशों को पूरा करने के लिये यह मनुष्य–यज्ञ तैयार किया है।

भक्त—तब तो आप बत्तीस लक्षण वाले पुरुष हैं!

बाबाजी—उससे विपरीत ही! एक दम निरुपयोगी, निकम्मे मनुष्य का भाग देने से इस मण्डल के उद्देश की पूर्ति होती है, ऐसी मण्डली के मनुष्यों की मान्यता है।

❀ परिच्छेद बारहवां ❀

दुःख की पराकाष्ठा।

युवक—तब तो आप की जीवनी जानने की जिज्ञासा हम को अधिकतर हो रही है, अतः जो भी हो, उसे आनन्द से निर्भयता पूर्वक कहिये।

बाबाजी ने शंख अपने अधिकार में किया और अपना वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया:—

सुनो! अनुमानतः ३५ वर्ष हुए गुजरात के अप्रसिद्ध छोटे किन्तु जंगल झाड़ी से सुशोभित एक ग्राम के बनिये के यहां मेरा जन्म हुआ। इस ग्राम के पास में ही बहने वाली एक छोटी नदी की तराई से उत्पन्न विविध वनस्पतियों से इसकी प्राकृतिक सौन्दर्य छटा की छाप अद्यावधि मेरे चित्त में जैसी की तैसी बनी हुई है। मेरे माता पिता सुख से सुखी थे। इनकी सन्तानों में एक पुत्र था और एक पुत्री थी।

जब मैं अठारह उन्नीस वर्ष का हुआ, तब मेरे पिता ने मेरे लिये कन्या की तलाश की और हमारी ज्ञाति की प्रथा के अनुसार मेरी छोटी बहिन जो उस समय बारह वर्ष की थी, उसको साटे में (बदले में) देकर मेरे लिये विवाह का प्रबन्ध किया गया।

इसी अरसे में एक महान् आपत्ति रूप विकराल अकाल पड़ा। वृष्टि बिलकुल न होने से किसान लाचार और निराधार हो गये। अनाज एक दम महँगा होगया। एक वर्ष पहिले की वृष्टि के कारण जो कुछ तरी थी, वह शनैः शनैः सूख गई और प्रकृति के उद्यान सम मनोहर भूमि में दावानल समान क्रूर दुष्काल फैल पड़ा। भिखारियों की टोलियों की संख्या देखते ही देखते बढ़ गई, उनको बचाने के लिये मध्यम स्थिति के लोगों की दया की भावना जाग्रत हुई। लुटेरों की टोलियाँ बिना रक्षा वाले ग्रामों पर धमकने लगीं और अत्याचारों द्वारा आग लगा कर तथा अन्य अनेक प्रकार से हैरान करके लोगों के पास जो कुछ बच रहा था, उसे लूटने लगीं। उस पर भी लुटेरों की क्षुधा कम नहीं हुई। गर्मी की ऋतु आते आते तो क्षुधापीड़ित मनुष्यों के अस्थि पिंजर पृथ्वी पर मृतवत् पड़े हुए देखने में आने लगे। दया तो मानो उस समय देश से विदा ही हो गई मालूम होती थी। सभी को अपनी पड़ी हुई थी, कौन किस को बचावे? इसी अर्से में दुर्भाग्यवश हमारे ग्राम में जंगली भीलों ने डाका डाला। हमारे ग्राम में क़रीब सौ घर थे, उनमें कुछ लोगों को त्रास देकर, पैसा किसके पास है, यह कहलाने वाले भीलों को विदित हुआ कि, हमारे घर में से उनको अच्छा धन मिल सकेगा। अतः लुटेरों ने हमारे मकान पर डाका डाला। घर के गहने, रोकड़, बासन और अनाज का तो एक दाना भी नहीं छोड़ा। इतने पर भी लुटेरों को सन्तोष नहीं हुआ, कारण कि उनको यह ख़बर लगी कि हमारे पास धन बहुत है और इस लूट में उनको

धन नहीं मिल चुका है। वास्तव में था भी यथार्थ में ऐसा ही। मेरे पिता के धन का बड़ा अंश व्यापारियों के यहां बड़े शहरों में जमा था। धनी कहलाने के लिये उन्होंने हमको अनेक प्रकार के कष्ट दिये। घर के भिन्न भिन्न स्थान जहां द्रव्य गढ़े होने का उनको भ्रम हुआ, वे सब खोद डाले गये, परन्तु बही खाते के पन्नों में लिखा हुआ द्रव्य उनके हाथ कैसे लगता? जब उनको यह विश्वास हो गया कि अब कहीं कुछ नहीं होना चाहिये, तब ये लोग गये। ग्राम के सब लोग भग गये थे। एक समय का सुखी कुटुम्ब निराधार होगया। मध्य रात्रि के समय आस पास की झाड़ियों में तंग आकर बचे हुए हमारे पड़ोसी लोग ग्राम में वापिस आने लगे।

प्रातःकाल हमारी निराधार स्थिति को देख कर इन लोगों ने यथाशक्ति सहायता की और डकैतों से डर कर भाग जाने का ये पश्चात्ताप करने लगे। परन्तु यह पछतावा अब निरर्थक था। हमारी रकमें जहां जहां जमा थीं, उन्हें जाकर ले आकर आवश्यक वस्तुओं को घर में संग्रहीत करने का अपना विचार मैंने पिताजी से प्रगट किया, परन्तु पास ही में शेष बचे हुए लुटेरे यह जान जायेंगे, तो हमको लूटें और मारेंगे, इस विचार से बहुत काल तक हमने बिलकुल तंग हालत में ही निर्वाह चलाने का विचार रक्खा।

मानो कि मनुष्य के हृदयबल की कसौटी करने के लिये मुसीबतें भी सब साथ ही आती हैं, वही हमारे साथ हुआ। ग्राम में डाका पड़े एक मास हुआ होगा, हमने किस प्रकार के कष्ट बिताकर काल व्यतीत किया होगा, इसका अनुमान आप लोग कर सकेंगे—वह मास पूरा होने भी नहीं पाया कि महामारी का रोग बड़ जोरों से फैल गया। कहते हैं कि ग्राम की हवा शहरों से अधिक स्वच्छ होती है, यह तो ठीक

है तो भी इस नहीं जैसी बस्ती का पचास प्रति शत भाग नाश को प्राप्त हुआ। और इस मृत्यु की सूची में हमारे कुटुम्ब को भी अनिवार्य रूप से अपना हिस्सा देना पड़ा, जिसमें मेरी बहिन और माता गये! मेरे पिता बिलकुल लाचार होगये। उन्होंने ऐसा दुःख नहीं देखा था, अतः उनके लिये वह असह्य होगया। चिन्ता के कारण क्षय रोग के भोग बन गये और चार मास अनेक दुःख प्रसंग देखते देखते वे भी मृत्यु के वश हुए।

लाचारी वश निराधार कुटुम्ब में मैं इकला रह गया। ग्रीष्म ऋतु का ताप, दुष्काल का शाप, भूखे मरने का संकट, प्रिय जनों का वियोग, लुटेरों का भय, बिना अन्न से पीड़ित लोगों के मृत शरीरों से बिछी हुई पृथ्वी—यह दृश्य मुझे अभी भी कम्पायमान करता है! मैंने वह गाम छोड़ कर बड़े शहर में जाना निश्चय किया कि बरसात होने तथा सुकाल आने के बाद यहां वापिस आने का विचार कर मैं वहां गया। हमारा पैसा जहां जमा था वह लेलेने में मुझे कठिनाई नहीं पड़ी क्यों कि जिस भले साहूकार से आकर अपने दुःख की बात कही त्योंही उसने कहा कि 'तुम्हारे बही खाते भले न हों उसकी ज़रूरत नहीं अपने सब रुपये जब चाहो ले जाना'।

मैंने यहां मकान ले लिया और इकला होते हुए भी यहां जमने के लिये कुछ व्यापार करना निश्चय किया। शनैः शनैः वहां के लोगों का मुझे परिचय होने लगा और कई व्यापारियों के समागम में आना हुआ।

कुछ काल पश्चात् वहां के हमारी ज्ञाति वाले एकत्रित हुए। हमारी मूल ज्ञाति तो एक हो, परन्तु कुछ अन्तर के कारण या बीच में कुछ कलह के कारण या न मालूम अन्य किसी कारण यह मुझे

पूर्णतया विदित नहीं–यहां के बनिये अपना गोल्ल यानी समुदाय अलग ही बना बैठे थे। वे हमारे साथ केवल भोजन का व्यवहार रखते थे, कन्या देने लेने का नहीं! ज्ञाति एकत्रित हुई, उसमें तीन अगुआ या पंच थे। उन्होंने मुझे अपने थोक में–कहिये कि मूलतः मेरी ही ज्ञाति में–लेने का प्रस्ताव किया और प्रवेश शुल्क की भांति मैं ५००) पांचसौ रुपया और एक ज्ञाति भोज दूं तो वे उसे कार्यान्वित करेंगे ऐसा मुझ से कहा गया। मुझे बड़े आग्रह और भार पूर्वक कहा गया कि मैं इकला हूं और ज्ञाति समूह में रहने की मेरे लिये खास आवश्यकता है। सयोगों ने मुझे ये बात स्वीकार करने को लालायित किया। पैसे की कमी नहीं थी, अतएव विचार ने मन उधर दौड़ाया और उनके प्रस्ताव के अनुसार मैंने प्रवेश शुल्क और ज्ञाति भोजन देकर उस प्रस्ताव पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

ज्ञाति द्वारा किये गये प्रस्ताव पत्र पर मैंने हस्ताक्षर कर दिये। इस पर तीनों अगुए चित्त में प्रसन्न हुए। शनैः शनैः इन अगुओं ने मुझे अपने दल में इस अच्छी प्रकार से लिया कि मैं उनसे अभिन्न होगया और जब उन्होंने मुझे एक अच्छे प्रतिष्ठित कुटुम्ब की कन्या विवाह में देने का वचन दिया, तब तो मैं एक जादू किये गये मनुष्य की भांति उनका अनुचर हो गया। मैंने तो उस समय यही विचार किया कि मेरे माता पिता मर गये, अतः प्रभु ने इन अगुओं के मन में यह भावना ला रक्खी है। मुझसे वार्तालाप करते हुए मेरे पास कितना द्रव्य है, यह उन्होंने जानना चाहा। मूर्खता के चौंधिये में मैंने उनसे कह दिया कि–सात हज़ार रुपये जमा थे और तीन चार हज़ार की रक़में रक्खी थीं, इस प्रकार ग्यारह हज़ार रुपये मेरे पास थे। पांच हज़ार रुपये के ज़ेवर पल्ले में चढ़ाने के लिये कर लेने और कन्या के मां बाप को चार हज़ार नक़द देने की शर्त पर उन्होंने मेरे लिये हमारे

गाम से दसेक कोस की दूरी पर एक कन्या की तलाश करली । मैंने कहा कि लगभग शेष बची कुछ मालियत को खर्च करके विवाह कर लेने से इस रकम से पांच वर्ष व्यापार करके पश्चात् विवाह करना अच्छा है, इसपर उन्होंने मुझे यह समझाया कि पल्ले की चढ़ावे की रकमें तो अपने घर में ही देने की हैं । केवल चार हजार देना है, यह रकम ज्ञाति में कन्याओं की कमी देखते हुए कुछ विशेष नहीं है। निश्चय ही उस समय कन्या न मिलने के कारण बहुत से लड़के कुंआरे थे, किन्तु एक बार के सुखी कुटुम्ब को भीलों ने लूटा,—फिर दैव ने मनुष्य लूट लिये और अब भावी सास, ससुर शेष रहे को लूटलें, और नमक मिर्च बेच कर या थैला बाँधकर पेट भरने का समय आये, इस विचार से मेरा मन पीछे हटता था । परन्तु मेरे मन की ऐसी स्तिथि में ये अगुए ढूंढ़े हुए कन्या के माता पिता के पास जो पास के ही देवालय में दर्शनार्थ आये थे, किसी प्रकार की सूचना दिये, मुझे ले गये । उनके साथ रकमों से लदी हुई सुन्दर कन्या को देखकर मैं विवाह के लिये तत्पर होगया । इन अगुओं ने स्वयं परिश्रम उठाकर शर्त के अनुसार मेरे जेवर तैयार कराये और लग्न का मुहूर्त एक मास में ही निश्चय किया ।

जिस चौघड़िये में मैं विवाहित होने बैठा था, उस समय मैं चित्त में यही विचार कर रहा था कि, संसार में कोई मनुष्य मेरी तरह कभी नहीं ठगाया होगा । क्यो कि जो सुन्दर कन्या मुझे देवालय में दिखलाई गई थी और जिसका दिखावा ही विशेषतः इस लग्न में सम्मत होने का प्रधान कारण था उससे यह जिसके साथ मैं विवाह के लिये बैठा था, कुछ ऊंची प्रतीत होती थी । मुख तो उसी दिन देखा था और आज तो घूंघट में बैठाई गई थी, अतएव देखने का

साधन नहीं था। किन्तु दूसरे ही क्षण में मैंने अपने मन में समाधान कर लिया कि माता पिता समान स्नेह से जो अगुओं ने मुझे ज्ञाति में सम्मिलित किया, विवाह के लिये तन तोड़ परिश्रम किया, रक़में बनवाने तक में प्रयत्न किया, उनके कार्य में शंका करना पाप था।

बरात विदा होने का दिन आया, हमारा गाम दसेक कोस की दूरी पर था; अतएव हमने सवारियां तैयार कराईं। इतने में ही ससुराल की ओर से कहलाया गया कि उनकी लड़की को ज्वर चढ़ आने से बरात के साथ विदा नहीं किया जा सकेगा! इस समय जिन अगुओं ने यह विवाह कराने में सहायता की थी, उन्होंने बरात को कुछ दिन और रोक कर लड़के और लड़की को साथ ही साथ विदा करने का आग्रह किया, किन्तु बरात को रोकने में खर्च का सवाल अड़ा। चार हज़ार की रक़म तो एक प्रकार के ऐसे विशेष हक़ के रूप में ली गई थी कि उसके लेने के बदले में बरातियों के लिये प्रबन्ध की मर्यादा बढ़ाने के लिये चींटी भर भी जगह मानो नहीं थी। अगुआ भी पश्चाताप करने लगे, जिसमें ढोंग की भावना मुझे किञ्चित् भी प्रतीत नहीं हुई।

जिन सेठ गोपालदास की कोठी में मेरे रुपये जमा थे, वे दूर के सम्बंध में मेरे मौसा लगते थे और उनकी धर्मपत्नी दयाकुंवर दूर की मौसी होते हुए भी मेरे ऊपर माता समान स्नेह रखती थी। मुझे ब्याहने के लिये वे भी बरात में साथ आये थे। मुसीबत में समय समय पर वे मुझे सच्ची सलाह देते थे। इस समय उनसे यह हाल कहने पर उन्होंने कहा कि, "कन्या को चाहे ज्वर उतरे तभी भेजें, बरातियों को अब यहाँ ठहरना योग्य नहीं है"।

इस अनुमति का अनुसरण करके हम सब घर आगये। दिन पर दिन निकल गये और बरात को भी लौटे एक मास बीत गया, किन्तु मेरे ससुर की तरफ़ से मेरी स्त्री की कुशलता के समाचार नहीं आये। चौथे छठे दिन मनुष्य को पत्र लिखकर हाल पूछने को भेजा जाता था तो उसके द्वारा 'कुछ ठीक है' समाचार मिलते।

मेरी मौसी और सेठ गोपालदास ने मुझे स्वयं हाल लाने की अनुमति दी। मेरे मौसा सेठ गोपालदासजी ने जाते समय कहा कि—

"देखना भाई! ये टो एक डम अनहोनी पो लगटी है, तो भी टुम उनसे किशी प्रकार लड़ना नहीं, ये मेरी पलाह है!" मेरे मौसाजी को सुपारी अधिक खाने के अभ्यास के कारण इस प्रकार बोलने की आदत थी। थोड़े ही परिचय के कारण उनके शब्द स्पष्ट समझने का मुझे अभ्यास हो गया था।

मैं ससुराल आया। अरर! परन्तु मैंने वहां क्या देखा! संसार में नाटक-चेटक-जादू और सीनेमा में अद्भुत दृश्य मनुष्यों को प्रत्येक दिवस दिखाये जाते हैं, परन्तु उन सब को एक ओर रखने वाला दृश्य मैंने आज प्रत्यक्ष अनुभव किया। जिस घर में मुझे विवाहित किया गया था, वहाँ तो साधुओं के आसन लगे हुए मैंने देखे!! वहाँ न मेरे ससुर थे, न सास थी, न मेरी स्त्री! ससुराल की तरफ के जिन स्त्री, पुरुषों को वहाँ मैंने अपने विवाह के समय देखा था, उनमें एक भी वहां न था। जिस मकान में मेरा विवाह हुआ था, किस को मिल्कियत है, यह तलाश किया, तो विदित हुआ कि वह धर्मशाला थी। साधुओं में एक वयोवृद्ध साधु से पूछा कि—

"महाराज! आप यहां कब के आये हैं?" उसके उत्तर में उन्होंने कहा कि "हम एक महीना भर से यहाँ रहते हैं।"

" आप यहाँ आये उस समय यहाँ कोई दूसरा भी था " मैंने पूछा ।

" सुनते हैं कि कुछ ठग लोग यहाँ से किसी का पैसा लेकर चले गये हैं ! " महाराज ने कहा—

अब मुझे धैर्य नहीं रहा, अद्यावधि पड़ी हुई विपत्तियों में ये यद्यपि सब से बड़ी न थी, तो भी इस विचार से मेरे चित्त को समाधान नहीं हो सका। मेरे नेत्रों में आँसू आगये, यह इन वृद्ध महाराज ने देखा। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा कि—

" वे लोग तुमको ठग कर चले गये हैं ?"

मैंने बीती घटना उनसे कही। उनको मुझ पर बहुत दया उत्पन्न हुई हो, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। कुछ देर तक चित्त में पूर्ण विचार करके उन्होंने काठियावाड़ में स्थित एक अप्रसिद्ध स्थान में इन लोगों के निवास का मुझे पता बतलाया। मुझे इन लोगों की कन्या से विवाह कर आनन्दित होने का संकल्प तो संयोगवश उद्भूत क्लेश में भस्मी भूत हो गया था, परन्तु किसी भी उपाय से जीवन पुनः प्रारम्भ करने के लिये अपने द्रव्य का विशेषांश मिल जाय इस लालच से मैं वहाँ जाने को तत्पर हुआ। महाराज द्वारा बतलाये गये स्थानों के चिन्ह जैसे जैसे मिलते गये वैसे वैसे मैं उस ओर आशा सहित चला। सावधानी के लिये मैंने पुलिस के दो आदमी साथ रख लिये थे कि कदाचित् तकरार हो जाय तो उस स्थान के अधिकारियों की सहायता लेने के लिये वे उपयोगी हों।

पहाड़ों से घिरे हुए और झाड़ी जंगल वाले प्रदेश में स्थित एक ग्राम की सीमा में एक बड़ी घास की गंजी के समीप झोंपड़े में इस टोली के व्यक्ति रहते हैं, यह मुझ से कहा गया था।

❁ परिच्छेद १३ वां ❁

कन्या बाज़ार की विचित्र गुफा

वृद्ध साधू के कथनानुसार मैं इस झोंपड़े में गया मेरे साथ के दोनों सिपाही भी साथ ही थे। दस-ग्यारह छप्परों में से केवल एक के सिवाय बाक़ी सब बन्द हमारे देखने में आये। एक जो खुला हुआ था उसकी कोठरी में एक छोटे खटोले पर पूरी अवस्था वाला एक बाबाजी बैठा सितार बजा रहा था और पास ही में एक चौदह पन्द्रह वर्ष का गौर वर्ण का सुन्दर बदन लड़का घूम २ कर गा रहा था। मुझे और मेरे दोनों साथियों को हम दोनों ने जैसे ही देखा वैसे तुरन्त ही इस लड़के का गायन बन्द हो गया, परन्तु उसका अन्तिम पद मेरे कर्णों में इस उत्तम रीति से पैठ गया था कि आज इतने वर्ष होते हुए भी वह मुझे याद है:--

"ओरे मेरे हुक्के--

बताऊं भेज हमारे--

मेरे प्यारे हुक्के !

सगुन देखके अइये !"

लड़के का गायन बन्द होते ही हम तीनों वहां जा पहुंचे। वृद्ध बाबाजी ने मेरे सहचारियों को सामने देख कर "तुम कहां से आ रहे हैं ?" प्रभृति सब समाचार पूछे और मेरे साथी दो सिपाही, जिनका सिपाही का सा ड्रेस मैंने सावधानी की खातिर उतरवाकर सादा पोशाक में साथ रक्खे थे, इनके साथ हमारे आने की बात चीत में लगे थे। उस समय मैं क्या करता ? जो लड़का गा रहा था और जिसका

गायन हमारे आनेसे ही मानों बन्द हुआ था और जिसका निरर्थक अन्तिम पद मेरे कानों में जम रहा था, उस लड़के के मुख की ओर मैं देख रहा था। इस लड़के की आकृति सुन्दर थी और सिर पर लम्बे बाल थे। घूर-घूर कर इसका मुख देखने से तो वह मेरी स्त्री का भाई होगा ऐसा मुझे तुरन्त ही अनुमान हुआ क्योंकि हमारी ज्ञाति के अगुओं ने मंदिर में जो कन्या मुझे बतलाई थी वैसा ही उसका मुख था।

"तुम किस विचार में पड़े हो, युवक ?" बाबाजी ने मुझ से पूछा।

"आप से तो भाग्य से ही वह विषय अज्ञात होना चाहिये।" मैंने कहा--

"बोलो, तुम्हारे सास और ससुर को मिलादें तो हमको क्या दोगे ?" बाबाजी ने कहा। मुझे तो इतना क्रोध आया कि मैं कुछ का कुछ कह डालता, परन्तु मेरे दो साथियों में एक कुछ गम्भीर था, उसने कहा कि--

"आप सदृश त्यागियों को धन दौलत का कुछ काम नहीं है, तथापि वह आप स्वीकार करेंगे तो आपको प्रसन्न करेंगे। चिन्ता न करें किन्तु हमको उन लोगों के पास ले चलें।"

इस समय जो लड़का गा रहा था, वह झोंपड़े में चला गया था। "इन लोगों के पास हमको ले चलें" ऐसा कहते ही झोंपड़े से काले चहरे वाले भयंकर दिखाव के बड़ी-बड़ी आँखों वाले विकराल राक्षस सदृश दस मनुष्य निकले और किसी प्रकार की क्रिया बिना कोई शब्द बोले बिना हम तीनों को ये लोग पकड़ कर झोंपड़े में ले गये। मेरे साथी दोनों पुलिस के सिपाही उनकी संख्या देख कर पीछे हटने वाले नहीं थे। प्रत्येक की जेब में छोटी पिस्तौल थी, परन्तु दो-दो

आदमियों ने प्रत्येक को इस प्रकार से पकड़ लिया था कि वे लोग लाचारी वश मेरी ओर देखने लगे। इतने ही में उस झोंपड़े में एक बड़े खटोले पर हम तीनों को बैठाया और देखते-देखते ही वह पूरा खटोला तहखाने में उतरने लगा !!

भय और अद्भुतता की भावना से मृत्यु के समीप आये जान कर हम मानों एक विशाल तहखाने में उतर पड़े। इस तहखाने में अँधेरा था, एक कोने में एक बड़ा दीपक जलता था और उसके समीप ही एक पत्थर की मनुष्य के आकार से कुछ मिलती-जुलती बड़ी भयानक आकृति प्रतीत होती थी। एक मनुष्य हमारे पास आया, इसके हाथ में कुछ लम्बासा दीखा, परन्तु दीपक के प्रकाश के पास आते ही मैंने जान लिया कि उसके पास तलवार है। इसने खिड़की खोली अतएव ऊपर का आकाश का कुछ भाग हम देख सके। इसी प्रकार एक जाली उघाड़ी जिससे भगवान सूर्य नारायण के प्रकाश में मैं पहचान सका कि मेरा विवाह सम्पन्न करने वाली मेरी श्वसुराल यहा थी।

इस समय मेरे दोनों साथियों के पास से रिवॉल्वर (तमंचे) उनकी जेबों से बलात् छीन लिये गये थे और हमारा किसी प्रकार का अपराध न होते हुए भी हम निर्दोष व्यक्ति इस नराधम के समक्ष खड़े थे। इतने में उसने कहा—

" देखो, इधर उस कोने में माता हैं, उनको दण्डवत् करो ! ये तुम्हारे प्राणों की रक्षा करती हैं, इनकी आज्ञा हुई है कि तुमको मारा न जावे ! अन्यथा तुम्हारे जैसे कई एक के खोपड़े यहाँ उड़ा दिये गये हैं। हमारे यहाँ घेदे, प्यादे, रखे बिना इतने बड़े-बड़े कार्य कैसे हो सकते थे। अतः द्रव्य की इच्छा को तुम त्याग दो ! किधर गया चेला ? बेटा माता ने आज्ञा की है कि, तेरहवें (भरख) को छोड़ देना, अतएव इनको जाने दो ! बोलो युवक ! तुमको क्या चाहिये ? इस चेले ने तुम्हारे

पालीत

आने के पूर्व बारह जनों के हाथ उड़ाये हैं, तू तेरहवाँ है !" मृत्यु के समान घड़ी में मैंने अपने चोरों को पहिचान लिया। चेले से-लड़के से-मेरा विवाह हुआ था, यह भी समझा ! अब धन वापिस लेने की, पत्नी को बुला ले जाने की, सास ससुर को तलाश करने की बात तो एक ओर रही, केवल प्राण बचाने का प्रश्न रहा !

अब मुझे अपना संक्षेप में वृत्तान्त कहने दें ! समय बहुत बीत गया, दुःखी मनुष्य अपना दुःख गाने बैठे, तब मान नहीं रहता है। इन लोगों ने हमारे प्राण तो बचाये, परन्तु हमको एक को भी वापिस आने नहीं दिया गया ! लगभग एक वर्ष तक हमको कठिन परिश्रम के कारावास की सी स्थिति भोगनी पड़ी, तत्पश्चात् उनके रहन-सहन के अनुसार ही हम लोग अपनी आदत डालने लगे। किन्तु केवल रहन-सहन में ही हमने आदत डाली थी, हमारा स्वभाव हमने यथावस्थित रक्खा। इनके दुर्गुणों के प्रति अपनी अश्रद्धा भी छिपा कर रक्खी। शनैः शनैः जो बड़ी-बड़ी लूट ये लोग लाये, उसको ठीक रखने और उसका मोटासा हिसाब रखने का कार्य मुझे सौंपा गया। लुटेरों का हिसाब ! परन्तु मैं बनिया था इसमें मुझे ही रखने की इन सबको बात योग्य जची। मेरे साथी सिपाही एक समय एक बड़ी लूट में शामिल रहने का ढोंग करके लूट के बीच में ही सावधानी से भाग निकले। इस लूट में से बहुत द्रव्य मिलना किन्तु उसमें के अपराधी पकड़े गये और माल वापिस देना पड़ा। कितने ही वर्षों के पश्चात् मुझे यह समझ में आया कि हमारी यह टोली दूसरी एक बड़ी टोली की शाखा थी और हमारे यहाँ बढ़ने वाला धन प्रति पाँचवें वर्ष चुपके से बड़ी टोली में पहुंचा दिया जाता था। वह चेला मेरे यहाँ फँसाये जाने के छै मास तक तो मुझे देख कर हँसा करता, बाद में तो वह मुझ से खूब परिचित होगया। उसने एक स्वरूपवती भील कन्या से विवाह कर लिया था और एक लड़का

हुआ था, जिसका नाम वेलिया रक्खा था। वेलिया को भी चेलिया के सदृश ही शिक्षा देनी थी। इस प्रकार दुःख मय जीवन में कितना ही समय निकाला। करीब बारह महीने बाद बड़ी टोली द्वारा एक बरात लूटने पर कितने ही भील पकड़े गये। अपराध से बचने के निमित्त पुलिस वालों को बड़ी-बड़ी रकमें दीं, किन्तु अन्त में अपराधी पकड़े गये और बड़ी टोली की रोकड़ बीत गई। उस काम में इतना खर्च हुआ कि उसके कारण मुझ पर भी आपत्ति आई।

मेरे मौसा गोपालदासजी के पास बहुत धन है और उनकी स्त्री के मरजाने के कारण वे इतनी अवस्था पर दूसरी बार विवाह करने की चेष्टा कर रहे हैं। यह खबर हमारी मण्डली में आई तब ही मुझे यह पता लगा कि मेरी अच्छी मौसी मर गई! मेरी उद्विग्नता से, मैं उनका सम्बन्धी हूं, यह इन लोगों ने समझ लिया, परन्तु बहुत वर्षों के परिचय के कारण मैं हृदयकी कठिनता सीख गया हूं, यह भी इन सब लोगोंने समझ लिया था। गोपालदास सेठ से अच्छी रकम लेकर उनकी, एक लड़की दूर की है, यह सुझाकर विवाहित कर देने का अनुमान मेरे चित्त को होता था, किन्तु असली बात अभी तक प्रकट नहीं हुई थी। चेलिया जिस प्रकार मुझे ठग आया, उसी प्रकार उसके लड़के वेलिये को बचपन से अच्छे प्रतिष्ठित गृहस्थों को फसाने की शिक्षा देने में आई थी। वह १५-१६ वर्ष का हुआ है, मूँछें आई नहीं हैं और कितने ही दिवसों से वह यहाँ दिखाता नहीं है, इससे कदाचित सेठ गोपालदास को फसाने का जाल रचा हो, ऐसा सम्भव था। अब मुझ से कहा जाता है कि सेठ गोपालदास के यहाँ जाकर जैसे बने वैसे उल्लू बना कर सारा धन लूट कर लावे, तो ही तुझे जीता छोड़ें, अन्यथा माता की आज्ञा हुई है कि यह यदि आज्ञा न माने तो तेरहवें बलिदान छोड़ने की बात एक ओर रक्खो! मुझे प्रतीत होता है कि जिस प्रकार एक आग लगी हुई गाड़ी में बैठे

यात्रा करने से कूद जाकर रास्ता पकड़ना अच्छा है, उसी प्रकार दुखी जीवन धारण कर रहने की अपेक्षा सामने आई हुई मृत्यु द्वारा प्रारब्ध पर्यन्त भवसागर में भ्रमण के मार्ग को ग्रहण करना अच्छा है। यह विचार कर मैं मृत्यु के लिये तत्पर हो गया किन्तु अपने ये विचार इन लुटेरों को नहीं जानने दिये। वे तो निश्चय कर ही चुके हैं कि मैं उनके कहने के अनुसार करूँगा। इस विषय की चर्चा हमारे यहाँ चल ही रही थी कि इतने में गोपालदास विवाह करके यात्रा को जाते हैं और उनको लूटा जा सकता है, ऐसे समाचार आने से ये सब पास के मार्ग पर राह देखने बैठे थे। मुझे कदाचित पहचान लिया जाय, यह विचार कर साथ नहीं ले गये, परन्तु मुझे कुछ भय की निगरानी बता कर मदद माँगने की आवश्यकता पड़े, तो यह शंख फूंकने को मुझे आज्ञा करने में आई है।"

मुनीम—अहाहा! संसार में मनुष्य को कैसे-कैसे दुःख होते हैं? क्यों भक्त तुम भी तल्लीन होने लगते हो।

भक्त—हाँ, परन्तु एक शंका है "वरको" होकलजी भला कैसे कहा होगा?

बावाजी—ठीक-शंका खड़ी की। देखो, ऊपर ताप-अग्नि रखना। पेट लफा कर ताप के नीचे रखी हुई तम्बाकू का सार ग्रहण कर लिया जाता है, वैसे ही लुटेरे ताप देकर ऐसे ठगे जाने वाले वर का सत्व ग्रहण कर लेते हैं। ये लोग ऐसा ही कुछ अर्थ लगाते होंगे। गूढ़ार्थ के लिये-संज्ञा के लिये ही यह अर्थ रक्खा प्रतीत होता है।

इसी समय इस स्थान पर एकाएक किसी प्रकार का शब्द हुए बिना चुपके से आठ हथियार बन्द मनुष्यों की टोली मानो भूमि से ही प्रगट होगयी हो, आ धमकी।

इन आठ हथियारबन्द मनुष्यों के साथ नया जमादार था। उसने मुनीम के हाथ में एक पत्र दिया। उत्साह और आशा भरी दृष्टि से वह उसको पढ़ रहा था और युवक उसके सामने देख रहा था। मुनीम ने कहा कि हमारे लिये सहायता आ पहुंची है। बाबाजी द्वारा वर्णित जो दो पुलिस के सिपाही लुटेरों की टोली से भाग निकले थे, वे इन आठ मनुष्यों में हैं।

युवक—इतना सारा परिश्रम सेठ महेन्द्रप्रसाद के अतिरिक्त और दूसरा कौन करता है?

मुनीम—आप का भाग्य, आप का पुण्य!

इन दो पुलिस के सिपाहियों के नाम पत्र में देख कर मुनीम ने उनको पास बुलाया और भट्टी के उजाले में बहुत समय तक बाबाजी और ये उनके सहचारी एक दूसरे को देख कर मिलने लगे।

बाबाजी तो हर्ष में पागल सा हुआ मालूम पड़ा। बहुत काल तक दुःख में साथ रहे और पूर्णतया कसौटी पर चढ़े सहचारी मिले थे।

पूनमचन्दजी! (जो इस मुनीम का नाम था) हमारी बात हम एकान्त में कहेंगे। पहिले तो उन्होंने इस पत्र के साथ प्रगट समाचार सत्यवा ने इतने ही कहे हैं कि इन बालकों को ले जाने वाले बाबाजी जैसे दिखाते बदमाश लुटेरों की टोली के मनुष्य हैं और इन लुटेरों ने अपने जासूस इस ओर नियत कर दिये हैं। उन्होंने सेठ महेन्द्रप्रसाद के प्रयत्नों की सब दिशाएँ फेर दी हैं, अतः उनमें के अर्थात् जासूसों में के एक दो मनुष्य मानो सेठ महेन्द्रप्रसाद की तरफ़ से आने का ढोंग किया जायगा, अतएव उन से सावधान रहना है।

युवक—भाई! सत्यवा कौन?

मुनीम--हमारे सेठजी की पुत्री--

युवक--अच्छा ! तुम्हारे सेठ की लड़की इसीसे कदाचित् तुम उनका नाम लेते डरते थे, अब मैंने जाना ।

मुनीम--अब जब उनका नाम प्रगट होने लगा है तो संकोच की आवश्यकता नहीं ।

युवक--ठीक, परन्तु इनको इतने सारे प्रयत्न करने का कारण ?

मुनीम--आपके द्वारा इनका कुछ उपकार हुआ है ?

युवक--नहिं, मैं कुछ भी नहीं जानता ।

मुनीम--देखिये, ये अक्षर आप के हैं ? पढ़िये ।

युवक--(पढ़ता है) "जगत में पालना झुलाने वाली मातायें वास्तविक रीति से संसार के व्यवहारों को गति देती हैं । यदि महिलाएँ सुशिक्षित हों, अपना धर्म बराबर समझती हों, सुघड़ाई से कौटुम्बिक वातावरण पवित्र करने वाली हों, बुद्धि से पुरुष को उसके कार्यों में सम्मति देने वाली हों, तो इस देश में स्वर्ग के देवता भी अवतार धारण करने के लिये ललचाते होंगे । ऐसी स्त्रियों को जन्म देने वाले अमेरिका देश के लिये स्वामी विवेकानन्दजी को कहना पड़ा कि मानो स्वर्ग की देवियाँ वहाँ घूम फिर रही हैं । आज कल के लोग स्वामी विवेकानन्दजी सदृश सज्जन कहते थे कि भारत में भी ऐसी देवियाँ जन्म धारण करने लगी हैं । इस महिला भवन की स्थापना इन देवियों की प्रसादी रूप प्रथम सीढ़ी है । वास्तविक स्त्री शिक्षण में प्रत्येक देश का उदय रहा है । सरयूदेवी ने यह महिला भवन स्थापित कर इस ओर

के भविष्य में महिलाओं का आशीर्वाद प्राप्त किया है। धन्य है ऐसे स्त्री-रत्नों को।"

युवक—अरे, किन्तु यह तो सेठ महेन्द्रप्रसाद महिला भवन की स्थापना करने के लिये आमन्त्रण देने गये थे, उस विषय का है।

मुनीम—परन्तु ये अक्षर किस के हैं? और उद्गार किस के हैं? आप के ही ना?

युवक—अरे तुम्हारा भला हो, मैं समझा, कदाचित् इस प्रकार के सार्टीफिकट से उस कन्या को कुछ विशेष लाभ हुआ होगा।

मुनीम—सो कुछ नहीं, लाभ अब हो तो किसे मालूम? इस पवित्र बाला ने थोड़ी अवस्था में उत्तम शिक्षण प्राप्त कर महिला भवन स्थापित किया है। स्त्रियों की उन्नति के लिये अपना जीवन समर्पित किया है। हमारे सेठ साहब के मर जाने से अपनी विल (वसीयत) में अपनी लाख रुपये की सम्पत्ति के ट्रस्टी नियुक्त किये हैं। इन ट्रस्टियों को उनकी ज्ञाति में, बालिका के योग्य लड़का मिलता नहीं है और उपज्ञातियों में से किसी लड़के के लिये बात होते ही बिरादरी के वृद्ध अगुआ लोग थोक बना कर बिरादरी बाहर करने की धमकी देते हैं। लड़की अवस्था वाली हो गई है, अतएव योग्य लड़का मिले तभी विवाह करना अन्यथा निरन्तर कौमार्य व्रत धारण करने का प्रण ले रक्खा है। अपने आधुनिक छोटे छोटे समुदाय वाले बन्धनों को सदा शाप दिया करती हैं।

युवक—अच्छा, तुम्हारे लिये जो पत्र भेजा है उस पत्र में क्या है?

Shanta Please Love me:

बाबाजी--ये अभी रहने दो ! प्रातःकाल होने आया है । लुटेरों में से जो मार्ग रोक कर बैठे हैं, उनको यह शंख फूंक कर 'मेरी सहायता को' बुलाओ और इनको पकड़कर पहुंचाते हुए श्रीराम-चन्द्रजी ने जैसे अहिल्या का उद्धार किया था वैसे पहले तो मुझे उबारो ! जिससे मैं अपने को बच गया मानूं ।

बाबाजी की बात सब यथार्थ मालूम हुई । भरत को शंख फूंकने का आदेश दे हथियार बन्ध मनुष्यों को संकेत कर दूर दूर स्थित किया । शंख का नाद होते ही दो सवार वहां आ पहुंचे । उसी समय संकेत के अनुसार बंदूकों के चलने की तले ऊपर आवाज होने लगी । सवारों ने जाना कि मनुष्य अधिक हैं और सामने गये बिना किसी भी प्रकार जीतना असम्भव था । जमादार ने उनसे घोड़े से नीचे उतर कर फौरन कब्जे में आने के लिये कहा । उसी के अनुसार उनको करना पड़ा और पूरे जाब्ते के साथ उनको भक्तिपुरे के थाने में भिजवा दिया ।

उसके गये बाद बाबाजी को धैर्य हुआ । इस दुःखी मनुष्य को उसके गाम पहुंचा देने के लिये युवक ने जमादार को सूचित किया ।

उपरोक्त व्यवस्था होने के बाद युवक ने मुनीम से फिर कहा—

"अब लाओ वह पत्र !" मुनीम ने वह युवक को सौंप दिया ।

"भाई पूनमचन्द ! मुझे बारम्बार सूचना करनी आवश्यक प्रतीत होती है कि मार्ग में 'बाबाजी' मिलें, उन से सावधान रहना ! बाबाजी कहने से योगी नहीं समझना चाहिये । गेरुए वस्त्र ये तो दुनियाँ में अनेक अपराध कर उन से बचने का परवाना हो गया है ! जगत में किसी प्रकार के उद्योग के बिना, दूसरों की पर सेवा की कमाई पर पेट भरना हो तो 'बाबाजी होना' ऐसा कितने ही वर्षों से देश के दुर्भाग्य से

मूर्ख, अशिक्षित और दरिद्री मनुष्यों में एक प्रकार की प्रथा भी चल पड़ी है। ठग होना हो, चोर बनना हो, बच्चे उड़ा ले जाने हों, इत्यादि अनेक ऐसे धंधों में बाबाजी का भेष मीताजी के समय से सरलतः दे रहा है। ऐसे लोग कम नहीं हैं। कहते हैं कि आज कल इनकी संख्या बावन लाख की है! देश के ऊपर अनेक बोझों में से ये बावन लाख बाबाओं के पेट भरने का दूसरा बोझा आ पड़ा है।

मुझे जो सूचना मिलती है उससे मालूम होता है कि इस ओर के लुटेरों की टोली सेठ गोपालदास को लूटने के लिये तैयारी कर रही है, परन्तु इसकी खबर सेठजी को मिल जाने से वे दूसरे ही मार्ग से चले गये हैं और इसी से वे स्टेशन होकर जायेंगे। उनके साथ सम्भव है कुंजविहारी और मधुसूदन भी हों, अतः दुखी मनुष्यों पर उपकार करने में ही जीवन बिताने वाले महाशय नरहरी को यह वृत्तान्त जता देने की आवश्यकता है।

नरहरी ने जाना कि इस परिश्रम से तो चोर वा चोर के शिष्य ही मिले। बालक कहाँ हैं? ये लोग मुझको इसकी खबर न मिले और मिले भी तो पहिले ये बालक हट जायं वैसी पेरवी करेंगे, इस विचार से अब तक मिले प्रमाणों के आधार पर उसने बालकों की शोध में प्रयाण किया।

❀ परिच्छेद १४ वां ❀

शुष्क शिक्षा वाली संतानें

महात्मा विष्णुप्रसादजी को गोली लगे बाद कितने ही दिन तक उनकी उपचर्या होने के बाद उन्होंने जंगल को प्रस्थान किया। जैसे

दमयन्ती नल के पीछे भटकी उससे कुछ ही कम कहना चाहिये, एक के पीछे एक भक्त लोग अनेक वर्षों में भटके, किन्तु महात्मा जी तो मानो अलोप ही होगये थे। संसार उनको निरर्थक होगया हो और सांसारिक रीति रिवाजों में आवश्यक परिवर्तन करने के अपने प्रियतम विषय पर उनको त्याग उत्पन्न होगया है, ऐसा शिष्यों ने समझ लिया था।

उनको गोली मारने वाले पर उनके विरुद्ध पक्ष का विशेष समुदाय क्रुद्ध होगया। परिणामतः जो लोग महात्मा विष्णुप्रसादजी के उपदेश को ग्रहण करने में कुछ न कुछ कारण बता कर दुराग्रह करते थे, उनमें से भी अधिकतर लोग उनके विचारों से सम्मत होगये! मूर्ख लोगों को पानी बह निकलने के बाद ही पाड़ बाँधने की सूझती है! अछूत वर ब्राह्मण कन्या से विवाहित होने की बात तो उस समय में प्रगट करने का केवल प्रारम्भ ही था! जिस ब्राह्मण को सर्वानुमत से जाति ने बहिष्कार किया वह तो जगत में किसी को मुँह दिखा नहीं सकता! जिस टोली ने इस को उकसाया उसी टोली ने इसका नाम "खूनी" रख दिया! अतएव इसको घर में ही बन्द रहना पड़ता। काल कोठरी की सजा से यह किसी प्रकार कम नहीं थी। अत्यन्त पश्चात्ताप के परिणाम स्वरूप उसको प्राण-घातक ज्वर आने लगा और तीन एक मास के बाद ही वह सरजनहार की सरकार में जवाब देने चला गया! उसकी स्त्री बड़ी सुशीला थी, योग्य माता पिता की सन्तान थी, पढ़ी लिखी बिल-कुल न थी। किन्तु थोड़े साधन से ही कुटुम्ब का गौरव बनाये रखने का प्रयत्न करती थी। कुटुम्ब की प्रतिष्ठा में कमी आती वहाँ कभी नहीं फटकती, किन्तु पति के इस कृत्य से चित्त दुःखी हुआ। ब्राह्मण होते हुए भी भिक्षा माँगने के धंधे का उसको चलन नहीं था। चालीस वर्ष की अवस्था होने आई, उत्साह से जो आजावे उसीसे उद्योग करके वैधव्य का समय व्यतीत करना निश्चय किया, किन्तु उद्धत नामक लड़का पाले

पड़ा था। उसको शिक्षा देने का अवसर जागी था। इन्हीं अरसे में इसके द्वार पर एक संन्यासी सदृश कोई व्यक्ति आया। किसी गेरुआ वस्त्रधारी व्यक्ति ने कभी इसका द्वार पवित्र नहीं किया था। संन्यासी बाहर आकर खड़ा हुआ, बाई ने कहा:—

"उद्धत की शिक्षा में तुमको किसी प्रकार की असुविधा होती हो, और नासिक के पास आये हुए दयामयाजी के अनाथाश्रम में भेजना हो, तो मैं ले जाऊँ। वहाँ खाने पीने का मुफ्त प्रबन्ध है और अंग्रेजी अभ्यास करने का भी मुफ्त प्रबन्ध है।"

इस बेची को अब उद्धत की उदर पालना करने की बड़ी उपाधि थी, वहाँ उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किस प्रकार करती? अतएव, इस संन्यासी के साथ उद्धत को भेज दिया। अनाथाश्रम में भी उद्धतलाल का रूपान्तर किया गया उद्धत नाम ही कायम रहा। अवस्था प्राप्त होने पर उद्धत को भी उसमें आनन्द मिला, उसके शिक्षक कम वेतन में आये हुए देशी ईसाई थे। उद्धत ने मैट्रिक पास किया, तब उसने समझा था कि उसकी मा का दिमाग दूसरे ही आसमान पर होगा। परन्तु ऐसा उसने न माना क्योंकि वह समझदार थी, उद्धत ने कालेज में डिबेटिंग सुसाइटी में भी रस पूर्वक भाग लिया था। थोड़े समय पश्चात् उसने एक सुधार समिति स्थापित की, उसमें कितने ही ईसाई भी शामिल हुए थे, उसके वाक् प्रवाह से एक दो ईसाई लड़कियां पुनः हिन्दू होगईं थीं और इस विजय डंके से खुश होकर उसके मित्रों ने उद्धत को आर० एम० का सुवर्ण पदक अर्पण किया था। उद्धत के विचारों के समाने के लिये आसमान भी छोटा होने लगा, पश्चिमी शिक्षा के तत्वों की छान बीन कर उनकी शुष्कता के सारे संस्कार उसने प्राप्त किये थे और उसमें भी अपनी स्थापित विचित्र सुधार समिति का असर मिल

गया था, सुशील होते हुए भी निर्धन अशिक्षित माता की आवाज वहाँ पहुंचे, ऐसा नहीं था। अतएव, उद्धत निरंकुशपने से पढ़ा जाता है, उस प्रकार पढ़ा था और अपने नामानुसार एक अपटुडेट उद्धत ग्रेजुएट हुआ था।

ऐसे में ही एक भाग्यहीन घटना घटी। उसके उपदेश से एक अछूत लड़की जो ईसाई होगई थी, वापिस हिन्दू हुई। उसका अँग्रेजी का अभ्यास कराने के लिये उद्धत प्राईवेट शिक्षक हुआ। संसार सुधारक तो था ही और वर्णान्तर विवाह की बातें भी होने लगीं! अनीति के—वर्णाश्रम संस्था के खून करने के परवाने मिलने लगे। उद्धत ने अपने लिये वह प्रथम लिया, इस लड़की का नाम उसने बदल कर कनिष्टिका रखा और अनाथालय से बहुत दूरी पर उनका मिलना होने लगा।

कनिष्टिका ने एक पर एक कितनी ही रक़म माँगनी प्रारम्भ कीं। उद्धत के पास पाई भी न थी, ऐसे में ही सहसा द्रव्य प्राप्त होने के एक आशाजनक मामले का संयोग उपस्थित हुआ। इस भारतीय ईसाई मंडल ने इस डिवेटिंग सुसाइटी द्वारा अपने उपदेशों को फैलाने के लिये अनेक उद्योग किये थे, जिनमें सफलता भी प्राप्त हुई। एक समय एक साहसी सरकस के मैनेजर के साथ इस डिवेटिंग सुसाइटी में भाग लेने वाले उच्च वर्ग के लड़के और लड़कियों को सहायता देने का अवसर आया, जिसमें कनिष्टिका और उद्धत का अग्र स्थान था। हेतु पैसे ही पैदा करने का था, अतः सरकस के मैनेजर ने लोगों को उपदेश क्या मिलता है, इस पर गौण रूप से ही लक्ष दिया था। एक संस्कृत हिन्दी पाठशाला की उच्च वर्ग की एक बालिका का गायन रक्खा, जो संगीत में प्रवीण थी और बचपन से ही दैवी गुणों के कारण इतनी विख्यात होगई थी कि किसी पारितोषिक समारम्भ में या किसी भाषण में उसके

उपस्थित होने का संयोग लोगों की भीड़ खैंच लाती थी, इस साहसी दक्षिणी सज्जन ने पहले स्त्री शिक्षा के लिये ५ मिनट का समारम्भ रख कर बाद में सरकस का दृश्य दिखाने का कार्यक्रम रखा था। लोगों की अच्छी भीड़ जम गई तत्पश्चात् मंगलाचरण में हिन्दी बाला ने यह गीत गाया—

(१) "मा तुम से है यही प्रार्थना अब न पुत्रियाँ उपजाना।
यदि उपजें तो दूर फेंकना उनको दूध पिलाना मत।
भूल प्यार मत करना उनका, अपनी गोद खिलाना मत॥
फिर भी जियें तो विवाह का, उनको नाम सिखाना मत।
ब्याह हुआ तो विधवा होगी, मा यह दृश्य दिखाना मत॥"

तत्पश्चात् एक के बाद एक दृश्य प्रारम्भ हुए, उनमें सब से प्रथम कनिष्ठिका ने उद्धत के साथ रह कर सरकस के मैनेजर की देखरेख में मनुष्य को बन्दर के रूप में बदल कर उसके द्वारा नान्दी का पार्ट किया। इस नान्दी के विचित्र गायन के निमित्त मैनेजर ने पर्याप्त द्रव्य खर्च किया था और कितने ही दिनों तक उद्धत और कनिष्ठिका को उसमें शिक्षा लेनी पड़ी थी।

इसी समय से इनकी मित्रता बढ़ने लगी, सरकस के मैनेजर की ओर से ईसाइयों की संस्था को पात्रों को देने के निमित्त अच्छी सहायता मिलने वाली थी और उस सहायता में उद्धत अपने विवाह के लिये एक अच्छे इनाम की आशा लगाये बैठा था। बन्दरों की नान्दी के समय पचास के लगभग बन्दर देखने में आये। फोटो लिया जाय तो इसमें

(१) चाँद मासिक से।

कृत्रिमता तो शायद ही दृष्टिगोचर हो। वानर वृन्द ने निम्नलिखित गायन गाया—

"जय देवाधिदेव डार्विन—जय तपस्विन्
समझाई जग को सुखदाई नर-वानर की सरल सगाई
जाने जन परवीन—जय देवा०
नहिं भाषा नहिं हम को वस्त्र, नहिं खाद्यादि रिपुमय शस्त्र
पूरण कपि प्राचीन—जय देवा०
मनुष्य की सामाजिक जंगें, भवसागर की विकट तरंगें
सब जीवन गमगीन—जय देवा०
मुक्त सबों से हैं हम फिरते, नहीं डराते नहीं हैं डरते
जन दुखी जनु जल मीन—जय देवा०
जङ्गल के फल खाकर फिरते, न भाडुओं से हौजरी भरते
पापहीन प्रभु ले ना भिन्न—जय देवा०
जरूरतें जल या पत्रों की, कभी हाय हैं नहिं शस्त्रों की
हे कपिवर ! हम सुजरीन—जय देवा०
नहीं चाह देशी वस्त्रों में, रहें मस्त हम दिग्वस्त्रों में
कटि में नहिं कोपान—जय देवा०
लग्नों में नहिं भाड़ तमाशा, नहिं कुछ लैन-दैन की आशा
नहिं होते गमगीन—जय देवा०
नहिं बन्धन नहिं अरु कुछ तोड़ें, नहिं स्वजनों से कभी मरोड़ें
विषयी सम हिय को नहिं फोड़ें, नहिं दारू न अफ़ीम-जय०

नहीं हमें कुछ पतली मोटी, नहीं हमें है चिन्ता खोटी

क्यों नहिं हम योगिन-जय देवा०

देव हुआ पहिले बड़दादा, ब्रह्मचारियों को था सादा

खिस्ती मुस्लिम एक वनादो, हुआ नहीं नवीन-जय०

जय जय जय जय जय श्रीवङ्का, उखाड़ दी थी जिसने लङ्का

देखो बाल विवाहित रङ्का, भारी मेरी जमीन-जय देवा०"

तत्पश्चात् ऐसे कितने ही दृश्य हुए। आज भी अच्छी हुई, पात्रों ने ईसाइयों की संस्था होने से अच्छी सहायता की आशा रखी थी, किन्तु सरकस का मैनेजर दूसरे ही दिवस वहाँ से सब पैसे लेकर जादू की तरह गायब हो गया। इस घटना से उद्धत सबसे अधिक हताश हुआ।

ये सब बातें एक दक्षिणी सज्जन महादेव पंत के जानने में आईं। यह भी ग्रैजुएट था और उसने संस्कृत का अभ्यास भी अच्छा किया था। शास्त्रों की कितनी ही पुस्तकों पर इसने टीका की थी। अपने अनेक गुजराती मित्रों के द्वारा इसने उद्धत के साथ परिचय कर यह उससे मिला। बहुत कुछ वार्तालाप के पश्चात् उसने उद्धत के विचार जानने चाहे। उद्धत को कुछ छिपाव नहीं था। उसने तुरन्त ही जो था वह प्रकट किया और महादेव पंत को भी उसके विचारों में मानो बलात् 'हाँ में हाँ' मिलानी पड़ी।

महादेवपंत—जो बात करने के लिये आप तत्पर हुए हैं वह शास्त्र सम्मत है यही आप को सिद्ध करना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि आप कुछ कार्य करेंगे तो आप अपने भाग में निन्दा के पात्र होंगे, दुःखी होंगे, जन समाज आपका बहिष्कार करेगा।

उद्धत—जो कुछ भी है ! जो विचार मैंने किया होगा वह पक्का करके ही किया होगा। यदि एक व्यक्ति अच्छा सुधार प्रारम्भ नहीं करता, अपने उदाहरण से प्रजा में आदर्श नहीं बनता, तो फिर 'सोसाइटी' कभी सुधरने की नहीं। हिन्दू, पारसी, मुसलमान, ज्यू, ईसाई सब परमात्मा की सन्तानें हैं। वे सब एक हो जायँ तो भारतवर्ष की यह स्थिति न रहे, जो उदाहरण मैं रखता हूं उससे तो केवल सब हिन्दू हिन्दू एक होने की ही बात है। इतर जाति में विवाह हुआ होता तो मुझे विशेष प्रसन्नता होती, किन्तु वह यश किसी अन्य के भाग्य में ही होगा।

महादेवपंत—हिन्दू जाति का दुर्भाग्य है कि आप जैसे व्यक्ति के मुख से मैं यह सुन रहा हूं। सुनिये, छाया ही प्रकाश का मूल्य आँकती है। उसी प्रकार समाज का कूड़ा ही उसके शेष अंश की उज्वलता को प्रकट करता है। प्रकृति की भाषा पढ़िये ! सब समान ही होना चाहिये, सब मनुष्यों की समान स्थिति करना यह ईश्वर की इच्छा नहीं है। अपने घर के अन्य प्रजा जनों की सांसारिक घटना पर विचार करो। उस में पृथ्वी की तरह गढ़े तथा टीले सर्वत्र देखोगे। उच्च विचार के, उच्च स्थिति के मनुष्य कीचड़ में लथपथ रहने में ही प्रारब्धाङ्कित कुटुम्बों के साथ विवाहादि व्यवहार करने में घबड़ाते हैं और जहाँ वैसे नहीं होते, वहाँ भयंकर परिणाम भी होते हैं।

वर्ण व्यवस्था संसार में सर्वत्र तुम देखोगे। योरोपीय प्रजाओं में पादरी लोग ब्राह्मणों का ही काम करते हैं। व्यापारी वर्ग देश की समृद्धि में अपना कर्तव्य पूरा करता है। लड़ने वाला समुदाय अलग है। बाक़ी के शूद्र हैं। जो बात अन्यत्र सूक्ष्म रूप में है वह भारत में

स्थूल रूप में है। वृक्षों में भी तुमको सूक्ष्म दृष्टि से जाति होने का भास होता हो तो उसमें आश्चर्य नहीं है। पीपल, तुलसी, वट इत्यादि ब्राह्मण से लगते हैं; आम, इमली वैश्य हैं; कांटे वाले वृक्षों को शूद्र वृक्षों की संज्ञा क्यों न दें? अतएव वर्ण व्यवस्था की संस्था साक्षात् परमेश्वर ने ही रची या वेद प्रणीत है, यह बात यदि एक ओर रक्खें, तो भी ये व्यवस्था हजारों वर्षों की अपनी स्थिति बतलाती है। जब तक वह अबाधित और सुरक्षित रह सकी, तब तक चारों वर्णों की सांसारिक उन्नति कर रही थी। सब ज्ञातियों की वंशवृद्धि इसी से थी। हिन्दू जाति का गौरव इसी से था। हिन्दू जाति वर्ण-वर्ण से पहिचानी जाती थी और अब भी पहिचानी जाती है। सहस्र जिह्वा से मानों वह अन्य प्रजाओं को बोध करा रही थी कि समाज के नियम इस प्रकार के होने चाहिये। इस संस्था की नींव डालने वाले साधारण मनुष्य नहीं थे, भूल करने वाले तो नहीं ही थे। परिणाम बतलाते हैं कि, उन्होंने वर्णों को व्यवस्थित करने में बड़ी योग्यता बतलाई है। चार सौ वर्ष पूर्व जो वैश्यों को बहका कर मुसलमान किया गया, वे भी आज कर रहे हैं तो व्यापार ही! किसानों को मुसलमान या ईसाई किया होगा तो वे भी करते हैं खेती ही! मूलतः जन समाज में ज्ञान का प्रसार करना ब्राह्मणों का ही काम था, वे आज के अव्यवस्थित समय में भी उपदेशक, कथाकार, वर्तमान पत्रकार, अध्यापक, राजसभा सदस्य, आयुर्वेद प्रचारक, इसी प्रकार विशेष अंश में ज्ञान का प्रसार ही कर रहे हैं। यह क्या बतलाता है? पूर्वकालीन महर्षियों के द्वारा दीर्घ दृष्टि से बाँधे गये इन नियमों के कारण पिता के व्यवसाय तक के अंकुर पुत्र को उत्तराधिकार में प्राप्त होते हैं। शिल्पी का लड़का सहज में शिल्पी होगा, उसको व्यापार करने की बात अच्छी न लगेगी। एक ब्राह्मण बालक स्वभावतः उत्तराधिकार में प्राप्त संस्कारों के कारण-वेदोच्चार सहज में कर सकेगा। शूद्र से वह नहीं बैठेगा। सैकड़ों शताब्दियों से यह व्यवस्था नहीं टूटती।

जनसमाज ने जो क्लेशों से बिगाड़ दी है, यह ठीक है, अतः केवल वह खराबी निकाल दी जाय, तो सब कुछ है। किन्तु शूद्र और ब्राह्मण को एक करने की बातें केवल कुछ समय तक ही इस व्यवस्था को विचलित करेंगी, अन्य कुछ नहीं! इस व्यवस्था को नष्ट करने के लिये इस समय से कहीं अधिक सबल प्रयत्न हुए हैं, किन्तु इसके किले से एक कंकरी नहीं खसकती। अब अन्दर की मार से खसकने लगी है, परन्तु वे प्रयत्न भी अल्पायुषी होंगे। क्योंकि इन प्रयत्नों में विशेषांश इस व्यवस्था के रचेताओं की संतान ब्राह्मण वर्ग नहीं है। जिस प्रकार भारत के महाशय और देवियों ने विशेष भाग में इस समय अमेरिका में जन्म लेकर अपने जन्म स्थान से उस देश को शोभित किया है; जिस प्रकार आइरिश देह में भारतीय आत्मा रखती हुई एक देवी स्वयं भूलें करते हुए भी भारत के उदय के प्रयत्नों में अपना कर्तव्य बजा रही है, (१) उसी प्रकार ब्राह्मण माताओं के पेट से जन्म लेकर, वर्ण व्यवस्था का विध्वंस करने वाली पूरी सेना उत्पन्न होगी तभी ईश्वर की इच्छा समझ में आयेगी कि पूर्व कालीन महर्षियों द्वारा निर्मित इस वर्ण व्यवस्था की संस्था का अब कुछ रूपान्तर करने का समय आ पहुंचा है। वैश्य या किसान चाहे विद्वान् हो जायँ, अन्य क्षेत्रों में कदाचित् दिग्विजय करलें, परन्तु उनके सहस्रधा प्रयत्न करने पर भी इस संस्था का हिमालय समान पर्वत हिलता नहीं, यह सिद्ध करता है कि उनको इस संस्था को पूर्ववत् सुधारने के मिथ्या उपदेश के सिवाय उसकी व्यवस्था में स्पर्श करने का अधिकार नहीं। अतएव उनको अपने प्रयत्नों में व्यय होने वाली शक्ति का प्रवाह अन्य दिशा में करना चाहिये। चाहे ढेढ़, भंगी, कोली, चमार इत्यादि जातियों को दी जाय जितनी शिक्षा की बातें करो, उनके

(१) Dr. Annie Besant.

लिये शालाएँ स्थापित करो, उनके जीवन नीतिमय बनाओ, उनको मद्य माँस का त्याग कराओ; कजऊ धूतादि के त्याग करने का उपदेश दो; उनमें से कोई अच्छी योग्यता प्राप्त करे उसका योग्य सत्कार करो, किन्तु ढेड़, भंगी के साथ ब्राह्मण बैठेंगे तभी भारत का उद्धार होगा, इन तुम्हारे मन्त्रों से हमको बचाओ! शूद्र कन्या को उच्च जाति ही वरेगी और तभी ब्राह्मण ढेड़ से बनो हुई वर्णसंकर प्रजा के प्रयत्नों से उदय सन्मुख मिलने आवेगा, यह बात शताब्दियों से एक ही दिशा में गति करने वाली करोड़ों हिन्दू व्यक्तियों के कण्ठ कैसे उतरे? नहीं उतरती देख कर भी तुम प्रकृति के कार्य से तुम्हारे प्रयत्नों का उत्तर न ले सको तो इसमें यही अर्थ निकल सकता है कि अभी जैसे घृत को स्वच्छ करने में खार डालने की आवश्यकता है, वैसे इस संस्था का कूड़ा दूर करने में ऐसे कष्ट रूप खार पड़ने की आवश्यकता है।

वैश्वदेव यज्ञ द्वारा पवित्र हुए वातावरण का शुद्ध प्राणवायु सर्वदा लेने वाले के विचार, संस्कार, चमड़ा पकाने की दुर्गन्ध से पूर्ण कुण्ड से निकलती बदबू में अभ्यस्त ढेड़ के विचार, संस्कार एक हो जाने की बात ज्वालामुखी समान कोई आकस्मिक प्राकृतिक घटना हो उस दिवस ही ब्राह्मण और शूद्र एक करने की कोई सुने! आचार और विचार में कम सम्बन्ध नहीं है। जो आचार—जो क्रिया अमुक मनुष्य अपने व्यवसाय रूप में करता है, उस क्रिया में से उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म रजकण उसके मानसिक व्यवहार का पोषण करते हैं। हाथ और पैर द्वारा होने वाले कार्यों की स्वच्छता हाथ और पैर की स्वच्छता से मन की स्वच्छता के लिये विशेष आवश्यक है। अतएव समान जाति में ही विवाह हो तभी परस्पर विरुद्ध संस्कारों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली वर्ण संकर प्रजा से हिन्दू प्रजा की रक्षा होगी। मनुष्य के जीवन की लम्बाई मर्यादा प्रमाण में भारत में तो २३ वर्ष की ही है।

तथापि अधिक से अधिक मनुष्य जीवन की लम्बाई १०० वर्ष की है, इससे जो अधिक लम्बी होती तो यह वर्ण व्यवस्था नष्ट करने का उपदेश करने वालों को स्वयं वर्णान्तर विवाहों में पड़ कर उसके प्रयोग कराने की शिक्षा दी जाती ! ऐसे विवाहों पर विचार करो ! प्रथम तो ऐसी दम्पति का उनकी ज्ञाति तरफ से ही वहिष्कार होगा; अन्य ज्ञाति उनको आश्रय देगी नहीं; उच्छृंखलता का दोषारोपण, इकले में पड़े रहने की दुःख मय स्थिति; इसी प्रकार के सुधार में निहित ऐसे तप लिखे जाँय तो भी इस तप द्वारा इच्छित कार्य की सिद्धि दूरक्षितिज में नहीं दीखती, यह निश्चय समझना !"

उद्धत उपरोक्त उपदेश के समय चुप रहा। उसके अन्तःकरण में उसका कुछ असर हुआ नहीं दिखाई दिया। महादेव पंत ने समझा कि भैंस के आगे भागवत पाठ वृथा है, अतः वे वहाँ से चल दिये।

परिच्छेद १६ वां

श्रीयुत बाबू उद्धतलाल बी० ए०, आर० अस०, एटसेटरा०-एटसेटरा.

आनन्द जंकशन स्टेशन पर जन समूह का अल्पायुषी मेला हो रहा था। साधारण-सादा पोशाक में एक महापुरुष प्लेटफौर्म पर इधर उधर चक्कर लगा रहा था। उसके हृदय की विशालता का कुछ आभास जगत् के अभ्यासी को उसके नेत्रों पर से होता था। आज पूर्णिमा का दिवस था, तथा डाकौर के मेले में जाने वाले लोगों की अपार भीड़ थी।

वह महापुरुष सम्भवत: तीसरे दर्जे में ही यात्रा करता किन्तु आज की भीड़ तथा गत रात्रि के कुछ दु:खद प्रसंगजन्य क्लेश के कारण अस्वस्थ प्रकृति होने से दूसरे दर्जे में बैठने का उसका कर्त्तव्य होगया था। अत: दूसरे दर्जे में टिकिट लेकर वह जा बैठा अन्दर एक पारसी सज्जन बैठे थे। दोपहर का समय था। गाड़ी बम्बई की ओर जा रही थी। महात्मा को सूरत उतरना था। अन्दर बैठते ही उस पारसी सज्जन ने हमारे इन महापुरुष का मानो पूर्ण परिचित की भाँति अत्यन्त स्नेह पूर्ण दृष्टि से स्वागत किया। पारसियों के सांसारिक झगड़े हम हिन्दुओं से कुछ कम नहीं होते। उनके दु:खों का प्रकार दूसरा होने से तथा पारसी भाइयों द्वारा जैसे भी हो उनके दु:खों की कथा, उनकी वृत्ति भिन्न होने के कारण, प्रकाश में कम आने से हम लोग तो स्व० कावसजी जैसे सुप्रसिद्ध लेखक की लेखिनी द्वारा ही जान सकते हैं। महाशय को आज अवकाश मिला है, यह समझ कर ये पारसी सज्जन सांसारिक तथा औद्योगिक विषयों पर वार्तालाप कर रहे थे। इतने में बड़ौदा स्टेशन आया और सैकिण्ड क्लास के डिब्बे में एक बिलकुल 'अपटुडेट' फेशन वाला, पाश्चिमात्य शिक्षा के साथ एक दम पाश्चिमात्य चाल ढाल वाला, बाईसेक वर्ष का युवक इस डिब्बे में अपना एक बेग और लकड़ी, खाने के बीच की जगह में, जो यदि काच की होती तो टुकड़े-टुकड़े हो जाती रख कर कुछ क्रोध के ढोंग का मुख बनाये अन्दर जहाँ दोनों जने बैठे थे, आकर सामने की सीट पर बैठ गया। महाशय जैसी सादा पोशाक में था, वैसे ही वह पारसी सज्जन भी आडम्बर रहित साधारण पारसी लिबास में था। पैरों में रात्रि का रेशमी पायजामा, नवसारी के बूट, काली ज़मीन पर सफेद बूंद वाले कपड़े की ऊँची पारसी टोपी और बिलकुल साधारण जो शायद पहले दिन ही नीलाम में लिया हो ऐसा पुराना किन्तु साफ कोट—यही उसका पहिनावा था। इससे डिब्बे

में बैठते ही इस नये यात्री ने चित्त में समझ लिया था कि ये गँवार लोग उससे कुछ आदर पूर्वक बैठने को कहेंगे। किन्तु ये दोनों सज्जन तो उसकी नेकटाई इत्यादि पोशाक की ओर इस प्रकार से देख रहे थे कि उनको वैसा कुछ नहीं सूझा था। उनकी वैसी कुछ इच्छा नहीं हुई इसका क्या पता ? "इन्ट्रोड्यूस" हुए बगैर कुछ बोलना नहीं, यह पश्चिमी शिक्षा सिखलाती है, अतः युवक भी क्या करता ? अंत में वह थक कर क्रोध का ढोंग कर एक खिड़की से बाहर का दृश्य देखने बैठ गया। वस्तुतः क्रोधित होने का कोई कारण नहीं था, किन्तु पश्चिमी शिक्षा हम को कई कुटेव सिखलाती है। इन बुरी टेवों को तत्काल छोड़ने में परिश्रम पड़ता है, अतः प्रो० वोंस ऐसी कुटेवों को वमन कर देने का कोई यन्त्र ढूंढ़ सकें, उनकी प्रतीक्षा करना हमारी नाजुक दशा हमको सूचित करती है। सामने की सीट पर बैठे दोनों सज्जनों ने अपनी बात आगे चलाई।

पारसी—वास्तव में आप का इस प्रकार अचानक मिलना न हुआ होता, तो मेरी अनेक शंकाएं मनमें ही रह जातीं। बहुत दिनों से आप से मिलने की इच्छा कर रहा था। किसी प्रकार के आन्दोलन के चुप-चाप लोगों का उपकार करने में आप जीवन व्यतीत करते हैं, यह बात कितने ही आप के परोपकार से लाभ उठाने वालों से ही सुनते हैं, इसका हमको बहुत अभिमान है।

महाशय—जब समाज पर जातियों की विभिन्नता से रहित शुद्ध हृदय की सम्राटोचित दातव्यता के लिये आप की ही जाति ने भारत को अपने उपकार तले रख छोड़ा है। नाम स्मरण मात्र से पवित्र करने वाले सर जमशेदजी नसरवानजी ताता ने भारत के भूगर्भ में निहित द्रव्यों के अभ्यास के लिये तीस लाख रुपयों का दान किया है वैसा अब तक अन्य किसी ने किया ?

अनेक दिशाओं में उदय की चर्चा सुनते हैं और अब तो लाखों भारतीय अपने देश की उन्नति के लिये अनेक कला-उद्योग सीखने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह बात ठीक है, किन्तु भूगर्भ विद्या (Geology) का विधिवत् अभ्यास भारतीय विद्यार्थी कर सकेंगे, वह दिन हमारा स्वर्ण होगा।

पारसी—परन्तु वह कब ? वख्त ने किसी का इन्तज़ार किया नहीं है। सुनते हैं कि भारत में बहुतसी जगहों में दूसरी दूसरी धातु निकल सकती हैं, क़ीमती पत्थरों की खानों का भी पता मिला है, किन्तु हम लोगों का कुछ आडम्बरी जीवन--

नवागन्तुक युवक को इस समय इस वार्तालाप में कोई रस नहीं मिला, अतः उसने 'कम्पार्टमेन्ट' के पाख़ाने और पानी वाले हिस्से का द्वार खोलना चाहा। इस डिब्बे के सब तख्तों पर नया रोग़न होने से वह सहज में न खुल सका, अतः बहुत ज़ोर से उसे खेंचा और उतने ही वेग से उसमें गये बाद पुनः उसको बन्द कर अन्दर बैठ गया।

भारतवासियों के आधुनिक जीवन और उनकी उन्नति के साधनों के पवित्र वार्तालाप रूप गंगा में स्नान करने वाले इन दोनों सज्जन पुरुषों का गाड़ी में समय मानो बड़ी शीघ्रता से निकलने लगा। जब सूरत के समीपवर्ती स्टेशन आने लगे तो शान्तिप्रसाद ने जो इस महाशय का नाम का था अपनी जेब वग़ैरह सम्हालीं।

परन्तु वह युवक अब तक बाहर नहीं निकला था। पारसी सज्जन द्वारा उस ओर ध्यान आकर्षित होने से दोनों को कुछ आश्चर्य हुआ। शौचादि में इतनी देर लगे तो निश्चय ही उसे किसी रोग का चिन्ह है। पारसी सज्जन ने द्वार खेंचा, किन्तु वह नहीं खुला। दोनों को विचार

हुआ कि जब बाहर से ही वह नहीं खुल सका तो अन्दर से भी वह कैसे खुल सकेगा। दोनों ने ज़ोर से खेंचना शुरू किया और अन्दर संकेत करने के लिये उसके तख़्ते पर हाथ से ठोकने लगे, किन्तु कुछ प्रत्युत्तर नहीं मिला।

उसके हृदय की गति तो बन्द नहीं हो गई ?

"ईश्वर ऐसा न करे !" महाशय शान्तिप्रसाद ने कहा, इतने में एक छोटे से स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई। दोनों ने यह बात गार्ड से कही। गार्ड ने भी तुरन्त ही एक कारीगर को इसमें दाख़िल किया और गाड़ी चलते चलते कहता गया कि "इस डिब्बे पर नया रोग़न होने से और बीच में बादल होने से ऐसी घटना हो जाती है। पाख़ाने का काच टूटा है, उसमें से एक आदमी को मैंने अन्दर खड़ा हुआ देखा है, अतः घबराने का कुछ कारण नहीं है।"

इस कारीगर द्वारा अनेक प्रयत्न किये जाने पर द्वार खुला और वह युवक बाहर आकर पुनः ज्यों का त्यों 'मानो कुछ घटना हुई ही नहीं है' आकर बैठ गया। इसके हाथ में रुधिर निकल रहा था।

"यह आप को क्या हुआ ?" पारसी सज्जन ने पूछा।

युवक ने कहा—अब मुझे कहना ही चाहिये कि आवाज़ बाहर पहुंचाने के लिये गार्ड को बुला कर कहने को मैंने ये खिड़की तोड़ने का प्रयत्न किया था।

पारसी—तो फिर जब गार्ड यहाँ आया उस समय तुम पुकारे क्यों नहीं ?

युवक—खड़े होकर उस समय मैं कहने लगूं उसके पहले तो गार्ड चल दिया।

पारसी सज्जन ने अपने पास से अपने रूमाल से टुकड़ा फाड़ कर युवक के हाथ में पट्टी बाँधी। पट्टी बाँधते हुए उसने जिज्ञासा से पूछा कि हमने ज़ोर से आवाजें दीं वे तुम अन्दर सुनते थे या नहीं?

क्यों नहीं? "हाँ" वह बोला।

पारसी—अरे भले आदमी, फिर तुमने उसी समय अन्दर से आवाज़ दी होती तो हम तुमको कुछ शीघ्र मदद कर सकते और सम्भवतः इस घटना से बचा सकते।

युवक—परन्तु मैं जवाब कैसे देता? उस समय तक मैं आप से 'इन्ट्रोड्यूस' नहीं हुआ था। महात्मा शान्तिप्रसाद जीवन में कदाचित ही हँसते दीखते थे, उनको भी यह बात सुन कर हँसी आगई। इतने में सूरत स्टेशन आने से पारसी सज्जन ने उनका बटुआ उनको सौंपा और वे उतर गये, स्टेशन पर दस बारह विद्यार्थी मण्डल उनके सत्कार के लिये खड़ा था, उनके जय घोष में देखते देखते वे अदृश्य हो गये।

पारसी—आप को कहाँ जाना है?

युवक ने एक विज़िटिंग कार्ड जेब से निकाल कर पारसी सज्जन के हाथ में दिया। उसमें इस परिच्छेद पर दिया हुआ हेडिंग अक्षरशः छपा था।

पारसी वह बाँच कर साहजिक विस्वास से बोला "मैंने तो तुम से यह पूछा था कि तुमको कहाँ जाना है?"

युवक—मैंने सोचा कि आप मुझे नहीं पहिचानते हों तो इस कार्ड से पहिचान सकेंगे और फिर पूछने की आवश्यकता नहीं रहती।

पारसी—इस कार्ड में तो आपको कहां उतरना है यह लिखा नहीं है। कदाचित अपने रेल के टिकिट के बदले में तुम यह बतलाते होगे। परन्तु आर० एम० यह क्या ?

युवक—वाह ! ये भी नहीं जानते ? अब तो आर० एम० एक प्रकार के टाइटिल-खिताब में खपता है !

पारसी—हां-हां ठीक बात है मेरे ख्याल से 'राव साहब' तो नहीं ?

युवक—वाह ! 'राव साहब' उसके आगे किस गिनती में है ? इसका मतलब तो "रियल सुधारक है"

पारसी—यह तो Hybrid गड़बड़ भाषा हुई। 'रियल' अंगरेज़ी और 'सुधारक' हिन्दुस्तानी ! क्यों साहब ?

युवक—अब ऐसा ही होने की आवश्यकता है। भाषा में, जातियों में, रीति-भांतों में !

पारसी—परन्तु मेरे ध्यान से विचारों में तो नहीं ही, अच्छा ! 'शर्मा' क्या ?

युवक—'शर्मा' तो एक समय हम ब्राह्मण थे यह बतलाने के लिये संज्ञा मात्र है अब तो मि० पटेल के बिल के अनुसार सब एक होने वाले हैं अतः वह तो आवश्यकता पड़े तो इतिहास के लिये ही उपयोगी है, अन्य कुछ नहीं।

इसी समय सूरत के स्टेशन से ट्रेन रवाना हुई और बातचीत आगे चली।

पारसी—इस विज़िटिंग कार्ड में 'एस्स. वाइ. जैड' है यह भी कोई नया खिताब होना चाहिये, है ना ?

युवक—नहीं-नहीं आप समझे नहीं ! सब अक्षर एक छोटे से विजिटिंग कार्ड में नहीं आ सकते अतः प्रिन्टर ऐसा छाप देते हैं।

पारसी—तो सम्भवतः आप L. L. D. भी होंगे ?

युवक—ओह, किस एल. एल. डी. ने देश का कल्याण या सुधार किया है ?

पारसी—यह कैसे ? दादा भाई नौरोजी ! लॉर्ड रे, डॉ०भण्डारकर फीरोजशाह मेहता, ऐनीबेसेन्ट, चाहे आप को कहना पड़े कि इस ओर कहां जा रहे हैं !

युवक—मैं एक सच्चा सुधारक हूं और वर्णान्तर विवाह का सीधा उम्मेदवार हूं। इस कार्य में मुझे कितनी ही बार द्रव्य की आवश्यकता हुई है। अतः महात्मा शान्तिप्रसाद ! —

पारसी—उनको आप कहां से जानते हैं ? कभी उनको देखा है ?

युवक—नहीं, देखा तो नहीं है किन्तु वे मेरा नाम जानते हैं, अवश्य जानते होंगे ही ! वे बहुत उदार एवं परोपकारी हैं। किसी व्यक्ति की आवश्यकता देखते ही तुरन्त उसकी सहायता करने में हिचकते नहीं हैं। उनकी उदारता सुनी है अब मुझे मेरे इस नये साहस में उनकी सहायता की आवश्यकता है। वे बम्बई किसी सम्मेलन में भाग लेने चले गये हैं, अतः उनसे मिलने मैं बम्बई जाऊँगा।

पारसी—क्या सूरत स्टेशन पर उतरे वे ही महात्मा शान्तिप्रसादजी !!

युवक—अरे भले आदमी ! तो तुमने मुझसे कहा भी नहीं ? अब मैं क्या करूं ?

पारसी—मुझको क्या खबर कि आपको उनसे मिलना था, किन्तु आपको इतना घबराना नहीं चाहिये।

युवक—किन्तु मेरे पास वापिस जाने को पूरे पैसे भी नहीं हैं।

पारसी—तो मेरी राय में देखिये, आप अगले किसी छोटे स्टेशन पर उतर जाइये और वहीं तक ही यात्रा करने से बाकी दाम रेल्वे कम्पनी से आप वापिस ले सकेंगे।

युवक—किन्तु वह यहां कुछ उपयोगी होगा ?

पारसी—तब आप क्या करना विचारते हैं ?

युवक—मेरे विचार से मुझे बम्बई जाना ही चाहिये। मेरे पास एक दूसरा पत्र भी है उन पारसी सज्जन को सम्भवतः आप जानते होंगे क्योंकि वे भी शान्तिप्रसाद सदृश ही दानवीर महात्मा हैं। यह है वह पत्र—

पारसी सज्जन ने वह पढ़ा, उसमें यह लिखा था :—

The bearer an orphan, was given the benefits of primary education in mahatma Shanti Prasad's 'House for the poor.' He has been pushing questions of Hindu Social Reform on Gujrat side, where orthodoxy reigns supreme, and as such he is a fit object for the exercise of liberality of charitably disposed Ladies and Gentlemen of Bombay.

To Seth Nasarvanji.

Yours

पारसी–अच्छा हुआ कि यह पत्र तुमने मुझे यहीं बता दिया अन्यथा बंबई का भी आपको फेराही होता। अच्छा, अब यह सचीन स्टेशन आगया यहां तुम उतर पड़ो। यह लो यह तुम्हारी सहायता!

यह कह कर इस पारसी सज्जन ने सौ रुपये का नोट इस युवक के हाथ में रक्खा। वह आश्चर्ययुक्त उतरा, उतरते उतरते उसने कहा 'आपही सेठ नसरवान जी हैं?'

पारसी—हां, अब तुम जाओ, गाड़ी चलदी है ऐसी भूल फिर न हो यह ख्याल रखना तुम्हारे हाथ में चोट है अतः बाजारू मिठाई न खाना, सम्भवतः बढ़जाय अच्छा! साहबजी!

परिच्छेद १६ वां

भ्रष्ट दृश्यों से पतिता पुण्य भूमि

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जिस समय पंचवटी की ओर जाते थे आधुनिक 'नासिक' नगर की भूमि की ओर आये होंगे वह यही भूमि! और सदियों के बाद, रेल्वे स्टेशन से करीब आधे माइल दूर साधारण व्यापार वृत्ति वाले नागरिकों से बसायी गई, कुछ यात्रा के लिये आने वाले लोगों के कुतूहल से सीता लक्ष्मण और श्रीरामचन्द्र की चरणरज से टिकी हुई पवित्रता का भान कराने वाली, सांसारिक सुधारों के लिये आन्दोलन करने वाली, दो तीन आधुनिक संस्थाएँ धारण करने वाली भी यही भूमि! चेतन के समान जड़ को,–मनुष्य के समान भूमि को भी उदय और अस्त के महान् नियमों के झोके लगते हैं।

पवित्र गोदावरी के तट से कुछ दूरी पर स्थित छोटे उद्यान के समान एक विशाल और उपजाऊ खेत के पास ही 'अमर नाम रखने के लिये' किसी ने दो पत्थर लाकर रख दिये थे, जिसके पिछले भाग में बड़े अक्षरों में कुछ उसका नाम भी किसी समय का लिखा प्रतीत होता था। वह नाम अब ठीक ठीक पढ़ने में नहीं आता।

इस स्थान पर बसन्त ऋतु में आस पास के उद्यानों से आने वाली सुगन्ध मिश्रित समीर की लहर में एक युवक इस टील पर एक दिवस संध्या के समय करीब एक घंटे से आकर बैठ गया है, उसने नवीन तम पेरिस फैशन का किसी अंग्रेज द्वारा सीया गया 'सर्ज' का पतलून पहिन रक्खा है। उसी प्रकार 'वेनीजन' कपड़े का ऊंची में ऊंची सिलाई का कोट, पतलून को जवाब देने वाला ही देखने में आता है। उसने अपने सिर के बाल, बहुत उद्योग से लेटैस्ट फैशन के अनुसार करीब एक घंटा बैठ कर ठीक कराये मालूम होते थे, जिनसे 'ओटो डीरोज़' कीसी कुछ सुगंध आस पास फैली हुई थी। उसकी लकड़ी! जापान की बनावट का नाजुक नमूना थी! उसके बूट सौभाग्य से कानपुर के बने हुए इटली के बने कह कर दूकानदार ने उसे दे दिये थे! उसका सुन्दर रूमाल! वास्तव में तो ढाका की मलमल का था किन्तु 'जापानी इमीटेशन' कपड़े का है बतलाकर उसे किसी चालाक दूकानदार ने ठग लिया था। मैसर्स चिनाई ब्रदर्स ने टोपी बंबई में बनायी है यह कहा जाता तो वह न लेता किन्तु खास औस्ट्रिया का बना हुआ माल भूल से जान कर उसने टोपी खरीदी थी।

अच्छे बुरे की परीक्षा करने की शक्ति आधुनिक शिक्षा पद्धति दे सकती है, उसका कुछ अंश इस युवक में दृष्टिगोचर होता था। एक समय एक स्वदेशी स्टोर्स के प्रयोजक के साथ वार्तालाप के प्रसंग से

उसके उद्‌गारों से उसके इस व्यवहार का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

मैनेजर ने पूछा—"जबतक हमारे युवक विदेशियों की नकल करने की पद्धति छोड़ना और देसी बनना प्रारम्भ नहीं करें, तब तक स्वदेशी माल के प्रचार होने की अधिक आशा किस प्रकार रक्खी जा सकती है ?"

युवक ने उसी समय उत्तर दिया कि—"जब तक आप आंखों पर पट्टी बांधकर हर कैसा देसी माल लिया करेंगे तब तक देश में अच्छा माल बनने का नहीं !"

इस विषय की अधिक बात चीत होने पर मैनेजर को प्रतीत हुआ कि किसी प्रदेशी व्यापारी ने इस उद्धत युवक के चित्त में ऐसा मूर्खता पूर्ण विचार भर दिया है जिसको निकाल देना ज़रा कठिन था। यातो स्वदेशी आन्दोलन के प्रयत्नों को उत्तेजना देने के लिये देश में बनने वाली वस्तुएँ जैसे भी हो लेने का कर्त्तव्य समझते हुए भी बहुत काल से विदेशी वस्तुओं का प्रयोग अभ्यास में आने से वह आदत अब छोड़ने से उसे लज्जा मालूम होती हो या ऐसा करना उसे रुचता नहीं था ! तात्पर्य यह कि स्वदेशी उद्योग के प्रति होने वाले प्रेम का पल्ला विदेशी माल पर आसक्त होकर खरीदने की कुटेव के पल्ले से ऊंचा था।

केवल वेष भूषा के फैशन में इस युवक का चित्त इस प्रकार चलायमान नहीं था। देश में उठे हुए सांसारिक बड़े सवालों के विषय में तो और अजीब रंग ढंग उसके चित्त में घर कर रहा था। उसका एक सुधारक कहे जाने वाले महाशय ने अच्छी तरह से लाभ ले लिया था। इस युवक को इस तंगी के ज़माने में उसने अपने विचार

देश में फैलाने का एक हथियार बना रक्खा था ! शिक्षित होते हुए भी, खोटा-खरा क्या है, यह विचार पूर्वक व्यवहार कार्य पर लगाने में जितनी बुद्धि रखते हुए अपने बुद्धि-स्वतंत्र विचारों को जो देश के युवक अन्य हर किसी व्यक्ति के सिखाने से बेचाकरें, वह उनकी अवनति की ओर जाने वाली भवितव्यता ही समझना चाहिये। देश की उन्नति स्नेह से, शान्ति से, सद् व्यवहार से, विवेक से, समझ से और बुद्धि युक्त तर्क से हो सकती है अन्य किसी साधन से या शास्त्र से कभी न हुई है न होने की ही है। उद्धताई से ही हम देश की उन्नति शीघ्रता से करलेंगे यह यदि साक्षात् बृहस्पति आकर कहें तो वह हमको मान्य नहीं है। सृष्टि की उत्पत्ति के बाद से कोई भी प्रकार के कलह से एक पक्ष को दबाकर उन्नत होने की अभिलाषा कभी पूर्ण हुई है ? कलह, कुसंग या कहिये कि छोटे बड़े विग्रहों द्वारा एक व्यक्ति को या अनेक व्यक्तिओं से बने हुए जन समूह को-प्रजा को उस कलह या कुसंग के परिणाम से दाब कर बैठा देने का कोई भी उदाहरण है ? इसी से आत्मावत् सर्व भूतेषु इस महा मंत्र की मर्यादा सर्वत्र शान्ति की इच्छा करने में, कलह से दूर रहने में सन्निहित है ऐसा वेद पुकार पुकार कर कहते हैं !

युवक बैठा बैठा उकताने लगा ! छै बजने का समय हुआ ! आस पास के उपवनों से वसन्त ऋतु में खिलने वाले पुष्पों की सुगन्ध मिश्रित समीर की लहर उसको शान्त न कर सकी ! उसने अपनी 'डायरी' निकाली !

"साढ़े पांच का समय है ! आश्चर्य ! क्या कोई घटना होगई ? नहीं, फिर वह क्यों रुक गई ?"

युवक का मन डायरी के पृष्ठों में आज ऊँचे स्वच्छ आकाश में देखकर दीर्घ विचार में तल्लीन होने से चलायमान होने लगा।

"हम लोगों को बस ! समय का मूल्य कहां है ?" इस प्रकार विचार करते हुए हृदय से ही मानो उत्तर देती हुई आवाज़ आती प्रतीत हुई कि—

"अरे ! समय का मूल्य तो यह बहुत ही अच्छी तरह जानता है—तो क्या हुआ होगा ?"

इसी समय भगवान सूर्य नारायण अपना स्वरूप तिगुना बढ़ाकर, मनुष्यों के चर्म चक्षु द्वारा एक विशाल आकार में दीखते मृत्युलोक के मनुष्यों के अनेक कर्मों के निरीक्षण करने से उकता कर क्षितिज में आकर समुद्र में स्नान करने उतर पड़े थे और उनके सामने पूर्व दिशा में तुरन्त ही शान्त, शीतल, कुछ कम तेजस्वी-चन्द्रबिम्ब आकर खड़ा हुआ था। एक खड़े हुए तख्ते के पीछे आंख मिचोनी खेलने वाले दो बालकों के इस रमणीक दृश्य में 'कौन तल्लीन नहीं होजाता ?!' यह हुआ मालूम होता था।

युवक यह दृश्य देखते हुए घड़ी भर रुका कि, पीछे से आकर किसी ने उसकी दोनों आंखों पर हाथ रख दिये !!

मैं समझ गया ! समझ गया !! बस, अब क्षमा करो और अनिमिष नेत्र से चिन्ता युक्त इस दृष्टि को पवित्र होते हुए अब मत रोको ! सुरम्ये ! इस बीच में जो क्षण मैंने व्यतीत किये......" वह बोल उठा।

"किन्तु मैं कौन हूं ? पहिले नाम बतलाइये !" प्रत्युत्तर मिला "क्षमा करो ! क्षमा करो ! मिस कनिष्टिका ! तुम्हारी मीठी आवाज़ और तुम्हारे कोमल हाथ तुम्हारे परिचय देने के कुछ कम प्रमाण हैं ?"

"देखिये, आप कितने भूले हुए हैं ? मिस कनिष्टिका किसको कह रहे हैं ?" वह बोली।

" अरे, अरे ! यह मैं क्या देखता हूं ? मेरी कैसी बड़ी भूल है ? मैंने तुमको मिस कनिष्टिका जानकर ही ऐसा कहा ! तो तुम कौन ? और तुम यहां किस प्रकार आई' ? कनिष्टिका कहां है ?" युवक ने आश्चर्य चकित होकर पूछा । "कनिष्टिका ! कनिष्टिका !

उसको भूल जाइये ! उसको तो हैजा होगया है और मरने की तैयारी में है । घड़ी भर पहले मुझको दिया हुआ यह उसका पत्र !!

डीयर उद्धव !

"क्या लिखू' ? लिखने को अब समय भी कहां है ? इधर आस पास हैजा फैल रहा है और मैं भी प्रसित पड़ी हूं ! कदाचित मैं मर ही जाऊँ तो अन्तिम-अन्तिम प्रणाम !

एक बात लिखने की आवश्यकता देखती हूं । मेरे पिता को हम ढेढ़ लोगों की जाति ने जाति से बाहर किया है ! मूलत: वे वैश्य थे । कन्या न मिलने से मेरी मृत माता के साथ रहे, किन्तु वैश्य ढेढ स्त्री के साथ रहा यह ढेढ़ लोगों की जाति को नहीं जचा ! मेरे विचार से ब्राह्मण ब्राह्मणों' में, वैश्य वैश्यों में और इसी प्रकार प्रत्येक ज्ञाति स्वज्ञाति में ही विवाहित हो यही ठीक है । एक और बात ! कादाचित घन्टे दो घन्टे में मैं चल बसू'गी ! मेरी मौसी की लड़की आपसे मिलेगी उसके साथ तुमको ठीक जचे तो विवाह करना । किन्तु जो तुम इस सुधार में दृढ़ हो तभी ! मेरे विचार तो बदल गये हैं ! यदि विवाह करो तो मेरी स्मृति में उसका भी नाम मिस कनिष्टिका ही रखना ! वह विशेष सुन्दर है और सुधार प्रिय विचार भी रखती है । आगे तुम्हारी इच्छा ! परन्तु मैं मर जाऊँ उसके बाद की यह बात है अच्छा ! प्रणाम !

तुम्हारी
कनिष्टिका

"बिल्कुल ठीक ! यह उसके ही हस्ताक्षर ! अच्छा ! तो वह मरी जाती है ? आप क्या कहती हैं ? बैठिये, बैठिये" यह कहकर उद्धतलाल ने उसको अपनी गोद में बैठा लिया और पाश्चिमात्य पद्धति के अनुसार उसका हाथ अपने हाथ में लिया ! हाइड पार्क का दृश्य यहां चरितार्थ किया।

"आपका उससे मिलने अस्पताल में जाने का विचार है ?" एकटक देखने वाले उद्धतलाल से उसने पूछा।

"क्या वह तुम्हारे लिये मुझसे कुछ सिफारिश कर गई है ?"

"गई नहीं है ! अभी तो जाती है ! मैंने पूछा कि आपको उससे कदाचित अन्तिम बार मिलना है ? वह बच भी सकती है।"

"नासिक के हैजे में नब्बे प्रतिशत केस बिगड़ते हैं यह मैंने कलही पढ़ा है !"

"तथापि आपका मुखावलोकन कदाचित उसको बड़ा लाभप्रद हो"

नहीं, नहीं, कभी नहीं, मैं सोचता हूं कि कदाचित इससे उसका अन्त शीघ्र हो। मुझे नहीं जाना चाहिये। डाक्टर हो तो वह भी यही कहेगा। और वह तुम्हारे समान समझदार—विशेष योग्य की शिफारिश करती हुई जाती है, फिर—"

"तो फिर वह कितनी अधिक भली होनी चाहिये !

" वह भली या मेरा प्रारब्ध भला ! जो भाग्य तुम्हारे सदृश इतनी लावण्यवती का संयोग करावे उसको सबसे बड़ा—मानें तो—उपकार !

" अरे ! ऐसे पाषाण हृदय कृतघ्नी पुरुषों को संसार में स्त्रियां चाहने का साहस कैसे कर डालती होंगी ?" वह बोली—

" क्यों कि उनके हृदय अत्यन्त कोमल- इसीसे कोमले !"

"इतना सब ये कृत्रिम अभिनय आप कहाँ से सीखे ?"

"विलायत और फ्रान्स के उपन्यासों से और उन्हीं में जीवन व्यतीत करते हैं। भारतवर्ष को सांसारिक सुधार सिखाने वाले यदि कोई गुरु हैं तो वह इंगलैंड, फ्रान्स के विद्वान् जगत्प्रसिद्ध उपन्यास लेखक हैं ! उनके आगे तुम्हारे कालीदास और भवभूति पानी भरेंगे—"

" अरे, हम यहां इस प्रकार वार्तालाप करते हैं वहां इस समय मेरी बहिन कनिष्ठिका की क्या दशा होगी ? अब मैं उसकी देख रेख में जा पहुंचू !"

" डाक्टर के आगे तुम क्या देख रेख कर सकोगी ? बल्कि इस अन्तिम बीमारी में गड़बड़ करना अनुचित है। यहाँ तुम कम महत्व की बात नहीं करती ? मैं तुमको वचन देता हूं कि मिस कनिष्ठिका का स्थान तुमको मिलेगा"।

" कहाँ ? "

"पूछती हो कहाँ ? मेरे हृदय में !"

"परन्तु आपके हृदय में उसको ही कहाँ स्थान है ? तो फिर बिना नाम के सर्व नाम सदृश मेरा कहाँ ?"

" अरे, और यहाँ ये व्याकरण का भूत कहाँ लगाती हो ! और अब मरने वाली को—मैं आशा रखता हूं कि—मर चुकी को तुम्हारी ज्योति में अँजे हुए, दबे हुए—लगेहुए- अटके हुए—रिरकते, अरे !

साहित्य के सारे विशेषण आपको सम्बोधते अपनी सहायतार्थ बुलाते-कांपते, प्रार्थना करते-गिड़गिड़ाते-अहर्निश सोचते-ध्यान धरते-प्रेम सन्निपात का अनुभव करते-तुम जैसी के साथ बात करते मुझे पूरे वाक्यों का भी पता नहीं रहता। ऐसे उन्माद में हे सुन्दरी ! अब उनको कहां सम्हालने जाती हो ?"

"धूर्त ! बदमाश !! पागल !!!" यह कह कर उसने उद्धतलाल को एक तमाचा मारा और ज्यों त्यों करके मुख का-चमड़े से सटा हुआ पहिना हुआ चेहरा बदलने के लिये और आकृति कुछ बदल कर विशेष भव्य, विशेष सुन्दर बनाने वाला बिलकुल नये फैशन का बारीक एवं कोमल रबड़ का एक प्रकार का 'बुरका'-कहिये कि एक प्रकार का मुख का ढकना, जो सायंकाल के मन्द प्रकाश से एक दम देखने में नहीं आता था, हटा कर उद्धतलाल की गोद में जोर से फैंका ! और मिस कनिष्टका अपने मूल स्वरूप में उसके सामने धुड़कती हुई उत्पन्न हुए क्रोध के कारण जोर से श्वास लेने लगी, आंखों से क्रोधाग्नि उसे पर बरसाती उसके सन्मुख जा डटी !!

पाषाण की मूर्ति सदृश स्तब्ध, दिग्मूढ़, हुआ उद्धतलाल देखताही रहा! मिस कनिष्ठिका के नेत्रों से, उसी प्रकार जिह्वा से वृष्टि जारी ही रही।

"लुच्चे ! अब तुझे क्या कहना है ? ! कहां गये उस दिन के तेरे सारे वचन ! 'जगत में तेरे सिवाय किसी के स्नेह में लुब्ध होऊं तो परमेश्वर साक्षी है।' ये सब कैसा झूठा हुआ ! थू, पागल !" मिस कनिष्ठिका जो अबतक संभाल संभाल कर अपनी स्वाभाविक भाषा से जानी न जा सके, इस प्रकार बोल रही थी वह अब उद्धत पर प्रवाह चलाने लगी।

उद्धत तो मानो स्मारक निमित्त स्वामी ढोंगानन्द की मूर्ति बना दी गई हो, उस प्रकार स्तब्ध बैठ गया था। उसका मन कोई युक्ति खोज निकाल कर बचाव के लिये मंथन कर रहा था।

" पागल, तेरी शिक्षा आज बता ! जिस शिक्षा के कारण मैंने तेरा विश्वास करके उस दिवस–उस दिवस—"

"अरी, किन्तु कनिष्टिका ! मैंने कैसी भूलथाप (?) तुझे खिलायी है, उसका तू कहां विचार कर सकती है। कुछ हिम्मत एकत्र कर उद्धत-लाल ने उत्तर देने का साहस किया।

"थू ! मवाली ! पागल ! लुच्चे ! धूर्त ! बदमाश ! अब तू कहाँ जा सकता है ? किसने बांधी है ? मैंने या तैंने ही, मेरे समक्ष यह घटना नहीं घटी होती तो मैं मानती भी ? अरे शैतान ! ठग ! तेरे वचनों की सत्यता तैंने ही स्वयं मुझे बताई ! फिर तू क्या कहता था ?"

"मिस कनिष्टिका ! मैं सत्य कहता हूं कि किसी कोष बनाने वाले को भिन्न भिन्न शब्दों के संग्रह के लिये तुम्हारी सहायता लेना आवश्यक है। तुम्हारे पास शब्दों का बड़ा ख़ज़ाना है, परन्तु शब्द ही प्रयोग में लाने–एक निर्दोष व्यक्ति ने घड़ी भर मज़ाक किया हो उसको शब्द–बाणों से ऐसी घातकी रीति से वेध देना–तुम जैसी नाजुक लड़की की जिह्वा के लिये बहुत अनुपयुक्त है।

"चुप रह ! नादान ! अब मैं केवल खुशामद से ठगाने की नहीं, अब मैं वह कनिष्टिका नहीं कि जिस ठगायी हुई ने एक समय तुझ जैसे नीच–हलके–मवाली के हाथ में अपना हाथ देने की हाँ करदी थी।

"खुशामद ! आश्चर्य में हूं, मिस ! जो संसार में खोटा है— जिसमें जो नहीं है उसमें वह है कहना ही खुशामद है। तुम्हारे पास

इतने सारे शब्दों का एक बड़ा अर्थ है तथापि 'खुशामद' शब्द इस जगह प्रयोग करने में तुम्हारी भूल है। संसार में यदि कोई सर्वगुण सम्पन्न है तो एक ईश्वर ही कहा जाता है और यदि यह ठीक है तो उसके बाद दूसरे नम्बर तुम्हीं आती हो। मुझे मालूम होता है कि तुम मेरा सच्चा हृदय ठीक-ठीक समझते हुए मेरी अच्छी तरह परीक्षा करने के लिये ही मुझे सताती हो। या तो मेरा बचाव तुमने सुना नहीं या वह क्या है वह जानती नहीं। इसी से मुझपर ये शब्द प्रहार बरसाने का घातकी साहस करती हो। मेरे दिल को पहिचानते हुए तुम ऐसा करती हो, यह केवल एक बड़ा मज़ाक ही है-एक प्रकार का प्रेम कलह ही है। तुम जैसी एक विद्वान स्त्री के आनन्द क्षेत्र की एक मनोहर शतरंज है; और कदाचित् मैं भूलता हूं और तुम मेरे ऊपर ये उचित प्रहार चलाकर ही कसौटी कर रही हो तो उसमें मेरी अधिक कसौटी होती है। जैसे सुवर्ण को अग्नि देते ही कसौटी पर वह और भी तेजोमय दीखता है।

कनिष्टिका—देख, देख, सुन! धूर्त! तू अब भी कसौटी और सुवर्ण की उपमा देने का साहस करता है? उसी दिवस मैंने तुझसे स्पष्ट कहा था कि यह उपमा सुनना मुझे अच्छा नहीं लगता। सुधार सभा में तूने उस दिवस अपने शरीर के रंग पर घमण्ड में फूलकर कहा था कि मैं सुवर्ण हूं और तू कसौटी है।

उद्धत—अरे हाय! मैंने सुनलिया! मेरी फिर बड़ी भूल हुई! मुझे वह उदाहरण नहीं देना चाहिये था। सच पूछो तो मेरा दिमाग़ तुम्हारे वचन घायदां से ठिकाने नहीं रहा। मैं यह कहता था कि शायद

तुम जानकर मुझे सताती हो या मैंने जो तात्कालिक बुद्धि लगाकर ढोंग किया उसमें मैं सफल हुआ और तुम ठगे गये।"

कनिष्टिका—"किस प्रकार ?!"

उद्धत—क्यों ? किस प्रकार ? तुम्हारे हाथ मेरे नेत्रों पर पड़े उसी समय मैंने तुमको पहिचान लिया। अन्य किसी को तो इस समय इस प्रसंग में इस स्थान पर आना ही नहीं था और हो सकता ही नहीं था। संसार में मिस कनिष्टिका के सिवाय इस रिरयाते उद्धत की इस जगह ख़बर लेने वाला कोई था तो वह केवल तुम्हीं थे।

कनिष्टिका—फिर ?

उद्धत—फिर क्या। तुमने ये रबड़ का मुख पर आच्छादन किया उससे पहिचान में नहीं आये ? ऐसा कहीं हो सकता है ? और कोकिल की सी तुम्हारी आवाज़ जगत में घड़ी भर भी छिपी रह सकती है !

कनिष्टिका—कोकिला कैसे सुनी फिर ? मुझको मालूम होता है कि मेरे रंग पर से ही कसौटी और कोकिला झट याद आती है ! क्यों न ?

उद्धत—काला रंग तो अन्दर सफेद रंग होने का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है।

कनिष्टिका—और गंदुमी सुनहरी, सफेद रंग कैसे अन्तःकरण का प्रमाण कहा जा सकता है ?

उद्धत—गंदुमी, सुनहरी या सफेद रंग वाले अंग में अन्तःकरण खास करके काला ही हो यह मैं नहीं मानता।

कनिष्टिका—तो फिर तेरे जैसा पक्षपाती संसार में कौन हो सकता है। अच्छा, तेने मेरी आवाज़ और स्पर्श से यदि मुझको पहिचाना तो अपने घातकी शब्दों के लिये तुझे क्या कहना है? "कनिष्टिका मर जाय तो चाहे मर जाने दो उसका स्थान तुमको मिलता है! यह क्या?"

उद्धत—ज़रा सावधान रहकर, शान्त होकर सुनो-जिस समय मैंने जाना कि रबड़ के कोमल आच्छादन से तुम मुझे छुड़ाने का साहस कर बैठी हो उसी क्षण समय का उपयोग लेते हुए मैंने अपना भी मानो वेष बदला और तुम्हारे इस क्रूर साहस के लिये तुमको ऐसा क्रूर अनुपयुक्त बदला मुझे देना पड़ा। क्षमा करना अब तुमको मालूम पड़ा होगा कि यह उद्धतलाल क्यों ऐसा बोल गया। तुम अपनी निर्जीव पराक्रमी घटना में ऐसे लीन प्रतीत हुए कि अनेक दिवस तक परिश्रम कर तुम्हारी सम्मति प्राप्त करने वाला एक सच्चा सुधारक, ग्रेजुएट, थोड़ी देर में ही अपना सच्चा स्नेह क्या इस तरह 'ट्रान्सफर' कर सकता है?

कनिष्टिका बड़ी गम्भीरता से घड़ी भर तक नीचे देखती रही।

उद्धत—क्यों? मेरे कहने का तात्पर्य ठीक ठीक समझ में आता है ना?

कनिष्टिका—अच्छा, परन्तु तब अपनी स्वाभाविक बोली मैंने बदली और जहां तक होसका सुधार-सुधार कर शब्दों का प्रयोग किया उसपर भी तुमने मुझे कनिष्टिका ही जाना?

उद्धत—हृदयस्थल पर अंकित कनिष्टिका, मन-प्रदेश में निरन्तर भ्रमण करने वाली कनिष्टिका-इसका शब्द और स्पर्श से प्रत्यक्ष अनुभव कराया, फिर एक मेरे जैसा ग्रेजुएट भूल सकता है?

कनिष्टिका—क्या तेरा नाम ग्रेजुएट है ? सारे दिन बस ग्रेजुएटपने का ही अलाप ! सच पूछे तो तेरा नाम उद्धतलाल है वह भी मुझे तो अच्छा नहीं लगता है।

उद्धत—तो फिर क्या रखना चाहिये था ?

कनिष्टिका—मेरे विचार में तो पागल-मवाली यही तेरा नाम अधिक ठीक बैठता !

उद्धत—नाम में क्या है ? उद्धत भी मेरा नाम असली कहां है ? तुम जो भी नाम रखो वही मुझे स्वीकार है !

कनिष्टिका—वह तो ठीक परन्तु जो मैं कहती हूं वह स्वीकार है ? विवाह में मुझे क्या भेंट देने का विचार है ?

उद्धत—देखो, सर्कस वाला हमारे पैसे दिये और चला गया। अन्य एक दो जगह पैसे मांगे परन्तु कोई देता नहीं। कारण में कनिष्टिका ही अड़ती है अन्यथा मुझ ग्रेजुएट को तो चाहे जो देदें। अच्छा, अब एक ही उपाय है वह यह कि मेरी माताजी के पास कुछ रकम है वह लेने जाना मुझे ठीक नहीं मालूम होता परन्तु तुझे कागज़ लिख दूंगा।

इस समय महादेव पंत पांच-सात मित्रों को लेकर इसी स्थान पर घूमने आये। कनिष्टिका का ईसाई हाऊस हास्टेल में भोजन का समय होगया था अतः उसे जाना पड़ा और उद्धत एक भोजनालय में गया, महादेव पन्त के अनुयायियों में से एक एक दोनों के पीछे गुप्त रीति से गया।

परिच्छेद १७ वां

तपस्विनी भद्रबाला की स्नेह-व्यथा

महात्मा विष्णुप्रसादजी के अनन्य भक्त पातञ्जलि के आश्रय में मनहर के ज्योतिपुरे की ओर चले जाने के पश्चात् उसके वापिस आने की एकटक राह देखने वाली तपस्विनी भद्रबाला को तो मानो हम भूल ही गये हैं। मनहर को गोली लगी और वह भी विष्णुप्रसादजी के साथ चला गया, इस समाचार ने आश्रम में मृत्यु का सा भय उत्पन्न कर दिया है !

अहा ! वह उपवन ! उसके अलौकिक वृक्षों की घटा जैसी की तैसी होते हुए भी, उसके पुष्पों की पराग जैसी की तैसी होते हुए भी, उसमें वृक्षों पर माला बनाये हुए सुन्दर पक्षियों की कर्णप्रिय बोलियां वे की वे ही होते हुए भी, भद्रबाला के तप से कृश हुए देह का वे सभी मानो आज अनुकरण कर रहे हैं ! उन सब की आत्मायें मानों उड़गई हैं ! न उसमें है अब वह सुन्दरता, न वह मधुरता ! न वह आकर्षण शक्ति ! वह की वही भूमि ! स्वर्ग भूमि का किसी काल का नमूना ! आज एक दम शुष्क, नीरस, निस्तेज अनेक विधि मानो रुदन कर रहा है !

और वे दोनों सहचारिणियां ! सुमति उर्फ लम्ब जिह्वा और धीमती ! दीन मुख से, निःशब्द, पालतू हिरणियों की भांति मनुष्य देह होते हुए भी अधमता धारण कर तपस्विनी भद्रबाला की दिनचर्या में, उसके नित्य कर्मों में-उसकी पूजन विधि में सहायता कर रही हैं ! केवल चुप चाप वे उसके सामने हृदय में रुदन करती हुई मानो बैठी देखने में आती हैं। भार रूप लावण्य का तिरस्कार करते हुए भी

मुख पर, हृदय की वास्तविक भावनाओं पर भद्रबाला के आश्वासन के लिये एक प्रकार का आच्छादन कर दिखाने का पाठ सीखी हुई है! अन्तःकरण में लावण्य, विद्वता, दृढ़ता, विवेक, इन सबके मिश्रण की एक अनुपम आकृति संसार को भेंट करते हुए भी उसकी असार्थकता-शून्यता का विचार ब्रह्मा ने किया ही नहीं प्रतीत होता, इस पर कुछ मिथ्या हास्य करती हुई दिखाई देती है। पूर्व के अनेक जन्मों के गहरे सम्बन्ध का ध्यान कराती, भद्रबाला पर, मनहर का प्रयाण-उसको गुरुजी से भेंट करते समय गोली लगना, तत्पश्चात् गुरुजी के साथ उसका चल देना, तथा बाद के कुछ समाचार न मिलना, इस विपत्ति में अपना सब दुःख भूल कर प्रातःकाल से सायंकाल की ईश्वराधना में सारे कार्य, भीतर की वास्तविक निस्तेजता पर आच्छादन कर, हुए ही जाते हैं। उनके गुरु महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। ७२.

और भद्रबाला! हृदय की दृढ़ता का अलौकिक उदाहरण! मृत्युलोक पर मनुष्य के सारे सुख-दुःख अपने-अपने कर्मानुसार आ मिलते हैं, इस सिद्धान्त में पूर्ण श्रद्धा रखते हुए आपत्ति को न गिनते हुए, नहीं जनाते हुए, अपने पूजन-अर्चन का कार्य मानो किये ही जाती है। उसके हृदय का पार कोई विदुषी जो मिलने आती वही न जान पाती तो सखियाँ या परिजन तो कहाँ से जान पाते? उपवन के पास, 'कपास से कपड़ा' नामक, भद्रबाला की तरंगों ने उपस्थित कर बसाये हुए छोटे गाम में से यदि कोई वृद्ध परिजन उसके हृदय का दुःख जानने, कुछ उपाय सुझाने, दिलासा देने आने का साहस करता उसको उसके बदले में उपकार मानने के बजाय धैर्य रखने, ईश्वर में श्रद्धा रखने, निरन्तर ईश्वर की भक्ति में ही रहने का पाठ मिलता। विधिपूर्वक अभी विवाह न होते हुए भी-आश्रम के मनहर के वार्तालाप से, हृदय विवाह से पूर्ण है-स्नेहपात्र उभरा गया है-दिव्य स्नेह ने

दूरी का सदा पराजय किया है, इस विचार से लिये हुए असिधारा समान कौमार्यव्रत की वार्ता आस-पास के ग्रामों में फैलने से धर्म जिज्ञासु युवतियाँ आकर्षित हो जातीं; जिनके कुतूहल की भद्रबाला उत्तम रीति से सान्त्वना कर सकती । अनेक जन्मों के तप से उत्पन्न धैर्य ने भगवान् कुसुमधन्वा के शरों की तीक्ष्णता निरन्तर वापिस होने वाले प्रहारों के कारण घिस जाने से, सामान्य पुष्प स्पर्श समान-निर्दोष कर देने से, भगवान् मकरध्वज के प्रति कुछ द्वेष से कुछ विजय प्राप्ति से उत्पन्न हुए हास्य से देखने के लिये अपना मन लगाने के कारण युवतियों को हृदय की कठोरता का उत्तम पाठ उसके चारित्र्य से देखने को मिलता ! मानव देह में जो कुछ आकर्षक है वह मांस, रुधिर, स्नायु, मेदा, मज्जा, विष्टा, मूत्र, हड्डियाँ और चमड़े के साथ मढ़कर बनाया उसका थैला है, उसमें इन भागों के एकीकरण का आकर्षकपना तो केवल भ्रम से दिखाई देता है। वस्तुतः उन भागों का सम्मिश्रण दूर कर पृथक्करण घृणा उत्पन्न करता है, अतएव प्रारब्धानुसार कहे जाने वाले सांसारिक सुखों से विराम पाने की संज्ञा होते हुए सन्तुष्ट रहने में योग्यता है, इस सिद्धान्त को लेकर भद्रबाला ने स्वयं मनहर का पुनरागमन असम्भवित हो तो निरन्तर कौमार्य व्रत धारण कर स्त्री जाति की उन्नति में अपने परिश्रम का यत्किंचन भाग देने का दृढ़ प्रण लिया है जो उचित है यह बात मिलने आने वाली के चित्त में बैठाती। युवतियां सभी एक ही विचार की कहां से हों ? सब अपने अपने मतानुसार आज्ञा लेकर प्रथम से क्षमा माँग कर मनमाने प्रश्न करतीं और सबकी शंकाओं का समाधान भद्रबाला करती।

प्रातः काल के स्नान, पूजन, यजन, स्तुति हुए पश्चात् मध्याह्न पूर्व फलाहार करती, केवल जीवन रह सके उतने फलों का ही दिवस

भर में दो बार वह उपयोग करती । दोपहर के समय आश्रम में जो छोटी स्त्रीशाला प्रारम्भ की थी उसमें एक-दो घण्टे स्वयं धार्मिक शिक्षा देती और बाद में कितनी ही स्त्रियों का शंका-समाधान करती। सायंकाल औद्योगिक प्रवृत्तियों के लिये रखा था जिसमें खेती, बिनावट के कारखाने छोटे-छोटे गृहोद्योगों के शिक्षण के लिये उत्तम प्रकार से योजना कर वह अपने समय का सदुपयोग करती तथा उसके साथ जीवन की सफलता का संतोष अनुभव करती। सायंकाल को पुनः भजन और प्रार्थना होती। दिन भर के परिश्रम से सुमति तथा श्रीमती दस बजे के लगभग उस शिवालय के चौक में ही व्याघ्र चर्म या टाट डालकर निद्रा के वश होजाती, इस बीच १० से १२ बजे तक भद्रबाला "आराधना" में अपना समय निकालती।

आराधना का समय आता तो भद्रबाला उसको मन से एक महान् आश्वासन रूप चौघड़िया आया हुआ अनुभव करती। उस समय स्नानादि से शुद्ध होकर मन में महेश्वर का स्वरूप स्थित कर हट जाय तो पुनः ध्यान में लाकर, वारंवार वैसा करती एवं एकाग्रता प्राप्त करते हुए अखण्ड, अस्खलित ब्रह्म में निमग्न होकर रग रग में रोमांच उत्पन्न करने वाले अत्यन्त अवर्णनीय आनन्द में बाह्य समस्त उपाधियों से मुक्त होकर, निभ सके जितने समय तक रहने का उसका कार्य-क्रम था। किन्तु मनहर के इस आश्रम में आये पश्चात् इस भक्ति में अनायास विक्षेप पड़ गया था और एक प्रकार की द्विधा भक्ति मानो उत्पन्न हो गई थी। मनहर की आकृति मन प्रदेश में पल-पल में डोला करती, अतः उसको वह शंकर के स्वरूप में फेर देने का परिश्रम करती। ऐसा करते हुए भी उस स्वरूप का पुनः एक दम मनहर में रूपान्तर हो जाता! अतः पुनः 'यज्जाग्रतो दूर मुदैति' इत्यादि मंत्रोच्चार कर मनको पूर्व स्थिति से तटस्थ करने का प्रयत्न करती। परन्तु कुछ ही

घण्टों के मनहर के परिचय से पूर्व के युग युग के परिचय का भान कराया होने से उस समय के दृश्य उसके मन पर अधिकार कर बैठे थे, अतः संसार की समझ के बाहर आराधना के समय भद्रबाला वास्तविक रीत्या भूत काल में घटित इन दृश्यों में ही निवास कर रही थी। मनहर का पत्र तो कहाँ से आता, परन्तु उसके जीवन के समाचार भी दुर्लभ हो जाने से भद्रबाला अन्तःकरण में खेद अनुभव करती। परन्तु वह खेद उसके विचारों से ही उत्पन्न होता था यह वह जानती थी और स्वयं ही अपने अपूर्व मनोबल से उसका समाधान करती। आराधना के समय में सुमति और धीमती कुछ काल के अभ्यास के परिणाम स्वरूप सुषुम्णा द्वारा मधुर-मधुर नासिका चला रही होतीं तो भद्रबाला मनहर सम्बन्धी स्वप्न प्रदेश में यथेच्छ निमग्न हो जाती। प्रसंगानुवश अपने व्यवहार पर सिंहावलोकन करने से इस प्रकार की भावनाओं पर क्रोध उत्पन्न होता। अतः इसका कारण ढूंढ़ने वह उग्र भक्ति पूर्वक अन्तःकरण की गहराई में उतरती। इस प्रकार बहुत समय तक रहा तो इसको कुछ शंका होने लगी कि मनहर का और उसका समागम मृत्युलोक पर ही अभी सम्भवित है। जीवलोक स्थित आत्मा को तो कुछ प्रत्युत्तर देना चाहिये ऐसा प्रतीत हुआ! मनोदशा ने भी इस दिशा में मत देना उचित समझा। सहचरियाँ उसकी इस स्थिति से अज्ञात थीं, किन्तु भद्रबाला ने आराधना का सारा समय पूर्ण मनोबल पूर्वक 'मनहर कहाँ होगा?' 'क्या करता होगा?' इत्यादि जानने के समर्थ होने में व्यतीत किया। हठयोग (?) का एक प्रकार का अश्रुत पूर्व प्रयोग-मानो प्रारम्भ किया। आराधना के दो घण्टों का एक भी पल ऐसा न जाता कि जिसमें वह इस अद्भुत ध्यान गंगा में स्नान न कर रही हो! दूर के वनों में, पर्वतों की कन्दराओं में, प्राचीन देवालयों में इस प्रकार अनेक स्थलों में इस तपस्विनी के आन्दोलनों ने गति कर डाली।

इस प्रकार कितने ही दिवसों के प्रयोग के पश्चात् आराधना के परिणाम से वह निद्रावश होने लगी। ऐसा पहले न होता, अतः भद्रबाला अपनी श्रद्धा पूर्वक भक्ति के इस प्रयोग का इसको एक परिणाम समझ कर उससे उत्तेजित हुई। इस निद्रावस्था में एक बार, उसने मनहर को एक तहखाने में एक पुस्तक के पृष्ठ में मग्न हुआ (स्वप्न में) देखा ! अद्भुत दृश्य !! किन्तु वह कुछ विपल तक का ही था, तथापि भद्रबाला उससे कुछ सन्तोष अनुभव करने लगी। उस दृश्य से जाग्रत होने के बाद ध्यान में तटस्थ रखने का प्रयत्न करने लगी। दिवस के समय हृदय पट पर से कागज़ पर उसका चित्र बनाने लगी। दूसरे दिन वह का वही दृश्य उसी समय स्वप्न में उपस्थित हुआ, परन्तु वह भी अल्पायुषी ! भाग्य से दो पल रहा होगा। "जय ! जय ! जय !" जोर से करती वह उठ बैठी। पास में निद्रावशी भूत धीमती एक दम खड़ी हो गई। "क्या हुआ ? क्या हुआ ?" होने लगा, किन्तु भद्रबाला ने उनके चित्तों का अनेक प्रकार से समाधान कर दिया। दूसरे दिन सुमति और धीमती को शंका होने लगी कि भद्रबाला को स्नेह व्यथा असह्य हो गई प्रतीत होती है। आराधना के समय में कुछ अंशों में वह व्यथित रहती है और सम्भवतः उसको भ्रम हो जायगा या उसकी मानसिक स्थित में विशेष शोक हो जायगा। भद्रबाला को उन्होंने स्थान परिवर्तन करने या वैद्य की सम्मति लेने की प्रार्थना की, परन्तु उसने उसको तुच्छ कर दिया एवं अपने मनोबल पर श्रद्धा रख कर रहने का उलटा उपदेश दिया। ऐसे में ही एक दिन श्रावण वदी १४ की रात्रि आई, वही रात्रि जिस पवित्र शिवरात्रि के दिवस उनका प्रथम सम्मिलन हुआ था; भद्रबाला को आज की आराधना में इस रात्रि के दृश्य स्मृति में आये। अपनी दृढ़ भक्ति के प्रथम सिद्धि से बहुत दूर हैं इस विचार के अश्रु वेग रोक न सकी। शिवरात्रि के समय गंगा जल के अभिषेक के बदले निर्दोष—पवित्र कुमारी का अश्रु-

प्रवाह शंकर पर होने लगा, किन्तु स्थिर बुद्धि वाली भद्रबाला उसी क्षण सावधान होकर अविवेक पूर्ण अपराध के लिये शंकर की क्षमा माँगती उठ बैठी। उसने क्या अद्भुत दृश्य देखा! शिवालय के मण्डप में सुमति और धीमती निद्रावश पड़ी थीं, उन दोनों के बीच में आरम्भ के पीठ पीछे ही मानो सीढ़ियों पर शंकर को नमस्कार करती मनहर की तेजोमय आकृति उसको स्पष्ट दिखाई दी, केवल मस्तक दिखाई दिया। भद्रबाला ने समझा कि यह निद्रा है और स्वप्न दीख रहा है; इसका निश्चय करने के लिये वह विचार में पड़ गई। जल का पात्र देखा, बिल्व पत्र देखे, पूजन की सारी सामिग्री अपने सामने देखी, स्वप्न ही नहीं है, यह निश्चय होने से वह खड़ी हो गई। मण्डप में पहुंची कि यह आकृति अन्तर्ध्यान! अद्भुत चमत्कार! श्रद्धा पूर्वक की गई प्रभु भक्ति निष्फल नहीं जाती, वह यही बात! इस सूत्र का स्मरण करते उसने सुमति तथा धीमती को हाथ हिला कर बैठा दिया, पश्चात् सीढ़ियों के नीचे आप स्वयं उतरी और सहचारियों को साथ आने को कहा। "क्या है? क्या था?" करती हुई दोनों उठीं। भद्रबाला तो कुछ दूरी तक दौड़ी भी अवश्य परन्तु किसी व्यक्ति के आने जाने का पद-शब्द नहीं सुनाई दिया, तथापि बहुत सन्तोष पूर्वक वापिस आकर वह अपने आसन पर बैठी।

"मैं भूलती तो नहीं हूं, मेरे नेत्र मुझे ठगते तो नहीं, मैंने उनका मुखारविन्द प्रत्यक्ष देखा! अदृश्य हो गया! वही तेजोमय आकृति।"

सुमति—प्रेम के पागल को ऐसे इच्छित दृश्य कदाचित आ जाते होंगे। इस में वास्तविकता हो तो यह दृश्य स्थिर क्यों नहीं रहता, यह तो 'मृग जल भूमि परिभ्रमण'!

भद्रबाला ने वह नहीं माना, किन्तु इस दृश्य में वास्तविकता हो वह तो स्थिर क्यों नहीं रहता, सुमति की यह शंका भी ठीक प्रतीत हुई।

उग्रतप के परिणाम स्वरूप शंकर ने दर्शन की इच्छा पूर्ण की यह मान लिया। सुमति और धीमती ने अनेक प्रकार से आश्वासन देकर मधुर स्वर में गायन गाया। जिसके बहुत देर बाद कहीं भद्रबाला निद्रा-वश हुई।

❀ परिच्छेद १८ वां ❀

एक अश्रुत पूर्व दृश्य।

प्रातःकाल सुमति और धीमती भद्रबाला की मानसिक स्थिति में रात्रि की घटना से परिवर्तन देख कर अनेक प्रश्न करने लगीं, अनेक उपाय बतलाने लगीं। इनके हृदय का भय नेत्र द्वारा प्रगट हुआ। भद्रबाला वह सब स्मृति पूर्वक देखा करती।

भद्रबाला के पिता पातञ्जलि बाल्यकाल में इस देवालय में हिमालय की ओर से एक वृद्ध योगी आया था उसके दर्शन करने भक्तिपुरे के समीप के अपने ग्राम से आये थे। पातञ्जलि की अवस्था उस समय आठ-दस वर्ष की होगी, किन्तु इस ब्राह्मण बालक की तेजोमय आकृति से ये योगिराज प्रसन्न हुए। इसके पूर्व के उच्च संस्कार, यह योगी पुस्तक की भाँति मानो बाँचने लगा, योगिराज की प्रीति देख कर बालक पातञ्जलि भी यहाँ समय-समय पर आने लगा और योगी महाराज के समय-समय पर दर्शन को आने वाले लोगों को दिये जाने वाले उपदेश में रस पूर्वक भाग लेने लगा। योगिराज के पास एक छोटा सा पुस्तकालय था, जिसकी व्यवस्था रखने का उसको कई बार अधिकार प्राप्त हुआ। ऐसे में ही इधर के भाग में भयंकर अकाल पड़ा और तत्पश्चात्

महामारी हुई, जिसमें उसके माता पिता चल बसे, पातञ्जलि जोर से रोने लगा। गुरूजी उसको आश्वासन देने लगे, किन्तु बालक घबराने लगा। पूछ-ताछ करने पर योगिराज को प्रतीत हुआ कि माता पिता के नैसर्गिक स्नेह से यह बालक इतना रुदन करता है, तदुपरान्त उसके घबराने का कारण यह है कि इधर के भाग में श्राद्ध क्रिया कराने के उपरान्त ज्ञाति की अमुक संख्या को एक बन्धन रूप से दो तीन दिन जिमाने की प्रथा पूरी तौर से घर कर गई है। पातञ्जलि की गुरूजी में अपूर्व श्रद्धा थी और उनके थोड़े ही परिचय से सायंकाल को इनकी कथा के भक्त श्रोताजनों में भी भविष्य में यह एक विद्वान प्रसिद्ध होगा, इस प्रकार बातें होतीं। यहाँ तक कि गुरूजी की इच्छा हो तो इस दस-बारह वर्ष के बालक को कन्या देने के लिये कितने ही तत्पर हो गये थे।

माता पिता की मृत्यु को आठ दिन हुए उस समय पातञ्जलि को अधिक व्यग्रता देखने में प्रतीत हुई। एक रात्रि को गुरूजी उसको एक कोठे में ले गये और आश्चर्य कि उसके जीवन भर के लायक उसको द्रव्य दिखलाया। पातञ्जलि प्रसन्न हुआ, किन्तु गुरूजी ने तत्काल कहना प्रारम्भ किया कि 'सुन बच्चा ! यह द्रव्य अपना समझना, किन्तु ज्ञाति की संख्याबन्ध व्यक्तियों के एक दिवस के ही भोजन कराने में व्यय कर देगा, तो उसके विरुद्ध मेरा क्रोध होगा, मैं जानता हूं कि मेरी आज्ञा भंग का भय तुझ में सब से अधिक है। सुन ! माता-पिता के लिये श्राद्धादि क्रिया विधि पूर्वक कर उनके प्रेत रूप को संतुष्ट करना पुत्र का कर्तव्य है, किन्तु श्रम पूर्वक प्राप्त या इस प्रकार अनायास प्राप्त होने वाले द्रव्य को बड़े बड़े भोजनों में व्यय कर देने से उस ज्ञाति की सन्तानों के जीवन भर भोजन प्राप्त करने तथा उनके ज्ञान की वृद्धि के लिये व्यय करने में विशेष महत्व है। बोल ! तू मेरी आज्ञा उठाने को तत्पर है ?

पातञ्जलि—मुझे शिरोधार्य है गुरुदेव ! श्राद्धादि क्रिया और यत्किंचित् भोजन उपरान्त मैं कुछ करना नहीं चाहता था, किन्तु उतना द्रव्य भी मेरे पास नहीं था, आपके उपदेश से मैंने यही सार ग्रहण किया है कि मृत सम्बन्धियों के लिये अत्यधिक भोजनों में द्रव्य व्यय करने में एक प्रकार की आत्म-हत्या होती है और पितृ उससे सन्तुष्ट ही नहीं किन्तु उलटे असन्तुष्ट होने चाहिये।

गुरु—'होने चाहिये' ऐसा नहीं—'होते हैं'—यह कहो। अच्छा, हमको अब विशेष बात करने का अवकाश नहीं है। इस सारे द्रव्य का तू ही अधिकारी है। मानव-समाज पर उपकार करने में इसका सद्व्यय करना और इस आश्रम को अच्छी स्थिति पर लाने में मैंने जो परिश्रम किया है, उसके अधिष्ठाता होकर रहना। प्रारब्ध वश अमुक काल तक तू आनन्द से रहेगा। एकाध पुण्यात्मा यहां जन्म लेगा जो इस आश्रम को इस उपवन को विशेष उपयोगी बनाकर इसकी सार्थकता में वृद्धि करेगा।

पातञ्जलि—महाराज ! मैं आपके वचनों से उलटा विचार में पड़ता हूं। यहाँ कौन जन्म लेगा ? कब लेगा ? मैं तो अभी बालक हूं।

गुरुजी—अपने श्रोताओं में से ही एक तुझे विवाहित करेगा। ये सारे संयोग इसके साथ स्वयं बनेंगे। अब तू जा। प्रसन्न रह।

पातञ्जलि इसमें से आवश्यक द्रव्य लेकर अपने ग्राम को गया। चार दिवस बाद वापिस आने पर उसने गुरुजी को वहाँ न देखा ! श्रोता गणों ने दो परिजन रक्खे थे वेही केवल देखने में आये। उन्होंने गुरुजी का वृत्तान्त कहा कि आवश्यक वस्त्र लेकर पुस्तक इत्यादि सब यहीं छोड़कर वे तो चले गये। तत्पश्चात् इनकी भविष्य वाणी के

I have heard that O.K was Gulab... Mr. Yossuf Bakhu

अनुसार पातंजलि को एक विद्वान ब्राह्मण ने कन्या दी। आश्रम का वह अधिष्ठाता हुआ। द्रव्य भी सम्हाल लिया। गुरुजी के स्थान पर बैठ कर उसने उपदेश देना प्रारम्भ किया। उसकी विद्वत्ता की कीर्ति आसपास फैल गई और विष्णुप्रसादजी से उसका परिचय हुआ। पातञ्जलि के साथ जिस ब्राह्मण-कन्या का विवाह हुआ था और जिसके परिणाम स्वरूप एक कन्या हुई उसका नाम भद्रबाला रक्खा। भद्रबाला की माता युवावस्था में ही मर गई। पातञ्जलि ने समझा कि "एक पुण्यात्मा जन्म लेगा" इस गुरुवाक्य के अनुसार भद्रबाला का जन्म यहां हुआ होना चाहिये। उसने भद्रबाला की शिक्षा के लिये माता के समान ही भावना से सब सुव्यवस्था कर दी। भक्तिपुरे में धर्मलक्ष्मी देवी द्वारा स्थापित संस्कृत पाठशाला में भद्रबाला ने संस्कृत का उत्तम ज्ञान प्राप्त किया। धर्म लक्ष्मी अपनी पाठशाला से भद्रबाला, निर्मला, और सरयू, तीन रत्न-भविष्य में इस ओर की स्त्रियों की उन्नति में जीवन बिताने वाली हैं यह आशा रखरही थी अतः उनके जीवन सफल और सुखी बनाने के लिये सहायता देने की बात उसके ध्यान पर लाना काफी था। अपने व्यवसाय से निवृत्ति पाकर इस आश्रम में आने के लिये वह भाग्य से ही समय निकाल सकती थी; किन्तु भद्रबाला को जब कभी कुछ आपत्ति प्रतीत होती तभी धर्मलक्ष्मी के परोपकारी हृदय में सहायता का झरना देखने में आता।

भद्रबाला जिस रात्रि को आराधना के समय 'जय जय' 'जय जय' जोर से चिल्लाकर उठ बैठी थी और जो घटना हुई थी उसके बाद 'भद्रबाला के स्वास्थ्य प्राप्ति होने का' उत्सव मनाया गया। प्रसाद देने के लिये उसकी आज्ञा लेकर सुमति उर्फ लम्बजिह्वा एक रथ तैयार करा कर देवी धर्मलक्ष्मी से मिलने भक्तिपुरा जो भृगुपुर के पास लगभग ७ मील की दूरी पर था गई।

धर्मलक्ष्मी ने रथ से उतर कर दीर्घ उच्छ्वास लेती, बार बार प्रणाम करती हुई सुमति से अपने पास आते ही आवेश सन्मान-कुतूहल मिश्रित अपूर्व स्नेहकी भावना से भद्रबाला की कुशलता पूछी। भद्रबालाके आश्रम से सुमति को रथ लेकर आई हुई जानते ही हांपती हुई निर्मला दौड़ी आई और भद्रबाला का वृतान्त जानने को अधीर हुई। उसके कुतूहल की सीमा दिखाई न दी। वह सुमति से एक के बाद एक प्रश्न करने लगी। सुमति से बोला नहीं गया, गद्‌गद् कण्ठ से वह निरुत्तर होगई, किन्तु उसके ऐसे व्यवहार को मानो जानते हुए धर्मलक्ष्मी कुछ उसकी भावना समझ गई। पुत्री समान प्रेम से उसे पास बैठाकर उसके पास जल का पात्र रखवाया। उसके सिर पर अत्यन्त स्नेह पूर्वक हाथ फेर कर पुनः वृतान्त पूछा। प्रेम पूर्वक सत्य युग सदृश स्वागत से सुमति के कण्ठ से बात निकलवाई और शनैः शनैः उसने भी अपने स्वभाव के अनुसार भद्रबाला की मानसिक स्थिति पर विवेचन करना प्रारम्भ किया।

सुमति—आराधना में ये स्वप्न क्यों ? "जय जय जय" ऐसे जोर से भद्रबाला कभी नहीं चिल्लाई थी। कभी हँस जाती है, कभी अश्रुपात करती है, किन्तु ये सब मानो संसार की दृष्टि से गुप्त। हम सखियों सदृश परिजनों से भी हृदय की बात कहने में भय खाती है। स्नेही जनों की अनेक कथायें सुनी हैं; स्नेह व्यथा की अनेकों कथायें उन्होंने ही हमसे कही हैं। वियोग तो पहले देवी और देवताओं को भी हुआ था, किन्तु जो दैवी स्नेह दूरी और समय तक का पराजय कर सकता है यह यदि सत्य है तो इस सन्निपात सदृश हृदय के अन्दर जगत से अज्ञात उपस्थित अशान्ति को अवकाश कहाँ है ? भीतर ही प्रज्वलित इस होमाग्नि में उनकी सदा की शान्ति, सदा का आनन्द, उनकी उद्यान स्थानों के प्रति देखने में आती

जाग्रति–ये सब विनष्ट होगये देखने में आते हैं! न है उनको खान पान–फलाहार का भान न पूजन भजन में पूर्ववत् उनका लक्ष! केवल कैवल्य मोक्ष सदृश मानो एक ही ध्येय में इनका लक्ष स्थित हुआ देखते हैं। कहाँ सुकुमार पुष्पराशि सदृश उनकी बाल युवा और कहां बाण शैया सदृश धारण किया यह विषम कठिन व्रत! पंच महाभूत के सब मनुष्य एक समान दीखने वाले उनके देह में विचित्रता-दिव्यता–कठिनता आने का कुछ स्पष्टीकरण या समाधान करना कठिन प्रतीत होता है। निश्चय! मेरी लघुता आपको मालूम होगी किन्तु ईश्वर में ऐसी उच्च भक्ति से भी प्रसन्न न होने की कठिनता कहाँ से आई होगी। कभी-कभी जब वह निःश्वास छोड़ती है, तब मानो उसके लिये ब्रह्माण्ड भी छोटा जान पड़ता है। इनके दुःख से आश्रम का, उपवन का सारा आनन्द मानो अदृश्य हो गया है।

धर्मलक्ष्मी––अरे मेरी लघुजिह्वा सुमति! धन्य है तेरी भद्रबाला के प्रति भक्ति को! मृत्युलोक पर शरीर के साथ ही परिताप होता है यह तू नहीं जानती? विष्णुप्रसादजी के साथ ही मनहर को गोली लगी यह वृत्तान्त तो निर्मला देवी के पिता ज्वालाप्रसादजी ने हमको एक बालक की तरह आर्त स्वर से रुदन करते हुए, अपने जर्जरीभूत देह को होने वाले क्लेश को न मानते हुए कह सुनाया था। उस प्रसंग से ही उनकी व्याधि बढ़ गई और उनका देहान्त हुआ। पातंजलि ने भद्रबाला का मनहर के साथ विवाह करने का निर्णय किया था– और विधाता ने भी यही निर्माण किया हो तो अच्छा! मनहर कोई पागल युवक नहीं है।

विष्णुप्रसादजी की रक्षा में उसका बालबांका नहीं हो सकता। बीच में समय जाता है उससे क्या? धैर्य का पाठ सीखने में मेरी भद्रबाला क्या निष्फल हो रही है? मेरे प्राण से अधिक यह देख मेरी निर्मला देवी! लक्ष्मीप्रसाद अमेरिका में है। इसको भी अमेरिका जाना था किन्तु ज्ञाति में समाधान हो गया और उसके बाद लक्ष्मीप्रसाद कुछ समय में वापिस आने वाला है। इसकी बहिन गंगा विधवा हो गई है जो नाम मात्र की सधवा थी। उसको विधवाश्रम में रक्खा है। दो मास से लक्ष्मीप्रसाद का पत्र नहीं आया है। कुंजविहारी और मधुसूदन को बाबाजी पकड़ ले गये हैं। मूर्छावश स्थिति में लड़कों के पिता को पड़े हुए देखते हैं। सब ओर प्रयत्न कर चुकने पर भी आशा में जीवन धारण कर रहे हैं। इस प्रकार संसार की दृष्टि में सब प्रकार से सुखी माने जाने वाले हम लोगों की देख, यह स्थिति! धैर्य रखना सीखो! निरन्तर प्रयत्नों में रहो! रोने से दुःख कम नहीं होता! ईश्वर पर दृढ़ भक्ति रख कर प्रयत्नशील रहने से वह कम नहीं होता तो भी उसका असर अवश्य कम होता है। मेरी गुणी निर्मला का ही उदाहरण लो। भद्रबाला की ही वह सहचरी है परन्तु दुःख कम करने के उसके प्रयत्न हमको मुग्ध कर देते हैं। हमारी अवस्था-हमारा अनुभव-हमारी शिक्षा इसके उत्तम चारित्र्यवान जीवन के आगे आने वाले दुःख के लिये सम्मति की, उपाय की भिक्षा माँग रहे हैं।

सुमति—एकाध पखवाड़े के लिये निर्मला देवी हमारा आश्रम पवित्र नहीं कर सकतीं?

धर्मलक्ष्मी—इसको एक क्षण भर भी अपने नेत्रों से बाहर मैंने रक्खा नहीं है। मेरे कुटम्ब की ये प्राण है। तथापि भद्रबाला की शान्ति के लिये मैं क्या नहीं कर सकती ? अच्छा ! बेटा, निर्मला ! आवश्यक परिजनों के साथ एकाध सप्ताह तुम वहाँ व्यतीत करो ! अत्यन्त दुःख में मुझे तुम्हारी अनुपस्थिती खटकेगी परन्तु तुम्हारी सखी भद्रबाला को सम्भवतः इससे सान्त्वना हो !

तुरन्त ही छै स्त्री परिजनों और ४ मुनीमों को साथ जाने की आज्ञा दी गई। साहित्य सहायक को बुलाया गया। अखबारों में इस आशय की विज्ञप्ति देने की आज्ञा हुई कि "पातञ्जलि के आश्रम में अमुक दिवस विद्वानों की अमुक विषय पर चर्चा होगी।" कितने ही डेरे, तम्बू, चिक इत्यादि का सामान, मानो एकाध छावनी डालनी हो, साथ रखने की योजना हुई। आज्ञा के प्रयोजन में जाने का किसी का अधिकार नहीं था। जो आज्ञा दी जाय वह सिर आँखे रखकर करने की ही परिजनों और सहायकों की टेव डाली गई थी। क़रीब दो घण्टे में निर्मला तैयार हुई और मोटर तैयार करने की आज्ञा हुई। तत्पश्चात् एक घण्टे में तो निर्मला और सुमति को लेकर पातञ्जलि के आश्रम में भों-भों करती मोटर आ खड़ी हुई। सायंकाल के चार बजने का समय था। पचास के लग-भग एकत्रित स्त्रियाँ जो श्रीमती पुस्तक पढ़ रहीं थीं, सुन रहीं थी। स्फटिक की मूर्ति सदृश भद्रबाला पास ही के एक आसन पर बैठी थी। मोटर ने सब का ध्यान खेंचा। भद्रबाला मानो उड़कर बहुत दिनों में निर्मला से मिली। स्त्री-शाला के स्वागत मण्डल में स्वतः रूपान्तर होगया।

लक्ष्मीप्रसाद का अमेरिका जितनी दूर केवल जाति की विडम्बना के कारण जाना, वहाँ उद्योग के साधन भारत में लाने के प्रयत्न में

रुक जाना तथा इस कारण से निर्मला का भारत में रुक जाना यह प्रसिद्ध बात होगई थी; स्त्रियों की उन्नति के लिये प्रयत्नशील स्त्रियों के चिन्ता का विषय होगई थी; ऐसी परिस्थिति में यहाँ आने का साहस सुमति ने किस प्रकार किया यह देख कर स्त्री मण्डल बड़ा आश्चर्यान्वित होगया। किन्तु 'लम्बजिह्वा' सुमति के लिये कुछ अशक्य नहीं है इस प्रकार बातें होने लगीं। भद्रबाला की मुखाकृति पर केवल निर्मला की उपस्थिति से ही स्वतः हिम्मत आगई। अविच्छिन्न शान्ति फैल गई। थोड़े ही समय पूर्व की चिन्ता की घड़ियाँ मानो एकाएक पर्व समान होगईं।

निर्मला के परिजन तो दी गई आज्ञा का पालन करने में मानों आश्रम के ही मनुष्य हों कार्य-मग्न होगये। डेरों के लिये स्थान निश्चित किया। दो दिन में तैयार होसके ऐसा एक मण्डप तैयार करने की योजना की तथा उसके समीप स्त्रियों के लिये एक चौरस छोटा सा अलग मण्डप खड़ा करना निश्चय किया। पुरुषों के लिये अनुमानतः चारसौ मनुष्य बैठ सकें जितना चौकोर मण्डप था तथा उसके एक तरफ लगा हुआ १५०—२०० स्त्रियों के बैठने योग्य दूसरा मण्डप था। स्त्रियों के मण्डप का चिक के पर्दे से सामना ढक दिया गया था जिससे किसी स्त्री को पुरुषों की सभा में जाने में संकोच न हो और प्रत्येक स्त्री पुरुषों की सभा में होने वाला सारा काम काज अच्छी तरह देख और सुन सके। साथ में लाये हुए हजार दीपकों का प्रकाश देने वाले लैम्प लगाने का प्रबन्ध किया।

करीब दो ढाई घण्टे का समय दोनों सखियों ने अपूर्व आनन्द के साथ वार्तालाप में, हृदय के उद्गार निकालने में व्यतीत किया। बाहर आते ही भद्रबाला ने क्या देखा ? परिजनों के कोलाहल से, खड़े किये गये डेरे तम्बुओं से, मण्डप की तैयारी करने वाले कारीगरों

से, 'कपास से कपड़ा' ग्राम के कुतूहल पूर्वक सहायता करने वाले सब मनुष्यों से, अत्यन्त प्रकाशवान दीपकों से, आश्रम का रूपान्तर होगया था। भद्रबाला की मानसिक स्थिति कुछ उद्योगी प्रवृत्ति में रखने के लिये ही निर्मला देवी ने इस सब प्रयोग के लिये रुपये पैसे की छूट रक्खी थी। एक सती की मानसिक व्यथा के उपचार के लिये भाग्य से ही संसार में किसी ने द्रव्य का इस प्रकार सुव्यय किया होगा।

निर्मला, भद्रबाला और सरयू को भारतवर्ष के उद्धार के लिये, जिस उत्तम धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता सर्वानुमत से स्वीकृत हो सके, जिस उत्तमोत्तम शिक्षा से आर्य संसार का तिमिर नाश कर पुनः आर्योद्धार के पाये डालने वाली महिलायें हों, वह शिक्षा मिली थी। अतः दुर्भाग्यवश कदाचित मनहर के पुनः दर्शन भद्रबाला को अब न हों तो उसको कौनसा मार्ग ग्रहण करना इस विषय पर उन दोनों के वार्तालाप में किञ्चित् मतभेद नहीं हुआ। एक बार अमुक पति को हृदय में स्थान देने के पश्चात् एक आर्य स्त्री अन्य किसी पुरुष के स्नेह को हृदय में स्थान दे नहीं सकती। आर्य महिलाओं का यह धर्म आर्य स्त्रियाँ ही अच्छी तरह समझ सकती हैं। दूसरे लोगों के चित्त को यह बात नहीं उतर सकती, आर्य संसार की नीति ने मनुष्य के सामान्य धर्म क्षेत्र में जो उच्च स्थान लिया है वह अन्य प्रजाओं में किसी जगह देखने में नहीं आता। अपवाद रूप में तो अनेक स्त्रियाँ अन्य लोगों में भी हृदय के अधिकार का ठेका एक ही पुरुष का स्वीकार करने वाली होनी चाहिये; और आर्य स्त्रियों की भाँति ही आत्म भोग देने वाली होनी चाहिये किंतु कर्तव्य रूप के उदाहरणों को कम करते हुए, केवल पति-परायणता का धर्म स्वीकार कर, आर्य स्त्रियों को विशेषतः सन्नारियों

की देह में प्राण होते हुए भी पति के मृत देह के साथ चिता में भस्म होने की घटनायें, हिन्दू धर्म के गौरव में आनन्द मानने वाले को आर्य संसार की उच्चता का अभिमान रखने वाले को हर्ष से रोमांचित करता है।

निर्मला, भद्रबाला और सरयू ने सम्पूर्ण नीति की शिक्षा में सर्व प्रधान स्थिति प्राप्त की थी। देवी धर्मलक्ष्मी इन तीनों के नाम से अभिमान रखती थी; उसमें इन तीनों में निर्मला देवी तो उनकी पुत्रवधू हुई थी। अतः धर्मलक्ष्मी अपने को भाग्यशाली मानती, एवं निमला स्वयं इस कुटुम्ब से सम्बद्ध होने से अभिमान रखती थी। निर्मला ने भद्रबाला के हृदय की सूक्ष्म दृष्टि से परीक्षा की तथा मनहर का सम्बन्ध होना अशक्य हो जाय तो भद्रबाला द्वारा स्त्रियोन्नति के कार्य में जीवन अर्पण करने के सिद्धान्त के प्रति उसने सहानुभूति बतलाई।

मण्डप इत्यादि की योजना देखने को भद्रबाला और निर्मला रुकी थीं कि इतने में भक्तिपुर से डाक लेकर एक नौकर घोड़े पर आया। लक्ष्मीप्रसाद के पत्र के लिये सारी डाक निर्मला ने देख डाली किन्तु उसमें वह नहीं दीखा। अनेकों विद्वान इस चर्चा में भाग लेने आने वाले थे उनकी सम्मति के पत्र आते जाँय वैसे एक सूची बनाने के लिये साहित्य सहायक को दे दिये।

पत्रकारों को, उदीयमान ग्रन्थकारों को, विद्वानों एवं कवियों को उत्तेजन देने में निर्मला का हाथ छूटा था। स्वयं विदुषी होने से सांसारिक महत्वपूर्ण प्रश्नों में रस पूर्वक भाग लेती। किसी विषय पर उसकी वाक् धारा प्रवाहित होती उस समय सामान्य जनसमाज तो क्या किन्तु विद्वान भी चकित होते। सभा की उपस्थिति में उसके नाम की विज्ञप्ति होती तो जन समूह उस सभा में खिचा चला [illegible]।

स्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाली चर्चा में, उनके समूह में वह वांछित जादू का सा असर उत्पन्न कर सकती थी।

जो विद्वान् इस चर्चा में भाग लेने आने वाले थे, उनको आश्रम तक पहुंचा देने, उनके ठहरने का प्रबन्ध करने तथा उनके खान-पान की व्यवस्था की उत्तम योजना रक्खी गई थी। इतनी अधिक उदारता से उनके प्रबन्ध के लिये व्यय रक्खा गया था कि उस जगह एकत्र होने वाले विद्वानों के मुख से हर्ष के उद्‌गार ही निकले। चौथे दिनसे कितने ही लोग आने लगे, और सातवें दिन एकत्रित हुए विद्वानों तथा स्त्रियों की संख्या क्रमशः २५० और १५० को होगई। इनको निर्माण किये गये पृथक् पृथक् डेरों में उतारा गया। स्त्रियों को शिवालय के समीप के स्थान में उतारा गया। यह सब वृत्तान्त साहित्य मन्त्री ने आकर कह सुनाया।

आठवें दिन भोजन के पश्चात् मध्यान्ह को मण्डप में सब एकत्रित हुए। पुरुषों के मंडप में स्त्रियों का भी साथ बैठने का प्रबन्ध था। उसमें ४०० व्यक्तियों के योग्य स्थान था और किसी स्त्री को पड़दे में बैठना नहीं था, अतएव स्त्री पुरुष एकही मण्डप में समा गये थे। तुरन्त ही निर्मला ने सूचित किया कि—"उपस्थित विद्वान और विदुषियों की ओर से आज की चर्चा में भाग लेने के लिये ५१ नाम आये हैं जिनमें ४० पुरुषों के हैं और ११ स्त्रियों के हैं। चर्चा का विषय 'हम आर्य महिलाओं की उन्नति किस में है ?' रक्खा है। बोलने का समय पाँच मिनिट का रखना पड़ा है। उसमें सबसे श्रेष्ठ उत्तीर्ण होने वाले के लिये १०००) एक हजार रुपया पारितोषिक रक्खा है, शेष बीस इनाम कम रक़म के हैं। आप सबों की विद्वत्ता की प्रसाद्धि के लिये यह समूह एकत्रित हुआ है तथापि सभी पारितोषिक के निर्णय पर

आने के अधिकारी हैं, अर्थात सबको सर्व प्रथम के इनाम के लिये एक-एक मत देने का अधिकार है। यद्यपि संसार को संतुष्ट नहीं किया जा सकता तथापि उपस्थित भ्रातृवर्ग और बहिनों का विशेषांश सन्तुष्ट हो इस पर निर्णय अवलम्बित रहेगा।

वक्तापीठ पर आकर एक के बाद एक का प्रवचन प्रारम्भ हुआ। सबसे प्रथम एक जलसबाज प्रसिद्ध पौराणिक जी खड़े हुये। स्त्रियों की उन्नति केवल आचार विचार का प्रतिपालन करने में एवं व्रत उपवास के प्रयोग से पुण्य उपार्जन करने में निहित है, इस आशय का प्रवचन हुआ। अलबत्ता विद्वान् वर्ग के बहुत से सज्जन दांत और जीभ न दिखलाते हुए केवल नेत्रों से मानो इस और हंसते दिखाई दिये। इनके विचार से जिस समय भारतवर्ष में अनेकों स्त्रियाँ दुःख में पड़ी पशुवत् जीवन व्यतीत कर रही हैं, सो में एक स्त्री शिक्षितनहीं है—वहां पौराणिक जी द्वारा कुछ विशेष उपयोगी बात कही गई होती तो ठीक था किन्तु पौराणिकजी की वृद्धावस्था ने सबका ध्यान आकर्षित किया।

तत्पश्चात् उपरोक्त पौराणिक जी के प्रतिस्पर्धी मानो दो तीन काली मूछों वाले अन्य पौराणिकजी खड़े हुए किन्तु पूर्व वक्ता के स्त्रियोचित आचार विचार का विशेष विवेचन करने पर उनको स्त्री पुरुषों ने तालियाँ बजाकर बोलने ही न दिया। तदनन्तर सनातन धर्मावलम्बी संस्कृत पाठशाला के एक अध्यापक ने बोलना प्रारम्भ किया और संस्कृत श्लोकों की पंक्तियों के साथ स्त्रियों की उन्नति सब नीति में निहित है कहकर श्रोताओं का ठीक ध्यान आकर्षित किया। इस विषय का अनुमोदन करने वाले दस के अनुमान व्यक्ति निकले जिन्होंने अपनी-अपनी दिशा में घड़ीभर मंडन की, आर्य नीति के अभिमान की, तीक्ष्ण धार दे सतेज किया।

तदनन्तर एक नये कविराज ने स्त्रियों की उन्नति अमुक मत के निभाने में है इस पर उत्तम काव्य गाकर सभा को विचलित करदिया। उसके बाद एक प्रसिद्ध वक्ता ने 'स्त्रियों की उन्नति शिक्षित होने में है और नीति भी शिक्षा से ही प्राप्त होती है' इसपर हृदयग्राही विवेचन कर सभामें हर्ष नाद प्राप्त किया। इस वक्ताके अनुमोदकों की संख्या बढ़ गई तथा शिक्षा पर बोलने वालों में उत्तम वक्ताको प्रथम पारितोषिक देने के लिये सभा [illegible]लित होने लगी। तत्पश्चात् प्राचीन समय का अनेक भाषणों द्वारा श्रोताओं को निज मत में लाने में अभ्यस्त एक 'सुधारक' उठा। उसने अर्वाचीन स्त्रियों की अधम दशा का चित्र किंचित अत्युक्ति युक्त चित्रित किया और तुरन्त ही विधवाओं की अधमाधम स्थिति का वर्णन कर कितने ही पादरियों द्वारा होने वाले आक्षेपों की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया। निराधार विधवाओं की हृदय कंपाने वाली दीन स्थिति पर बोलते हुए उसके हृदय के भावों ने उसका तादात्म्य भाव प्रदर्शित किया तथा व्याख्यान एवं वाद विवाद में अभ्यस्त इस व्याख्याता ने सम्भवतः स्त्रियों की उपस्थिति के कारण अपना धैर्याधिकार छोड़ दिया और एक बालक की भांति रोने लगा। केवल उसी को यह भावना हुई हो यही नहीं विशेषतः स्त्रियों में और करीब एक तिहाई पुरुषों में इसके तीक्ष्ण बाणों ने असर उत्पन्न करदिया। पौराणिकों, सनातन धर्मियों आदि कितने ही लोगों की ओर से विधवा विवाह पर आजाने के भय से इन महानुभाव को बैठा देने के लिये अध्यक्षा निर्मला देवी से प्रार्थना होने लगी और स्त्री समुदाय की ओर से 'इनको बराबर कहने देना चाहिये' पुकारें लगने लगीं। पौराणिकों और उनके पक्ष में रहने वालों ने तालियाँ बजाईं कि जिससे इस सुधारक का भाषण कुछ सुनाई न दे किन्तु इससे माताओं के चित्त को दुःख पहुंचने से कोलाहल मच गया। शास्त्रार्थ के

मध्य में ही इस प्रकार सभा की नाव डांवाडोल होने लगी। महिलाओं में जो ११ महिलाएं बोलने वाली थीं, उनमें से विशेषतः इस वक्ता को ही अनुमोदन करेंगी ऐसा स्पष्ट प्रतीत होने लगा। इतने में ही निर्मला देवी को एक पत्र स्त्रियों में से मिला कि "यदि इस वक्ता को बोलने से रोका जायगा तो स्त्रियां अपने स्वाभिमानार्थ यहां से उठ कर चली जायगी।" निर्मला देवी ने अपने को बड़ी उलझन में पड़ा समझा अतः 'विवाद अब अगले दिन मध्याह्न के २ बजे से प्रारम्भ होगा' यह कह कर सभा विसर्जित कर दी।

निवास स्थान पर आकर उसने भद्रबाला से परामर्श किया। निर्मला ने पुरुषों में एक विज्ञप्ति निकाल दी कि पुरुषों का रात्रि का भोजन करने का समय ८ से १० बजे तक रक्खा गया है; और स्त्रियों में एक दूसरी विज्ञप्ति निकाली कि आज की चर्चा पर विचार करने के लिये रात्रि को ८ से १० तक केवल महिला मण्डल की बैठक होगी। पुरुषों के ठहरने का स्थान करीब दो फर्लांग की दूरी पर होने के कारण महिलाओं की स्वतन्त्र अलग ही मीटिंग कर अवरोध न करते हुए शान्ति-पूर्वक उपदेश सुनाने का निर्मला का हेतु था। महिलाओं के लिये जो छोटा मण्डप चिक के परदे लगा कर पृथक रक्खा गया था, वह इस समय बहुत उपयोग में आया। निर्मला देवी ने अगले दिन होने वाली मीटिंग के पहिले, रात्रि को स्त्रियों का ही पृथक् वाद विवाद कर सुयोग देने की जो युक्ति की है यह बात गुप्त रीति से पुरुषों में फैलने लगी। परिणाम यह हुआ कि जब महिलाएं नियुक्त मण्डप में जिसमें कि रोशनी हो रही थी प्रविष्ट हुई, तो उनके पीछे पुरुषों के लिये बने हुए मण्डप में जहाँ अँधेरा हो रहा था, बहुत से पुरुष स्त्रियों में क्या वादविवाद चलता है यह सब देखने के लिये चुपचाप आ गये थे।

स्वतन्त्र बैठी हुई महिलाओं में से जिन ११ महिलाओं को बोलना था वे इस विशेष मीटिंग में ही अपने उद्गार निकालने लगीं, पुरुषों में से अपने से अधिक विद्वत्ता वाला कोई व्यक्ति वहाँ इस जगह नहीं था इस विचार से इनको जिह्वा ने पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करली थी। यहां तक कि कुछ अंश में बोलने में आवश्यक मर्यादा की रक्षा के लिये चिन्ता होने लगी। इन बोलने वालियों के अनुभव सिद्ध पास किये हुए स्त्रियों के विशेषतः विधवाओं के हृदयद्रावक कितने ही उदाहरण सुन कर उच्च श्रेणी की नीति की शिक्षा पाने वाली निर्मला को जन्मभर में आज ही इतना भय उत्पन्न हुआ। घोर विपत्ति के समय में भी अविचल अन्तःकरण वाली होते हुए भी इसको रोमांच आज ही हुआ। समाचार पत्रों में तो कितने ही ऐसे उदाहरण वह पढ़ा करती थी किन्तु इस प्रकार प्रत्यक्ष स्वयं देखने वालियों की तरफ से सुन कर पृथ्वी में समा जाय इतनी उसको लज्जा हुई। आर्य नीति का आज रूपान्तर हो गया है-धार्मिक शिक्षा, स्त्रियों की वास्तविक कर्त्तव्य की शिक्षा के अभाव में यह स्थिति होने लगी है, अन्य लोगों के संस्कारों ने पुरुष और स्त्रियों में अपना निश्चय स्थित किया है, यह देखकर इसके कोमल हृदय पर आघात पहुँचा।

आज रात्रि को तो इस महिला मण्डली ने, मनमाने स्वतन्त्र वातावरण में बोलने वालियों ने, हिन्दुओं में विधवाओं की बढ़ने वाली संख्या, उनकी निराधार स्थिति, उनके जीवन निर्वाह के लिये योग्य संस्थाओं का अभाव, हिन्दू संसार के दुःखमय बन्धनों से होने वाली उनकी कठिनाइयां, इनकी विपत्तियों के प्रति समाज की बेदरकारी, उनका विशेषांश अशिक्षित होने से स्वाश्रयी जीवन व्यतीत करने की इनकी अशक्ति, इत्यादि विषयों पर खूब चर्चा की। विधवा विवाह होना स्त्रियों की उन्नति और समग्र देश की उन्नति के लिये पास कर

दिया। बहुतसी मध्यम विचार वाली स्त्रियों ने उच्च जाति में विधवा विवाह का निषेध बतलाया, किन्तु केवल अमुक विधवाएं विवाह कर सकती हैं इस पर चर्चा की। पुरुष और स्त्रियों के समान अधिकार में विवाह की संख्या के विषय में-तो इतने अधिक जोश से कितनी ही महिलाओं ने विचार निश्चित किए कि इस चर्चा से पुरुषों को गालियां दी जाती हैं या उनके बर्ताव पर टीका की जाती हैं यह कहना कठिन था।

ग्यारहों द्वारा अपने विचार प्रकट किये जाने बाद निर्मला ने ये ही विचार अगले दिन मध्याह्न को पुरुषों के समक्ष सभा में प्रकट करने का आग्रह किया। ऐसा करना बहुतसी महिलाओं ने निषेध किया। जिस पर प्रगट और निजी जीवन पृथक् रखने के बर्ताव पर टीका हुई। स्त्रियों में भी मतभेद हो गया। किन्तु मत लेने पर पुरुषों की सभा में ये स्वतन्त्र विचार प्रकट न करने में ही महिलाओं का गौरव है, इस विचार वाली महिलाओं की ही जीत हुई। भद्रवाला के विवाह के विषय में स्थिति जानने वाली स्त्रियों की ओर से उसको अपने मत में लेने की लालसा से उससे विचार प्रकट करने का आग्रह किया गया। विरुद्ध मत वालियों ने भी भद्रवाला के बोलने की इच्छा प्रगट की। निर्मला थक गई थी, रात्रि का विलम्ब हो गया था, तथापि स्त्रियों के आग्रह से उसने भद्रवाला से इस शब्द युद्ध की पूर्णाहुति करने की प्रार्थना की। अतः उसकी भी बोलने की कुछ इच्छा हुई।

भद्रवाला ने कहा—"आप सब ने मुझे बोलने को आमन्त्रित किया है अत: मेरे विचार आप सब को ग्राह्य होने चाहिये। इसी विचार से मैं बोलने को उत्तेजित होती हूं। मुझे आपने एक प्रकार से पंच नियुक्त किया है यह मैं आपके बर्ताव से समझती हूं। अतः उचित आशा रखती हूं कि पंच के निर्णय को आप स्वीकार करेंगी। मैं कुमारी हूं

तथापि विवाहिता हूं। विधि पूर्वक विवाह नहीं हुआ किन्तु मानसिक विवाह होगया है। जिनके साथ मेरा इस रीति से मानसिक विवाह हुआ बतलाती हूं उनको गोली लगी है और उनका पता ही नहीं है। कदाचित मैं उनको जीवनभर न देख सकूं किन्तु अपना स्नेह मैंने उनको अर्पण किया है। मेरा हृदय विवाहित है। मेरा और उनका स्नेह दैवी स्नेह है। आर्य स्त्रियों का ऐसा ही स्नेह हो सकता है। दैवी स्नेह वाली दम्पत्ति अलग हो ही नहीं सकती। एक स्थूल रूप से संसार में फिरती है और दूसरा सूक्ष्म रूपसे जीव लोक में रह कर दूसरे को होसके जितनी सहायता कर सकता है, दोनों सूक्ष्म रूप प्राप्त होने पर पुनः मिलते हैं। इस विचार में जो तुम अपने हृदय को तत्पर करो और जिन विरुद्ध संस्कारों ने तुम्हारे विचारों में अज्ञानता उत्पन्न करदी है उन्हें निकाल दो तथा असली स्वरुप में आजाओ तो आज के आन्दोलन को स्थानही कहां है? आज समय के वातावरण बदल गये हैं—खान पान बदल गए हैं—अतः संगति दोष और खान पान जिसका सूक्ष्म असर तुम्हारे मन को पोषित कर रहा है, वही तुमको ऐसा अनुचित भाषण करा रहा है। तुम तुम्हारे स्वरूप में नहीं हो। हमारी आत्मा जिस प्रकार चमड़े के थैले में कैद है उसी प्रकार तुम लोग विदेशी वातावरण-अन्य देशीय लोगों के विचारों से परिवृत होने के कारण यह चर्चा चला रही हो। आर्य संस्कृति पुनः प्राप्त करने पर आप लोग ऐसा नहीं कहेंगी। ठीक समझना। शुष्क शिक्षा ने—धार्मिक शिक्षा के अभाव ने—तुम्हारी यह मनोदशा करदी है। मनो बल रहित जो स्त्रियां आजकल स्वेच्छा से पुनर्लग्न करने जाती हैं, दृष्टि में हों उन सब की सूची बना कर क्या उनके सुख दुःख तलाश किये हैं? यदि तलाश नहीं किये हों तो ऐसी कितनी सुख पूर्वक रहीं इसका अन्दाजा लगाना। मनोनिग्रह की तो सधवापने में भी अत्यन्त आवश्यकता रहती है। इस आवश्यकता का विस्तार विधवावस्था में बढ़ जाता है। मनोनिग्रह नहीं है तो आप पशु हैं। संयम से,

मनोनिग्रह ने, ब्रह्मचर्य ने ही स्त्री पुरुषों को संसार में विजयी बनाया है। आपको परमात्माने प्रकृति द्वारा संज्ञा की है कि आप को इस स्थिति में रह कर संसार में परोपकार करने में ही जीवन व्यतीत करना है—परमात्मा की यह बात न समझ कर उसकी इच्छा के विरुद्ध तुम चेष्टा कर रही हो? प्रजा की उत्पत्ति का कारण स्वीकार करोगी तो समझदार व्यक्ति तो वह नहीं सुनेगा। तेतीस करोड़ भिखारियों में तुमने कितनी वृद्धि की, इससे देश को तुमने लाभ पहुंचाया या हानि? आप लोग समझती नहीं तब तक लोगों के नेता आपका जीवन रहने योग्य बनाने की बातें हाँकेंगे और निरन्तर विधवा विवाह की सूचनाएं निकालेंगे, यह मैं जानती हूं; किन्तु आर्त स्वर से परमात्मा से मेरी यही प्रार्थना है कि पूर्ण धार्मिक शिक्षा से सुसज्जित पूर्वकालीन देव देवियां पुनः भारत में जन्म लेकर हमारी आर्यनीति की होने वाली खून खराबी को रोकें।"

सभा में शान्ति फैल गई। चुपचाप स्त्रियां विदा होने लगीं, दूसरे दिवस इनाम बांटे गये। प्रथम पारितोषिक के इस संयोग वश भाग कर दिये अतः विवाद में भाग लेने वाले २१ लोगों को सन्तोष हुआ। इस चर्चा की स्मृति में निर्मला देवी ने इस आश्रम में ही धार्मिक शिक्षा मिलने योग्य कन्या पाठशाला की स्थापना की सूचना दी, और स्वयं उसके निर्वाह के लिये योजना भी बना डाली। दूसरे दिवस की डाक में अमेरिका से लक्ष्मीप्रसाद का कुछ ही काल में भारत में वापिस आने के आशय का पत्र मिला। निर्मला ने अब जाने की आज्ञा ली। भद्रबाला ने बहुत उपकार माना और फिर आने का आग्रह किया। 'कन्या पाठशाला के निमित्त अब आना होगा ही' यह कह कर उसने विदा ली।

❀ परिच्छेद १९ वां ❀

वीर-पूजा ।

"हनुमत बंका, तोड़ी गढ़ लंका, जय जय हनुमान, वीर बंका !"
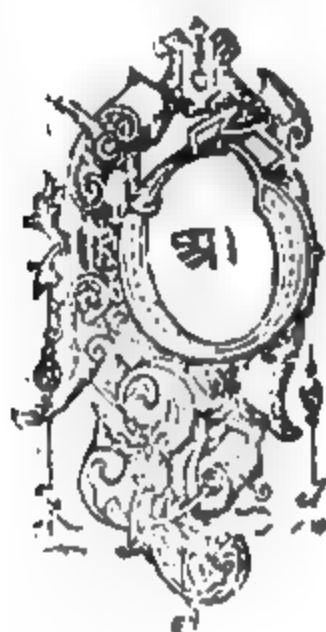
आज आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी थी । रात्रि के आठ बजे का समय होते हुए भी चन्द्रमा का कुछ भी प्रकाश मालूम नहीं पड़ता था क्योंकि आकाश बादलों से घनघोर छा रहा था । बारंबार बिजली की चमक से आकाश में लम्बी-लम्बी लकीरें होकर तुरन्त एक महान् गगन भेदी घड़-घड़ाहट सुनाई पड़ता था ।

इसी समय एक यात्री दण्डकारण्य की एक नदी के समीप के नाले में होकर आ रहा था । कुछ ही देर में बरसात के छींटे पड़ने लगे । यात्री की ऊनी घुग्घी भीजने लगी । इस वर्ष में आज वृष्टि प्रथम ही प्रथम हुई थी और देखते-देखते वह खूब अधिक हुई । यात्री की छत्री खुल नहीं सकी और अंधकार होने से उसका कारण समझ में नहीं आया । अन्धेरे के कारण मार्ग अच्छी तरह दिखाई नहीं देता था, अतः जब बिजली चमकती उतने समय के प्रकाश में दूर तक मार्ग देख कर वह आगे बढ़ जाता । शरीर से सशक्त था और वस्त्र भी ठीक-ठीक पहिन रक्खे थे, ऊपर से कम्मली ओढ़ ली थी, किन्तु देखते देखते वृष्टि पूरे जोरों से होजाने से सारे कपड़े टपकने लगे । उसके

चित्त में इसका कुछ कष्ट नहीं था। उसके चित्त की निडरता निस्सीम प्रतीत होती थी। उसका मन आन्तरिक व्यथा में विशेष व्यग्र था। अभी तीन चार मील दूर रेल के स्टेशन तक उसको जाना था और प्रातः नौ बजे की गाड़ी में बैठना था। कुछ ही देर में उसे यह प्रतीत हुआ कि विचारों की तरंग में वह मार्ग भूल गया है। वह एक दम ठहर गया। इधर उधर मार्ग देखने लगा। किन्तु घोर अन्धकार का साम्राज्य अब पूर्णतया जम गया था। बिजली कुछ कम होगई थी और वृष्टि मूसलाधार होने लगी थी। 'परमात्मा सर्वत्र है और यहां भी है इस विचार से मार्ग मिलेगा ही' यह धारणा कर वह चला जा रहा था। परन्तु शीघ्र ही उसको यह मालूम हुआ कि वह उस नाले में इस नयी वृष्टि से आने वाले प्रवाह के घुटना तक पानी में इस समय चल रहा था और प्रति क्षण पानी बढ़ता प्रतीत होता था! पूरी वृष्टि होने के कारण कदाचित् इस नाले में पास के दूसरे नाले का पानी मिलने से बाढ़ आजाय, इस विचार से उसने एक बड़ी ढाह से चढ़कर उस नाले से ऊपर आजाने का विचार किया। थोड़े ही क़दम वह चढ़ा होगा कि बिजली के प्रकाश में उसने बछड़ा जितना बड़ा जानवर लेजाते एक विकराल हिंसक पशु देखा, दूसरी बार बिजली की चमक में उसने अच्छी तरह देखा शेर! हे ईश्वर! अब! परमात्मा पर अगाध श्रद्धा और उसके साथ हृदय की निडरता इसका आप क्या मूल्य लगा सकते हैं? कुछ धीमी चाल से किन्तु दृढ़ता पूर्वक शीघ्रता से उसने शनैः शनैः ढाह पर चढ़ना जारी रक्खा। इतने ही में ढाह से ऊपर उसको प्रकाश दीखा और उसमें एक मनुष्य की आकृति सी भी दिखाई दी। तीन चार मिनिट ही इसको यह भयङ्कर यात्रा करनी पड़ी होगी। किन्तु उन तीन चार मिनिटों में ही जीवन के विशेषांश जितनी श्रद्धा सहित प्रार्थना उसने आज की। ऊपर आते ही मनुष्याकृति मानो विलीन होगई। कदाचित् उसको भ्रम हुआ हो यह उसने विचारा।

ऊपर आने के बाद कुछ शीत से, कुछ भय से उसका देह कांपने लगा; तथापि उस बाघ से कुछ दूर चला निकला जाय यह विचार कर वह शीघ्रता पूर्वक चलने लगा। चलते चलते दाह की निचाई की ओर सिंहावलोकन करते हुए उसने देखा कि दो खजूर एक पर एक समा जांय इतनी गहराई वाला नाला उसने पार किया था।

चारसौ क़दम चला होगा कि इतने में इस परिच्छेद के शीर्षक पर लिखे हुए पद की आवाज़ उसके कानों पड़ी। इससे उसको बहुत धैर्य हुआ और हृदय की गहराई से की गई स्तुति परमात्मा तुरन्त स्वीकार करता है, इसकी एक बार विशेष प्रतीति हुई। आवाज़ की ओर वह आकर्षित हुआ। बिजली के प्रकाश में उसने कुछ ही दूरी पर एक जीर्ण देवालय देखा। इस समय वृष्टि भी बन्द होने लगी थी। देवालय के समीप आते ही उसने देखा कि चारों ओर एक विशाल किन्तु जीर्ण कोट था। अन्दर प्रवेश करते ही एक वृद्ध साधु ने कहा:—

"आओ, राम! इस समय कहाँ से?"

"महाराज! मैं एक भटका हुआ यात्री हूं।"

"अरे! राम, राम, संसार में उसी प्रकार जंगल में भटके हुए यात्रियों का ही यह आश्रम है। तुम पहिले कपड़े उतार कर निचोड़ कर इस भट्टी के पास बैठो, जरा तापो। इस मकान के खपरैल अभी ही नये बदलाये हैं, अतः बरसात की एक बूंद यहां नहीं आसकती है। बैठो, निडर होकर बैठो, क्यों कांपते हो? जाड़े से तो नहीं? भूखे होगे क्यों ना? इस खोल को कहाँ भराया?" सिर पर हाथ रख कर यह वयोवृद्ध साधु अत्यन्त ममता से पूछने लगा।

"अरे, महाराज ! भयानक जंगल में एक भटकते हुए यात्री के प्रति सतयुग का स्मरण कराने वाला आपका स्वागत भाव देख कर सारा दुःख भूलने में आजाता है"

"अरे, राम, राम, बैठो, बैठो, तुम्हारे ये कपड़े निचोड़ कर इस बांस पर सुखादो ! कुछ देर बरसात मूसलाधार हुई है। साल अच्छा होगा, समझे !

"असाढ़ सुदी पञ्चमी जो झबकेंगे बीज।
घर के गहने बेच कर राखो बैल रु बीज ॥"

नाज के भाव प्रातःकाल से ही घटने लगेंगे। यह कह कर महाराज ने भट्टी में थोड़े लकड़ी के टुकड़े रख कर अग्नि सिलगाई। मन्दिर जितने वर्ष ही मानो महाराज को भी हुए हों यह सूचित करती लम्बी सफेद दाढ़ी देख कर, उसी प्रकार इतनी अवस्था पर युवावस्था के चिन्ह देख कर, यात्री को महाराज पर बहुत भक्ति भाव उत्पन्न हुआ और वह बोला—

" महाराज ! आप यहां इकले हैं ? सेवा में शिष्य भी नहीं ? और ये भयंकर जंगल"—

महाराज—अरे राम, राम, भाई ! विश्वभर क्या सर्वत्र नहीं है ? कुञ्जबिहारी श्रीकृष्णचन्द्र प्रभू की मूर्ति यहां है तो गोकुल भी यहीं है। और श्रीरामचन्द्र की जय ! रामनाम भवतारण मन्त्र है उसके नाम स्मरण से जंगल में राम राज्य होजाता है और श्रीबजरंग वली जैसे प्रथम श्रेणी के वीर योद्धा यहाँ द्वारपाल रूप में विराजते हैं ! इस समय में तो योद्धा भी अनेक हुए अतएव लोग उनके स्मारक बनाने उतर पड़े हैं। इनका नाम भूला न जाय ? किन्तु इस धर्म योद्धा के कीर्ति के पक्ष में रह कर हजारों वर्ष तक किये गये पराक्रम के

तेज की छाप प्रजा के हृदय में ऐसी समूल बैठगई है कि जब तक सूर्य चन्द्र रहेंगे, जब तक पतित को पावन करने वाली भगवती भागीरथी बहेगी, जब तक भगवान् महेश्वर देव रूप से पूजित होंगे, जब तक विश्व में वेद विद्यमान हैं*१ तब तक बिना प्रयास ही प्रातःकाल लोग अपने जीवन उच्चतर बनाने में उनका स्मरण करेंगेही ! वाह रे हनुमान ! वाह स्वामि भक्त ! वाह बजरंग ! धन्य-धन्य अंजनी पुत्र ! आ, आ मेरे इकतारे—

"हनुमत बंका तोड़ी गढ़ लंका—
जय-जय हनुमान् वीर बंका।"

एक बालक समान आनन्द पूर्वक महाराज ने इकतारा हाथ में लेकर गाना प्रारम्भ किया। इस समय इस मुखाकृति पर अनुपम आनन्द छा गया। हनुमानजी की मूर्ति के आगे जाकर ध्यान धरकर फिर फिर कर इसने देखा ! तत्पश्चात् वह निष्प्रयोजन हंस दिया। फिर वापिस आकर यात्री से पूछने लगा:—

"कहो, अब तुमको क्या चाहिये ?"

"महाराज ! मैंने आपसे कहा कि आपके स्वागत ने कुछ बाकी नहीं रक्खा है। आपकी भक्ति और आपका आनन्दी जीवन देखकर मैं पवित्र हुआ।"

"अरे, राम, राम, तुम बहुत भाव पूर्ण प्रतीत होते हो, अच्छा, लो, ये हनुमानजी के आगे रक्खे थाल का प्रसाद है। उसमें से यथेच्छ लेकर क्षुधा शान्त कर फिर बैठो।"

---

*१ यावद् भागीरथी गंगा, यावद् वो महेश्वरः।
यावद् वेदा प्रवर्तन्ते तावत्त्वं चिरंजीवेत् ॥
(इस सुप्रसिद्ध श्लोक के अनुसार)

यात्री ने विचार किया महाराज के पास कोई नहीं है। जीर्ण देवालय में, अंधेरे में, निर्जन जंगल में, अंधेरी रात्रि में मिष्टान्न का थाल महाराज जादू से ले आये क्या? किन्तु महाराज ने कहा—"आश्चर्य में होने का कुछ कारण नहीं है, आज कितने ही ब्राह्मण जागरण में आये थे, उनके चढ़ाए हुए थाल का यह प्रसाद है।"

"महाराज! आप को कितने वर्ष हुए होंगे?" यात्री ने खाते-खाते पूछा।"

"अरे, राम, राम, जीवन की लम्बाई कुछ वास्तविक लम्बाई नहीं है। इसमें लोगों पर किया गया उपकार और भगवत् भजन ही जीवन की लम्बाई समझना चाहिये:—

"एक घड़ी में अध घड़ी, आधी में से आध।
तुलसी सुमरन राम का, हरै कोटि अपराध॥"

यदि इस प्रकार गिनें तो वर्ष तो बहुत हुए। गत वर्ष में सौ वर्ष पूरे हुए और ये एकसौ एकवां चलता है।"

महाराज उपरोक्त बातें कर रहे थे कि इतने में एक दूसरे यात्री ने आकर नमस्कार किया।

"जै जै गुरुदेव! मैं उस दिन आया था वही बणिया हूं।"

"आओ भक्तराज! आओ!" महाराज ने कहा—"तुम तो खरे हरिजन हो। आओ, राम! आओ, बैठो। श्रीकृष्ण भगवान को तुम प्यारे हो अतएव हमारे सिर के मुकुट हो। बैठो; इस आसन पर बैठो। किस तरफ़ जाते हो?"

"महाराज! यात्रा को निकले हैं। श्रीगोकुलनाथजी महाराज के बाद मथुरा, वृन्दावन, हरद्वार जाना है; अब तो सवेरे की गाड़ी से जायेंगे, रात होगई इससे यहीं आगये, आपके दर्शन होगये।"

"मथुरा, गोकुल की भूमि देखने जाने वाले यात्रियों के हमको दर्शन हुए। वाह वाह ! तुमको बरसात कहाँ मिली ? तुम भीगे नहीं दिखाते !"

"महाराज ! आपके पड़ताप से गाड़ा है, वह साठ लिया है, औरट हैं औड़ दो लड़की हैं और बैल हाँकने वाला लड़का है और रशोई कड़ने वाली ब्रामणी है--

"ओहो ! ऐसा है ?" महाराज ने कहा—तब तो इनको अन्दर की कोठरी में लाकर बैठाओ। गाड़ी वाले को सामने के कोठे में से घास लेकर बैलों को डालने को कहो। जाओ, हरिजन ! सबसे पहिले बैलों को घास डालने का काम करो। फिर तुम्हारे भोजन के लिये सीधा सेठ—"नहीं, नहीं, गुरुदेव ! कुछ नहीं चाहिये। सब साठ है। हमको टो उटड़ने को जगे चाहिये हां। ढन्य है म्हाड़ाज ! आप तो सटजुग की वानगी हैं।

सेठ पचासेक वर्ष का मालूम होता है। पहिले एक बार यहाँ होजाने से और महाराज के स्वागत से परिचित होने से बरसात होने से यहाँ ठहरना सूझगया अन्यथा पास के स्टेशन पर जाकर हा विश्राम करने का विचार था। उसने पहिले बैल, ब्राह्मणी, और नौकर के रहने का प्रबन्ध किया। दो लड़कियों में एक ढाई और दूसरी तीन चार वर्ष की दिखाई देती थी। वे गाड़ी में सोगई थीं। उनको जगाकर कोठरी में बिछौना कर दिया गया और वे वहाँ सोगईं।

सेठ ठिगने क़द का मनुष्य था, नर्मदा किनारे जैसे जॉवड़े में रक्खे हुए पत्थर मालूम पड़ते हैं वैसे उसके मुख पर अनेक चांटे पड़े हुए थे। जीवन भर गरम गरम खाने से और भोजन पश्चात् दांतों को ठीक ठीक धोने की आदत न होने से उसी प्रकार नित्य प्रति करीब पावभर सुपारी

का भुक्का पेट में जाने से उसके मुख में जीभ बत्तीस दांतों के बीच निष्कलंक, निर्भय और स्वतंत्ररूप से फिर सकती थी किन्तु तोभी सेठ अस्पष्ट रूप से बोलता था। मुर्दे को बिजली के बल से बुलवाने के के उद्योग में प्रो० बोस नयी शोध करने वाले हैं इस प्रकार वह बोल जाता था। प्रकृति ने अनुपम चतुराई से दांतों की बत्तीसी को मजबूती से युनाइटेड स्टेटस की तरह पृथ्वी मदरा मुखमें बैठा दिया था, जिससे गरम मसाले की फौज की मदद से चबाने में जीभ से हुए पापों के परिणाम का प्रायश्चित्त करती थी।

थोड़ी देर में आभूषणों के भार से लदी हुई सेठानी को रथ से सेठने सहायता देकर उतारा। अरण्य की निर्जनता को या भयानकता को बताने के लिये या न जाने किस कारण से सेठानी के अंग को इतने अधिक अलंकारों से शृंगार करने की आवश्यकता थी यह भविष्य की तरह समझ में नहीं आता था। किन्तु महंगाई के समय चोरों को पल पल पर निमन्त्रण देने वाले ये आभूषण थे। सेठानी के शरीर पर इस स्थान पर इसी से गये थे कि दैवात् चोर नहीं मिले थे। बहुत धीरे २ पैर रखते, नाक की कीलभी न दिखलाते बड़ी ठसक से सेठानी कोठे में सेठ द्वारा किये गये बिछौने पर जा बैठीं और 'शोजाओ ठक गयीहो" यह कह कर कोठे का द्वार भेड़कर सेठ महाराज के पास भट्टी के आगे आकर बिस्तर डालकर बैठगया।

"भक्तराज!" महाराज ने कहना प्रारम्भ किया "तुम पहिले आये थे तबतो सेठानी लगभग तुम्हारी ही वय के थे वे..."

"अडे म्हाराज!" सेठ बीच मेंही प्रत्युत्तर देने लगा। "शंशाड दिड्ठा है ये सत्य है। पचाश बरश पर धड भंग हुआ वह इश्त्री गुज़ड गई, शादी बिराडडी में शडुडु मंडन कड़ाया और डश हजाड डुपैय के

शत्रुञ्ज मण्डन में से ये छुंवला दशेक दिन हुए इखन में शे निकाला है ।

"इतनी अधिक असुविधा थी तो दूसरी बार विवाह नहीं करना था सेठ!" यात्री से रहा नहीं गया अतः बाघम्बर के आसन पर से उठ बैठा और बोला।

"अड़े, मैं उशका क्या करूँ ?! जो इस्त्री मर गयी कुछ बालक नहीं हुआ, फिड आपके पड़टाप से पाँच पैशे की मिलकट का क्या करना ? जानटे हो ना ! बिड़ादड़ी में शे चाड़ भले आडमी पीछे पड़े ओड़ लड़की के लिये शाड़ी दुनियां ढूंड डाली मगड़ कोई न मिली। टेठ दख्कन में हैदड़ाबाद है, हैदड़ाबाद, उसके पाश ही गाम है जां हमाड़ी बिड़ादड़ी के चाड घड़ हैं, वां ब्याह हुआ। घड़ आटे ही सेठानी ने टो कहा कि हम को तो हस्तुबाड़ की जात्रा की बाढा है- इश शे डड़शन कड़के ही घड़ में जाऊँ। इशशे एक डम जात्रा को आणा पड़ा है। क्या कड़ें ?"

"वाह, धन्य है सेठानी की भक्ति को" महाराज ने कहा—"अच्छा तो ये दो बच्चे कौन हैं ?"

"ये टो इनके काका की लड़की हैं, साठ-साठ भेजडी हैं, पड़टी हैं, वापिस इनके शाठ देश में जायगी,"

यात्री खड़ा होगया ! बड़ी आतुरता से और गम्भीरता की दृष्टि से वह सेठ को देखने लगा। उसके मुख पर पसीने की बूँदें आगईं। उसने कोठरी से बाहर जाकर ग्रीष्म ऋतु के घोर ताप से तपी हुई पृथ्वी जो अभी की वृष्टि से शान्त हुई थी, उससे निकलने वाले चातुर्मास्य के आरम्भ का सुगन्धित परिमल जो वायु के साथ मिल कर आ रहना था उससे स्वेत बूँदे सुखाईं, और इधर उधर टहलने लगा। महाराज की

लम्बी सफेद दाढ़ी और पवित्र भव्य मुखाकृति की ओर देखते ही पुनः स्वस्थ होगया और भट्टी के आगे आकर बाघम्बर पर फिर बैठ गया।

सेठ इस समय भट्टी के आगे पड़े बिस्तर पर लेट गया था। दिन भर के परिश्रम के कारण देखते-देखते उसके नकुए बोलने लगे। यात्री और महाराज बातों में बैठ गये।

"महाराज! रेल के स्टेशन की ओर जाने वाले मार्ग पर ही आपका ये आश्रम है, अतएव हर समय आने जाने वाले यात्री कष्ट देते होंगे। इतनी अवस्था में आप इन सबका इस अच्छी रीति से स्वागत करने का परिश्रम उठाते हैं, तो ऐसे ही आतिथ्य में अभ्यस्त भविष्य में आने वाले यात्रियों का स्वागत इसी प्रकार होता रहे, इसके लिये किसी सदाचारी एक-दो शिष्य की आप आवश्यकता नहीं देखते? पुनः पूछने के लिये क्षमा करेंगे।"

"अरे, राम! तुम्हारा प्रश्न यथार्थ है। किन्तु संसार में हमारी आज्ञा का पालन कर असली साधू धर्मपूर्वक चलें, ऐसे शिष्य इस समय मिलते नहीं—तैयार करने पड़ते हैं, बनाने पड़ते हैं। साधू लोगों का धर्म असिधारा व्रत सदृश है और इस पाप प्रधान कलि काल में वह विशेष जितेन्द्रियत्व, विशेष आत्मभोग, विशेष मनोबल और विशेष तपोबल मांगता है। यह जानते होगे?"

"क्षमा करें, महाराज! पास के गामों में से आटा मांग लाकर दो टिक्कड़ बनाकर खा लेना और आपकी आज्ञानुसार देवता की पूजा कर देना तथा किसी अतिथि का सत्कार कर देना इसमें इतने अधिक बुद्धि बल की आवश्यकता शिष्यों को क्या है? आपने आज कलके साधु धर्म की मर्यादित सीमा बढ़ाई, यह देखकर मुझे सन्तोष होता है किन्तु आज कल के साधू तो केवल नाम के ही हैं। प्रजा के खर्च पर

मौज उड़ाने वाले ! अनेक करों मे लदी हुई भारतीय गरीब प्रजा पर एक प्रकार से विशेष भार रूप हैं।"

'सत्य है, राम ! सत्य है, तुम कहते हुए क्यों हिचकिचाते हो ! मेवाड़ की तरफ तुमने देखा या सुना होगा । वहां तो हजार-हजार साधुओं की टोलियाँ फिरती हैं। साथ में हाथी, डेरे, तम्बू, रसोइये, (वे भी साधू ही) इत्यादि बड़े लवाज़मे के साथ फिरते हैं । एक इस निरक्षर समुदाय और जहां पड़ाव डालेंगे वहाँ के मन्दिर का महन्त साधारण स्थिति का होगा तो उसका भंडार साफ कर देंगे । ऐसे साधुओं को उनके उपदेश करने के वास्तविक धर्म की शिक्षा देकर उनकी शक्तियों को देशोद्धार के कार्य प्रवाह में लगाने की चिल्लाहट करने वाले भारतवर्ष के सच्चे हितैषी हैं।"

"ओहो, महाराज ! इस साधु वेष में आपको मातृभूमि पर इतना प्रेम है इससे मुझे अत्यन्त आह्लाद उत्पन्न होता है-"यह कहते हुए उस यात्री ने महाराज के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया।

महाराज—अरे, राम ! साधू कहां से आये ? जब मातृभूमि के स्वाभाविक प्रेम का अभाव होता है ? इस पवित्र वसुन्धरा ने आकाश की वृष्टि की सहायता से वनस्पति उत्पन्न की, उसके रस का तत्व लेकर पवित्र गो माता ने हमारे माता पिताओं के शरीरों का पोषण किया, जिससे हम उत्पन्न हुए । फिर ये स्वाभाविक प्रेम कहाँ जाय बतलाओ ? इस भूमि के नागरिकों को शिक्षा देने का भार सांसारिक देशभक्तों के बनिस्बत साधु सन्यासियों पर, यदि वे समझें तो, विशेष है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, ये सब भारत के रत्न कौन थे ? स्वामी सत्यदेव कौन हैं ? लोगों में धर्मोन्नति की भावना जाग्रत रखकर उनको धर्म से भ्रष्ट न होने देने तथा उनमें अधर्म की भावना उत्पन्न हुई हो उसे दूर करके समझाने का विशेष कर्तव्य

तो उनके ऊपर है। सांसारिक देश भक्तों को प्रजा को उपदेश देने में सन्मुख प्रवाह पार करने सदृश परिश्रम करना पड़ता है, किन्तु भगवां वस्त्र धारी साधुओं के उपदेश से प्रजा के कान शीघ्र आकर्षित होते हैं। परोपकार मोक्ष का एक प्रकार का उत्तम मार्ग है। कर्तव्य का ज्ञान हुए पश्चात बहुत सुलभ है और मोक्ष से अधिक साधुओं को क्या चाहिये ?

यात्री पूर्ण शिक्षा प्राप्त भारत का हृदय से हित चाहने वाला और भारत की उन्नति के लिये स्वात्मार्पण करने की भावना रखने वाला साहसी विद्वान युवक था। उसके चित्त में सामान्यतः प्रकृत साधुओं की तरह राम-राम कर बात करने वाले महाराज केवल विवेक नीति में रहते हुए सादा जीवन व्यतीत करने वाले एक पवित्र साधु हैं, इतना ही ख्याल था। स्वयं उनमें कुछ विशेष जानता है यह अभिमान जो मनमें था वह नष्ट होगया। और महाराज की विशेष कसौटी करने का साहसपूर्ण विचार उसने किया;

"महाराज! आपके उद्गार मुझे आपके प्रति विशेष भक्ति-भाव उत्पन्न करते हैं। इसलिये आकर्षित होकर विशेष पूछने से क्षमा करेंगे। साधु धर्म का इतना ऊँचा ज्ञान रखते हुए सौ वर्ष का कालक्षेप इस पर्णकुटी में ही आपने किया? जगत को आपके चरणों की प्रत्यक्ष सेवा से, अपने वचनामृत के अनुपम पान से वंचित रक्खा!"

"शाबाश, बच्चा! शाबाश! ठीक प्रश्न उठाया। सौ वर्ष में मुझे आज ही ऐसा साहसी प्रश्न करने वाला मिला। इससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं।" यह कहते हुए वह खड़ा होगया। यात्री का हाथ पकड़ कर उसे भी उठाया। उसके सिर पर हाथ रक्खा और उसका हाथ पकड़ कर मन्दिर के पिछले भाग और कोट के बीच पत्थर की पुरानी

पटिया जहाँ पड़ी थी, वहाँ उसे लेगया । जाते-जाते उसने कहा कि "डरो मत, अच्छा ! तुम्हारा नाम बतलाओ जिससे उसी संबोधन से मैं तुमको बुलाऊँ-"

"महाराज ! मेरा नाम नरहरी-"

महाराज ने एक सफेद संगमरमर कोसी लम्बी पटिया पर दो तीन बार पैर पटका। इससे जमीन से घंटियां बजने की आवाज़ कानों में सुनाई पड़ी। भूमि में खोदने वाले तहखाने का द्वार उघड़ा और तुरन्त ही एक मज़बूत हृष्टपुष्ट शरीर वाला साधु जमीन से निकल कर ऊपर आया !!

नरहरी विद्वान होते हुए, बहुश्रुत होते हुये, और संसार में कुछ अनुभवी होने का बहुत कुछ अंश में उचित अभिमान रखते हुए, इस दृश्य से चकित होगया। अनेकों पुस्तकों में ऐसे अलौकिक दृश्यों का हाल पढ़ा था, उसका प्रत्यक्ष अनुभव होने का प्रसंग उसका पुण्य खेंच लाया यह उसको प्रतीत हुआ। नीचे सिढ़ियां उतरते उतरते इस वृद्ध महात्मा ने उसका हाथ पकड़ा और निर्भयता पूर्वक उससे नीचे उतरने को कहा। वहां उसने क्या देखा ! स्वप्नावस्था का ज्ञान कराने वाले इस अद्भुत दृश्य में प्रथम तो एक पन्द्रह फुट लम्बा और बारह फुट चौड़ा कोठा देखा जिसमें बिजली की बड़ी बत्ती के समान पूर्ण प्रकाश मालूम पड़ा, परन्तु वहां प्रत्यक्ष दीपक देखने में नहीं आया।

"नरहरी !" महाराज ने कहा, "देखो इस कोठे में रहने वाले अभ्यासी लोग हैं जिनके दो भाग हैं ! अतः दो वर्ग के हैं। प्रथम वर्ग में समाधि और योग का क्या अर्थ है इसका अध्ययन होता है और दूसरे में योगाभ्यास में प्रवृत्त होने वाले में किन किन गुणों की आवश्यकता है यह उनको बतलाया जाता है। तत्सम्बन्धी पुस्तकों

का यह संग्रह है। अब दूसरे कोठे में चलो। यहां भी दो कक्षा हैं। एक में समाधि के भिन्न भिन्न अंगों को स्फुट किया जाता है और उसकी सिद्धि प्राप्त होने से मनुष्य की शक्ति कहां तक खिलती है इसका अध्ययन कराने में आता है और दूसरे में अर्थात् चौथे में समग्र तत्त्व ज्ञान रहस्य जिसका हेतु कि मोक्ष है उसका भान कराया जाता है।"

नरहरी ने कहा– "अहा, हा! महाराज! परमात्मा का वर्णन करते हुए 'योगिभिर्ज्ञानगम्यं' इत्यादि श्लोक तो मैं प्रत्येक दिवस कहना सीखा हूं किन्तु योग के अध्ययन का वास्तविक स्वरूप देखने से मेरे नेत्र आज ही भाग्यशाली हुए। मुझे यही शंका होती है कि मैं निद्रा में तो यह अद्भुत स्वप्न नहीं अनुभव कर रहा हूं? अथवा मृत्युलोक में मृत्यु को प्राप्त हुआ हूं? या घड़ी भर पहिले उस सिंह ने पकड़ कर मेरे प्राण और देह अलग अलग कर दिये हैं और तत्पश्चात् मैं यहां आया हूं ऐसा तो नहीं है?"

"नहीं, ऐसा नहीं है। वत्स! सिंह के डर से कांपते हुए तू पहाड़ पर चढ़ता था उस समय तो मैं उसकी चोटी पर खड़ा था! उसके बाद मैं मन्दिर में आया। हरद्वार की यात्रा को जाने वाला वह बनिया भक्त भट्टी के आगे बैठा है और हम इस तहखाने में बैठे हैं।"

"अच्छा, समझा! कृपानिधान! परन्तु प-र-न्तु"

"बोल, निर्भय होकर कह! जो शंका हो, जो शंका उठे उसका समाधान करने बेटा! नरहरि, तेरी छूट है"!

"महाराज, आपकी इतनी अधिक सात्त्विक प्रकृति देखते हुए मुझे आपकी क्रोधाग्नि का भय है ऐसा मेरा प्रश्न मुझे तो मूर्खता पूर्ण मालूम होता है।"

"वास्तव में इससे कदाचित् विपरीत ही होगा। अतः आनन्द से कहो।"

"महाराज, सत्पुरुषों की शक्तियां परोपकार के लिये हैं ऐसा शास्त्र का कथन सुना है। कृपालु प्रभो! जिस समय भारतवर्ष की करोड़ों सन्तान अनेक प्रकार के दुःखों में पड़कर जीते हुए भी मृत्यु के समान जीवन व्यतीत कर रही हैं ऐसे समय में अपनी शक्तियों का सदुपयोग उनके सांसारिक उद्धार के लिये करना या योगाभ्यास में प्रवृत्त होकर कैवल्य मोक्ष पदवी प्राप्त कर स्वार्थी बन कर बैठ रहना इस विचार में मेरा मन चलायमान हो रहा है। मेरे मन क्षेत्र में, वृत्तियों में परस्पर इस विषय पर संग्राम छिड़ रहा है। भारत की सन्तानों का दुःख, उसमें भी विशेषतः हिन्दुओं का सांसारिक दुःख इतना बढ़ गया देखता हूं कि कदाचित मोक्ष प्राप्त करके भाग्यशाली बनूं तो भी हमारे प्राचीन वर्णाश्रम धर्म का लोप हो जाने से अनेकों कुदुःखों की पायमाली देखता हूं यह रोकने के प्रयत्न की ओर स्वात्मार्पण करने का प्रयोग मुझे विशेष अच्छा मालूम होता है। घड़ी भर मात्र की बात एक ओर रख कर भी एक लम्बे जीवन भर के इन ओर के प्रयत्नों का अपना भाग दिये बिना जीवन निर्माल्य हो लगता है। बड़े बड़े युद्ध जो पृथ्वी को विचलित कर देते हैं एक दम बन्द हो जाते हैं, दूसरों के साथ की लड़ाई जादू की तरह एक दम बन्द होगई। यूरोपीय महासमर का भी अन्त आया और अनेक देशों में शान्ति फैलाने का प्रयत्न हुआ किन्तु हम हिन्दुओं के जत्थे बढ़ा कर, हमारे फिरके दूर कर, हमको वास्तविक वर्णाश्रम धर्म बतलाने वाला कोई—

"वत्स! तू भूलता है," महाराज ने कहा "लॉर्डकर्जन नामक वाइसराय ने, पतित को पावन करने वाली भगवती भागीरथी के जल

चरण से पवित्र हुई बंगभूमि के विभाग करने का साहस कर, बंग देश में नया जीवन डाला यह तू मानेगा ना ? इनका उद्देश्य वह जीवन लाना तो नहीं था किन्तु प्रकृति ने उसका वास्तविक यह विपरीत परिणाम उत्पन्न किया ! वर्णाश्रम को नष्ट करने का ऐसा ही कुछ आन्दोलन आज कल सुनता हूं। इससे धर्माभिमानी हिन्दुओं को वृथा डर नहीं जाना चाहिये। मनुष्य के जीवन में जैसे सुख और दुःख का प्रसंग आ जाता है वैसे ही किसी प्रजा का जीवन भी निरन्तर सुख और शान्तिपूर्ण नहीं रहता और यह रहना जरूरी भी नहीं है। इस प्रकार ही रहे तो कष्ट और विपत्ति जो मनुष्य तथा प्रजा में नया चैतन्य उत्पन्न करते हैं इनके बिना वह जीवन शुष्क और निर्माल्य ही रहेगा। ऐसे प्रसंग आयें तब विशेष धैर्य, विशेष धैर्याभिमान की भावना से नेताओं को सचेत होकर सनुका आज्ञानुसार देश काल स्थिति या अनुसरण कर पूर्व कालीन चतुः वर्णाश्रम धर्म पुनः स्थापित करने पर कटिबद्ध होने की आवश्यकता है। एक जहाज को बीच समुद्र में टॉरपीडो प्रहार करे तो उस समय लाइफ बोट, अथवा दूसरे स्टीमरों की आवाज लगा कर उसको बदल कर पुराने स्टीमर का इस परिस्थिति के अनुसार रूपान्तर किया जाय तो परिणाम क्या निकलेगा ? संसार सागर में हिन्दुओं को 'ब्रदरहुड डिनर' के प्रसंग से एक टारपीडो का प्रहार होता है। वर्णान्तर विवाह करने वालों की संख्या कम होती, किन्तु मनुष्यों की विचार धारा लड़कियों की कमी के कारण विक्रय की बड़ी रकमों की मांग की ओर प्रवृत्त होने लगी है। इस आरसे में ऐसे विवाह का कानून बने अर्थात् हिन्दू धर्म शास्त्र जो विवाह को अनियमित मानते हों उनको न्यायालय नियमित विवाह की छाप देने लगें तो परम्परा गत वर्णाश्रम धर्म को दूसरी बड़ी टोरपीडो का– नहीं नहीं तोप का ! प्रहार सहना पड़े क्यों कि जिस वर्णाश्रम धर्म ने यवन सम्राटों के शासन काल में अंचल

अपूर्व शौर्य और स्वार्थत्याग की भावना बतलाई है और वर्णाश्रम के किले की एक कंकरी भी गिरने नहीं दी है वह बड़ीसे बड़ी तोप की टक्कर झेलेगा और कसौटी पर उतरेगा। तथापि हिन्दू धर्माभिमानियों को समयसे चेतकर समयानुसार वर्णाश्रम धर्म को ठेठवाड़े में भेजने की बात बढ़ने पावे उससे पूर्व प्राचीन वर्णाश्रमधर्म को ठीक ठिकाने लाने का प्रयत्न करने की आवश्यकता है!

नरहरि—बीच में बोलने पर क्षमा करें। टोरपीडो लगने पर स्टीमर को तुरन्त बदला जासकता है परन्तु मनु जैसे महात्मा पृथ्वी पर मौजूद नहीं हैं, ऐसे समय में करोड़ों मनुष्यों का वर्णाश्रम धर्म बदलने का भयंकर साहस किस प्रकार करना?

महाराज—निर्भय रहना, धैर्य और हिम्मत रखना, सुकर्मों के आगे कुछ अशक्य हो ही नहीं सकता; ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्यों की पूर्ववत एक थी जैसी ज्ञाति बन जाय, ऐसे प्रत्येक ज्ञाति के हजार दो-दो हजार मनुष्य उद्यत हो जांय और वे अपनी आगे की ज्ञाति बनावें जिसमें परस्पर कन्या व्यवहार प्रारम्भ हो तो यह क्या असम्भव है? वर्णाश्रम धर्म पुनरपि स्थापित करने का जिसका जैसा आशय है उसको पूर्ण करने लाखों करोड़ों मनुष्य सन्मुख आवें तो यह विचार क्या विशेष है? यदि समझो कि उतने मनुष्य भी देश के दुर्भाग्य से न मिलें तो लोकमत संग्रह करना चाहिये। देश अज्ञान और अन्धकार से घिरा हो उस समय उदय बतलाने वाले यन्त्र पर भी काठ चढ़ आता है। अतः घबराना नहीं चाहिये। हाथ खोलकर देश में शिक्षा का प्रचार करना चाहिये। कैसी शिक्षा? सामाजिक शिक्षा। आज कल दी जाती है वैसी रटन्त विद्या की शिक्षा नहीं। देश में जन्मे वीर पुरुष, धर्मोपदेशक, परोपकारी नररत्न, स्वदेशाभिमानी नर पुंगवों के जीवन चरित्र वाली शिक्षा! ऐसी शिक्षा द्वारा सुसज्जित भारत की सन्तानों को फिर उपदेश देना नहीं

पड़ेगा। चलो, बेटे! अब उस कोठे में, जहाँ ऐसे वीर पुरुषों के जीवन चरित्र एकत्रित तू देखेगा!"

नरहरि जादू किये गये मनुष्य की भांति महाराज के पीछे चुम्बक के साथ सुई आकर्षित होती है वैसे पास के दूसरे कोठे में गया।

"देख, जीवन भर के एकान्त ने यहाँ इस पुस्तकालय की योजना कराई है। ये दोनों विद्वान भिन्न-भिन्न शाला के वीर पुरुषों के चरित्र यहाँ एकत्रित करते हैं। इसमें स्वामिभक्त, वीर, योद्धा हनुमानजी से लगाकर इस समय के दादाभाई नौरोजी और तिलक के समान तपस्वियों के, कर्ण सदृश जमशेदजी ताता, बृहस्पति समान गोपाल कृष्ण गोखले के चरित्रों का एकीकरण होगा जो बालकों को आनन्द के साथ गरम लाख पर छाप की भांति कोमल मस्तिष्क पर असर उत्पन्न करने वाले होंगे और उसका नाम 'वीर पूजा' रहेगा।"

नरहरि—"देव, योगाभ्यास में प्रवृत्त होने वाले अभ्यासकों के दर्शन करने का मुझ सदृश तुच्छ प्राणी को क्या अधिकार नहीं है?"

महाराज—"है, बेटे! है, आ! बिना घबराये मेरे पीछे चला आ।

महाराज के पीछे पीछे नरहरि चला। थोड़ी देर अंधेरे में चलना पड़ा परन्तु तुरन्त ही दीपक रहित अत्युत्तम प्रकाश उसके दृष्टि-गोचर हुआ। इस कोठे में उच्च कोटि के योग ज्ञान के अभ्यासी थे। वे सब इस समय अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त थे। विशेषतः उसमें लेखक थे।

महाराज—"देख, बेटा! इस कक्षा में आगे आने वाले विद्वद्वर हैं। यह एक पुस्तक लिखी जाती है। उसमें मनुष्य के जीवन का रहस्य, मन पर अंकुश रखने के लिये पृथक-पृथक उपाय जोकि मनुष्य प्रयत्न पूर्वक किस प्रकार प्राप्त कर सकता है यह बात, स्वाश्रयी रहकर अतुल

आत्म श्रद्धा पर अवलम्बन करने वाले, धैर्य से आत्मबल प्राप्त कर, आगे किस प्रकार बढ़ सकते हैं ? श्वास द्वारा वह शक्ति, बल किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है और पृथक-पृथक रक्त वाहिनी नलियों में वह किस प्रकार पहुंचाया जाता है-अर्थात् प्राणायाम के विभिन्न प्रकार, शक्ति का एकीकरण किस प्रकार किया जासकता है यह बात, शक्तिका यत्किञ्चित अनिच्छित स्थल से जाते प्रवाह को रोकने की क्रियाएँ, इत्यादि इत्यादि मनुष्य जीवन को उच्चतर बनाने के लिये अत्यन्त उपयोगी विषय लिखे जांयगे।

अब आगे की कक्षा तू उससे भी ऊँची देखेगा। यहाँ हठयोग और ज्ञान योग की पृथक् पृथक कक्षा हैं। इसमें मेरे शिष्य होते हुए भी पूर्व जन्म से उपार्जित ज्ञान वाले मेरे भी गुरु होने योग्य बड़े-बड़े विद्वान हैं। यह मेरी जैसी ही सफेद दाढ़ी वाला वृद्ध भक्तवर ! अभी समाधी में है। इसकी मुखाकृति पर ब्रह्माण्ड को हस्तामलकवत् देखने वाला निरन्तर अखण्ड अस्खलित ब्रह्म जल में स्नान किये श्रीशंकर के हास्य सदृश देख इसका मन्दहास्य !

आगे चलकर एक छोटी सी कोठरी में आसन पर बैठा एक विचारग्रस्त युवक देखने में आया।

नरहरि—"कृपानिधे ! यहाँ क्या है ?"

महाराज—"यहाँ तो कुछ भी नहीं है। यह युवक इस आश्रम का एक साधक है और सारे साधकों में मेरा इस पर विशेष हित है। इससे एक अपराध होगया है।"

नरहरि—"गुरुदेव ! आपकी छाया में अपराध को स्थान किस प्रकार हो सकता है ?"

महाराज—"अपनी भाषा में 'अपराध' कहता हूं । तुम उस व्यवहार को कुछ दूसरी संज्ञा ही बतलाते हो । यह मेरे शिष्य का पुत्र है । इस आश्रम में आने से पूर्व इससे एक सुशिक्षित कुमारी के साथ विवाह ग्रन्थी में बंध जाने का वचन दिया जा चुका है । यह जानते ही मैंने इसको आग्रह पूर्वक संसार में रहकर, पूर्णतया परिपक्व होकर, तीव्र वैराग्य उत्पन्न होने पर ही योगाभ्यास में प्रवेश करने की आज्ञा दी । किन्तु इससे मेरे प्रति पितृस्नेह तोड़ा नहीं जाता ! और उस कुमारी का नाम स्मरण भी इससे नहीं छूटता । इस प्रकार यह उभय भ्रष्ट होने जारहा है ।"

नरहरि—"तो फिर इसको क्या करना उचित है ? स्वामी !"

महाराज—"दो मार्गों के संगम पर यह खड़ा है अतः मनुष्यों को मार्ग पसन्द करने का इस प्रकार समय उपस्थित हो तो उस समय धैर्य से, कुनेह से, आत्म बल से, मन पर अधिकार रखकर एक मार्ग ग्रहण कर लेना चाहिये । इसका मन दो मार्गों के बीच दोलायमान हो रहा है परन्तु मुझको प्रतीत होता है कि यहाँ इस आश्रम में तो इस का स्थूल थैला—देह मात्र ही है । अतः इसके प्राण जहाँ आकर्षित हो रहे हैं वहाँ देह को भी इसे लेजाना चाहिये ।"

नरहरि—"परन्तु आपका यह निर्णय कैसे निश्चय हुआ होगा ?"

महाराज—"इसके व्यवहार से ही ! एक अँधेरी रात्रि को, जंगल की भयंकरता की कुछ परवाह न कर, सिंह के भय से सहज ही आश्रम की मर्यादा के भय का भी घड़ीभर एक ओर रखकर, यहाँ से दूर स्थित एक आश्रम के शिक्षालय में इसके वियोग से व्यथित एक कुमारी उग्र तप कर रही है, वहाँ यह पहुंच गया । पहुंचा किन्तु फिर भी वहाँ नहीं ठहरा । वहाँ पहुंचते ही मेरी आज्ञा के आकर्षण से तुरन्त ही वापिस यहाँ चला आया ।"

नरहरि—"तो फिर अब इस अपराध के लिये क्या शासन होना है ?"

महाराज—"यह सब मैं तुम्हारे हाथों से ही कराना चाहता हूं। मेरी आज्ञा है कि इसको इसकी इच्छानुसार उस आश्रम में ले जाओ। और इसका विवाह उस कुमारी के साथ होने दो। उठो बेटे ! बैठे हो जाओ। जाओ, इस युवक के साथ ! संसार में पूर्णतया परिपक्व होने के पश्चात् ही वेदाभ्यास के अधिकारी होते हैं।"

"इस युवक के खड़े होते ही नरहरि ने इसको अपना एक समय का सहपाठी मनहर पहिचान लिया और प्रसन्नता से उसे अपने साथ लिया।"

इतने ही में तहखाने की एक बड़ी खिड़की से आकाश दीखने लगा। इस पर नरहरि ने पूछा !

"महाराज ! यह क्या है ?"

महाराज—'हनुमानजी के आगे यहां से जाने का यंत्र है, जिसको तुम लोग 'लिफ्ट' कहते हो। यहां से ही अभी तुम्हारे लिये थाल लाया था। वृष्टि आने वाली होती है तब भूगर्भ में थोड़ा ही ताप पहुंचने से जैसे चींटियाँ ऊपर आती हैं वैसे ही इस भक्त मण्डल ने आज ऊपर आकर जागरण किया था।

"उक्त बातचीत चल रही थी कि इतने में आवाज़ सुनाई दी कि 'ओ बड़ामणी, ओ बड़ामणी ! हाय ! हाय ! गजब हुआ !"

"लिफ्ट में नरहरि को बैठाकर यह और महाराज दोनों हनुमानजी के मन्दिर के आगे, भूमि से प्रगट हुए हों इस प्रकार खड़े होगये।"

"महाराज और नरहरि ने ऊपर आकर सेठ को सिंह की तरह दहाड़ता और चिल्लाता देखा। रसोई करने वाली बुढ़िया ब्राह्मणी वृद्ध

होते हुए भी जिस वय में लड़के और बहुएं उसकी सेवा करें, उस वय में पराधीन स्थिति के कारण दिन भरके परिश्रम से सामने की कोठरी में मीठी निद्रा में, मोक्ष के सुख में, इस अच्छी तरह पड़ गई थी कि वह पास खड़े हुए बैलों की घास में आग लगने पर भी उठती। बैल हाँकने वाला लड़का तीन-तीन चार-चार वर्ष में पड़ने वाले अकालों में से एक अकाल में, भविष्य में 'संसार में स्वर्ग सुख और पीछे मोक्ष' देने वाली संतति के लिये बातें करने वालों की भांति सेठ ने कम मूल्य पर ही ले लिया था। दासत्व प्रथा तो सरकार ने कभी की बन्द करदी है यह प्रसिद्ध बात है किन्तु जब कभी मेघ राजा की सवारी बादलों के गरम गद्दों में आलस्य में पड़ी रहती है और भारतवर्ष की भूमि पर भूख से व्याकुल लाखों स्त्री, पुरुष और बालकों का त्रासजनक दृश्य, हमारी एक समय की इस सुवर्ण भूमि पर त्रास का अनुभव कराता है, तब यह दासत्वप्रथा यहाँ मूर्तिमान अवतार धारण करती है, परन्तु प्राणों से प्यारे बच्चों को बेचने वाले माता पिताओं के हृदय में इस दासता के हाट लगे रहते हैं, वहाँ से इन अकालों के कारण मेले की भांति वे भरे बाजार आखड़े होते हैं और दो-दो तीन-तीन रुपयों में कुत्ते से भी कम मूल्य में वे बेच दिये जाते हैं।"

"आभूषणों से लदी हुई, उस दिन की विवाहिता हरद्वार जाने के लिये निकली सेठानी गायब होगई है, ऐसे समय में इस दीन और हतभाग्य लड़के की कर्म कथा से अभी तुमको दुःखित कर देने की आवश्यकता नहीं है। दुःख से अभ्यस्त वह बिचारा रसोई वाली ब्राह्मणी से भी अधिक मीठी निद्रा का अनुभव कर रहा था कि वह बैलों के नीचे पड़ी हुई घास पर आ गिरा। बैल उसके नीचे की घास दांतों से निकाल कर उस लड़के को बचाकर खा रहे थे, वह घास मिलता जाती तो भी लड़का एकदम उठने वाला नहीं था, ऐसी मीठी नींद में था।"

डैलों के परों में से मेनका द्वारा उठाई गई बालिका शकुन्तला की भांति दोनों हाथों से इस लड़के को उठाते हुए महाराज ने पूछा—

"क्या है भक्तराज?"

"अरे महाराज! आप कहां गये थे? गुरुदेव! कोठे के किवाड़ खुल्टे भी टो पूछा नहीं सुणां, औड़ सेठाणी अन्दड़ नहीं हैं!" कहकर सेठ रोपड़ा।"

"कितनी देरी हुई?" आश्चर्य के साथ नरहरि ने प्रश्न किया "हमको देवालय की ओर गये हुए आधा घण्टा भी नहीं हुआ है इतनी देर में कहां गई होगी? सेठजी तुम क्या करते थे?"

"मैं टा शो गया ठा! छोटी छोड़ी कोई टब देखा" यह कहकर सेठ फिर रो पड़ा।

महाराज—"घबराओ नहीं, भक्तराज! यह मन्दिर टीले पर है और यह बात प्रसिद्ध है कि बहुत वर्षों से देवता के तेज का चोरों में एक प्रकार का स्वाभाविक भय होने से इस तरफ़ का चोर यहाँ प्रवेश नहीं कर सकता। इसपर भी टीले के चारों ओर सभी घूमा करता हुआ नाला चढ़ा हुआ है जिसमें दो आदमी जितना पानी होगा और जिसमें किसी मछुए का भी उस पार जाना आसान नहीं। केवल पूर्व दिशा में जहां से तुम गाड़े में बैठकर आये थे उस स्थान पर एक पड़ाव है किन्तु वह भी ऐसी घनी झाड़ी में है कि इस समय तो वहाँ शेर, रीछ फिरते होंगे। अतएव रकम की लालच से सोती हुई सेठानी को आकर एक-दो व्यक्ति उड़ा ले जाँय यह हो नहीं सकता तो भी उस ओर मैं प्रबन्ध किये देता हूं। किन्तु तुम धैर्य रख सकोगे?" यह कहकर महाराज ने नारियल जैसा एक शंख बजाया और 'सारे टीले पर दृष्टि डालकर तलाश करो' यह आवाज लगाते ही दो शिष्य जो बहुत सम्भव है यह सब सुन रहे होंगे बड़े वेग से दौड़ गये।

मन्दिर के टीले ने अनुमानतः तीनेक एकड़ ज़मीन घेर रक्खी थी जिसके आधे हिस्से में महाराज की तरफ़ से मन्दिर की संस्था के निर्वाह के लिये खेत वग़ैरा करा दिया गया था और दो बीघे के क़रीब ज़मीन में एक छोटासा सुन्दर बाग़ लगा रक्खा था। घोड़े की नाल पर एक हथौड़ा मार कर उसके अग्रिम खुले हुए भाग को कम किया जाय इस आकार से नाला उसके तीन ओर आ गया था। अतएव विमान में बैठकर एक हज़ार फुट ऊपर देखने वाले को भगवती भागीरथी से परिवृत एक शिवालय सदृश यह टीले का रमणीक स्थान मालूम होता था। ध्यान के समय योगिजनों को स्थूल देह के थैले से सुनाई पड़ने वाली एकही ध्वनि की भांति उतनी जगह में नाले के प्रवाह की घुघु घुघु की ध्वनि के अतिरिक्त और कुछ सुनाई नहीं पड़ता था। थोड़ी देर बाद बादल हट जाने से डूबने वाला लाल चन्द्र बिम्ब पश्चिम दिशा के क्षितिज में उतर जाने से अन्धकार हो रहा था; दो शिष्य पूर्व की ओर दौड़े, तत्पश्चात महाराज ने सेठ को नाले की पश्चिम की ओर जाने को कहा और आप स्वयं और नरहरि उत्तर तथा दक्षिण की ओर गये। रसोई करने वाला तथा बैल हांकने वाला लड़का अभी पूरी तरह जगे नहीं थे। उनको वहीं छोड़ दिया। थर थर कांपने वाला सेठ पश्चिम की ओर बीसेक क़दम भी नहीं गया था कि इतने में जिधर दो शिष्य पूरब के मार्ग की ओर जाने को निकले थे उस ओर अभी झाड़ी के बीच में जहां एक बड़ा ऊँचा कदाचित चौदहवीं सदी में लगाया हुआ 'सेमर' का पेड़ था उसकी चोटी पर चन्द्रमा के उपग्रह सदृश छोटे चन्द्र बिम्ब के प्रकाश की किरणें देखने में आईं। सेमर के वृक्ष की वृद्धावस्था को मान देते हुए भगवान शंकर ने उसे मानो दिव्य चक्षु प्रदान की हों इस प्रकार वे किरणें टीले पर इधर उधर चारों ओर फैलने लगीं और टीले को चांदनी के प्रकाश से मानो स्नान कराती

हो अथवा चन्द्रमा की किरणों से बनी हुई चाँदनी केशमार्जनी उसके शिखर पर फेरती हो ऐसा दीखने लगा। सेठ आश्चर्य चकित तो हुआ किन्तु कुछ धैर्य आने से नाले के प्रवाह तक जा पहुंचा! क्या करता? आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है ऐसा विज्ञानवेत्ता लोग कहते हैं, तदनुसार उसके हृदय में कुछ भी दिखाई न देने से उसको धैर्य को स्थान देना पड़ा! प्रारब्ध की गहन गति है! किनारे आकर उसने क्या देखा? ढाह से नीचे आई हुई सेठानी, पानी के पास जाकर वापिस लौटती और एक छोटे पगदंडी के मार्ग से प्रयत्न पूर्वक ऊपर चढ़ती देखी! दोनों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। सेठके पूछने के पहिले ही सेठानी ने मीठी आवाज़ से कहना शुरू किया:—

"मुझे नींद में चलने की आदत है। उस समय भान नहीं रहता। इससे तुम आश्चर्य मत करना। शामको इस टेगरी पर आने से पहिले गाड़े में अपनी बात हुई थी कि हरद्वार का मार्ग इस तरफ है। नींद में मुझे वही स्वप्न हुआ! इस नाले तक आते हुए ठोकर लगने से मैं कुछ घबरा भी ज़रूर गई और इससे मेरी नींद उड़गई। इसके बाद वापिस मंदिर जाने का मार्ग नहीं दीखा। इतने में यह कुछ प्रकाश सा दीखा जिससे सावधान हुई। अच्छा हुआ कि तुमको मेरा तलाश करने का शीघ्र सूझा नहीं तो सारी रात मैं क्या करती?

"अरे टेरा भला हो! हम सबको टुमने टो डोड़ा डाला। मेड़ा कांपना अभी टक नहीं गया है टुमने टो बड़ा भाड़ी गजब किया। इश डख की दवा कड़नी चाहिये!" यह कहकर हाथ घुमाकर उसपर लाया। महाराज के कानों तक उनकी बातों की आवाज़ पहुंची, और इसी प्रसंग में एक को एक 'सिगनल' देने रूप शंख, उन्होंने दोनों को वापिस आते देखकर बजाया। इसपर नरहरी और दोनों चेले भिन्न-भिन्न दिशाओं से आपहुंचे। थोड़ी देर में सैंभर के पेड़ का प्रकाश फैलता

हुआ बन्द होगया। महाराज के समीप आ पहुंचने वाले सेठ ने बीती हुई बात का खुलासा टूटे हुए शब्दों में किया।

महाराज—"धन्य है सेठानी की भक्ति को! निद्रा में भी उनको यात्रा के पवित्र स्थानों का चिन्तवन है, यह पुण्य से ही कहा जासकता है।" महाराज इस प्रकार बात करते थे कि दो शिष्यों में से बड़े ने कहा :—

"प्रभु! सेठ को आज्ञा होनी आवश्यक है कि रात्रि के शेषांश में अब ऐसी घटना न हो। जिस ओर हम गये थे वहाँ घनी झाड़ी में दो घुड़सवार सशस्त्र छिपे हुए थे, हम उनके पास पहुंचे, इतनी देर में तो उन्होंने वेग से घोड़े दौड़ा दिये थे। यद्यपि यहाँ चोर का भय नहीं है, तथापि अभी महँगाई का समय है अतएव सावधान रहना आवश्यक है।"

महाराज—"अरेरे! तुम उन दो सवारों को अपने आश्रम में ला सकते तो बहुत अच्छा होता! ऐसे समय में वे कहां जायेंगे? जीवन की अनेक आवश्यकताओं की खोज में हिंसक वृत्तियों की जन्म भूमि में आने तक बात आवे तब मनुष्यों की तंगी का प्रमाण सहज में मिल जाता है। यह आश्रम सबके लिये है। यहां आ गये होते तो उनकी वृत्ति में परिवर्तन अवश्य होता। अब चाहे तुम सब अपने अपने साथ पर जाकर सो जाओ। मैं और नरहरी भट्टी के पास बैठते हैं।"

"सेठ! भक्तराज! लो, इस ब्राह्मी नाम की बूँटी में से एक औषधी की गोली लेकर सेठानी को देदो, उससे वह निर्भय होकर सोवेंगी और उनकी चित्त की वृत्ति भी सुधरेगी।"

"सेठ दरवाजे के आगे लेट गया, सेठानी अन्दर लेटीं; अतः महाराज और नरहरी भट्टी के आगे बैठे। बैठते ही महाराज ने बोलना प्रारम्भ किया:—

संसार तव निःसार
पदवी नदवीयसा ।
अन्तरा दुस्तरा न स्यु—
र्यदिरे मदिरे क्षणा ॥

नरहरि—"आपका वचन यथार्थ है, इतना ही हम कह सकते हैं महाराज! किन्तु अब वास्तविक धार्मिक शिक्षा वाली देवियों के जन्म से भारत माता अलंकृत होने लगी है। कृपानिधान! देवी धर्मलक्ष्मी की जय हो! शिक्षा के लिये किये गये उनके प्रयत्नों ने जो तीन महिला रत्न निर्मला देवी, भद्रबाला और सरयू देवी उत्पन्न किये हैं—ऐसे रत्न अधिक उत्पन्न होने पर हमारा सांसारिक उदय हमारे सामने मिलने आवेगा।

महाराज—"तैने अपने नेत्रों से उनको देखा है?"

नरहरि—"निर्मला देवी तो मेरी माता तुल्य धर्मलक्ष्मी देवी की पुत्रवधू हैं। इनका स्त्री शिक्षा के लिये किया गया अश्रुतपूर्व सामर्थ्य मुझे समय-समय पर चकित करता है। इनके दर्शन तो समय समय पर मुझे होते हैं। भद्रबाला तो एक वनवासी तपस्विनी है। निर्मला देवी की बातों से ही इनकी प्रवृत्तियां जानी गई हैं। प्रथम तो पूजा पाठ में ही इनका समय जाता था। अब निर्मला देवी के सहवास से स्त्रियों की उन्नति के प्रश्न पर वे ध्यान दे रही हैं। सरयू देवी भी स्त्रियों की उन्नति के लिये अपूर्व प्रयत्नशील ब्रह्मचारिणी हैं। कहते हैं कि संसार उनके प्रयत्न कम समझता है, इस प्रकार वह काम किये ही

जाती है। इस विषय पर प्रसंग आने पर आपसे मैं विशेष विवेचन कर सकूंगा। अभी तो मैं विभक्त अन्तःकरण से यह बात कह रहा हूं।'

महाराज--"यह कैसे ?"

नरहरि--"कुछ नहीं, कृपानाथ ! इस सेठ की हालत देखकर मेरे मनमें कुछ विचार हो आया। एकाग्रता के लिये मनको अभ्यस्त न किया हो तब तक हमको ऐसा मालूम होगा ही। आज तहखाने के दृश्य ने मनोवृत्तियों पर अंकुश रखने का एक उत्तम पाठ सिखलाया है, प्रभु !"

महाराज--"तेरा कुछ पूर्व जन्म का सम्बन्ध था इसीसे तुझे अपने निजी जीवन में प्रविष्ट किया। लखपति लोग जैसे जवाहरात को प्रयत्न पूर्वक पेटियों में संग्रह कर रखते हैं, उसी प्रकार हम साधू लोगों का, हमारे जीवन के उच्च आशय, हमारे योगाभ्यास के कर्म, हमारा ध्येय, हृदय पेटी में संग्रहित कर रखना हमारा धर्म है। फिर किसी दूसरे प्रसंग पर तुझे विशेष बतलाऊंगा। इस भक्त की शान्ति के लिये हमको यहीं रात्रि बितानी है जैसा कि अभी मैंने कहा है।

नरहरि--"भले ही, कृपानिधान ! तो दूसरे प्रसंग पर यहाँ ही आपकी वार्ता का प्रसाद लाभ लूंगा।"

महाराज--"अवश्य, तेरी सारी शंकाओं को कह।"

नरहरि--महाराज ! अपने बालकों के हाथ में वीर-पूजा जैसी उत्तम पुस्तकें देकर, बचपन से ही उनके संस्कार धर्म की ओर प्रवृत्त करने की आप बात कहते थे। यह मैं सर्वांश में स्वीकार करता हूं। किन्तु भारतवर्ष का उन्नति मार्ग केवल बालकों को उच्च शिक्षा देने में समाया हुआ है ? भारत का दारिद्रय, जहाँ करोड़ों मनुष्यों को एक

समय पूरा अन्न मिलता नहीं है; कुछ वर्ष पहले हलकी धातु के वस्त्र बनाने की प्रथा पड़ी होगी और वे जितने महँगे होते उतने आज की कपड़े की महँगाई के कारण दीन किन्तु कुलीन स्त्रियाँ वस्त्र के अभाव से बाहर मुख दिखा नहीं सकतीं! भारत का लँगड़ा उद्योग! वस्तुतः भारतीयों में साहस नहीं, उत्तेजन नहीं, पर्यटन करने विलायत, जापान जैसे देशों में द्रव्य के बिना जा नहीं सकते, अगर जांय भी तो औद्योगिक संस्थाएं खोलने के लिये पूरी मदद चाहिये। उसपर भी भारतियों की सांसारिक अधमता! एक ओर वर्णाश्रम धर्म को वेदों में ले जाने की बातें होती हैं तो दूसरी ओर हठधर्मी अंध श्रद्धा वाले आजकी अपनी अधम स्थिति का वास्तविक स्वरूप देख नहीं सकते और एक इंच भी बढ़ना नहीं चाहते। देश काल और स्थिति के अनुसार अपने जीवनों में आवश्यक परिवर्तन करना— इस आशय को महात्मा मनु की आज्ञा भी उन्होंने एक ओर रखदी है। तत्पश्चात रह गये हमारे राजनैतिक प्रश्न उनके लिये हम लोगों में ऐक्य नहीं—"

महाराज—"बस, बस, बेटे! एक रात्रि भरकी चर्चा के लिये तैने बहुत कह डाला। स्वास्थ्य के लिये चार-पांच घण्टे की स्वस्थ्य निद्रा भी चाहिये। तुम कल यहाँ रह सकोगे?"

नरहरि—नहीं कृपानाथ! मुझे बहुत शीघ्रता से जाना आवश्यक है, तथापि प्रातःकाल अपना निश्चय मैं प्रगट करूंगा।"

महाराज—"तो अच्छा, सुन! तैने बहुत बातें कर डालीं हैं। प्रथम तो भारत के दारिद्रय की बात कही है, वह यथार्थ है। हम साधु लोगों को तुम सांसारिक पुरुषों का समागम कम है इतना हम कम जानते हैं प्रथम तो यह ध्यान में रखना! दूसरी ओर हमारे संसार से तटस्थ होने

से तुम्हारे व्यवहार का निरीक्षण तुम लोग स्वयं करो, इससे कहीं अधिक निष्पक्षपात पूर्ण हम लोग कर सकते हैं यह भी लक्ष्य में रक्खो।"

"तू दारिद्र्य की बात कहता है! पुरुषार्थ के सन्मुख दारिद्र्य टिक सकता है यह तू मानता है? भारत के भूगर्भ में स्थान-स्थान पर करोड़ों रुपयों का द्रव्य नहीं है? भूतकाल में जहाँ-जहाँ रसायनिक प्रयोगों से पृथ्वी के पारे में प्राकृतिक स्फोट (Erruptions) हुए हैं उन उन स्थानों में कुछ न कुछ द्रव्य अर्थात कच्ची धातु होनी चाहिये ऐसा इस विषय के ज्ञाता शास्त्र वेत्ता पुकार-पुकार कर नहीं कहते? भारतके शुभैषी लार्ड रे ने इसलिये बम्बई प्रान्त की खानें नहीं खोली हैं? जहाँ-जहाँ जैसे-जैसे द्रव्य हों, वहाँ की भूमिकी उपज कितने गरीबों का पोषण कर सकती है? कितने लखपतियों को करोड़ नहीं अरबपति बना सकती है? राजनैतिक सुखों में से मिलने वाले सुख प्रकृति की इस कृपा से मिल जांय वे सुखों से क्या कम हैं?

"ये मेरे जैसे एक साधु के ही विचार मात्र नहीं हैं, अच्छा! ऐसे साधनों की प्राप्ति के लिये पारसी कर्मयोगी सर जमशेदजी नसरवानजी ताता को भारत में पैदा कर मेरे प्रभु ने अपने ऊपर कैसा उपकार किया है? इसके हृदय की विशालता का विचार तुझे आसकता है? जिस भूमि में ऐसे महापुरुष जन्म लेते हैं, जिनके जीवन का उद्देश्य अपनी पददलित जाति को ऊँचा उठाना होता है उसी भूमि की सन्तान! तुम निरुद्य भी रहो तो किसका खोट है? संयोग और सहायता प्रयत्न किये बिना क्या कभी सन्मुख आवेंगे? गिरो! कष्ट उठाओ! जिन देशों के मनुष्यों को उन्नति के शिखर पर देखते हो वह स्थिति किस तरह प्राप्त कर सके हैं? यह तलाश करो! तुम्हारे लिये सीधा साफ मार्ग करके प्रकृति पुरुषार्थ के परिणाम में प्राप्ति और सिद्धि प्रदान करने का अपना अटल सिद्धान्त बदलेगी?"

नरहरि—"कृपानिधान! प्रभो! आपको मैं इतना अधिक निर्मलिय व्यक्ति प्रतीत होता हूं जो ये सारी बातें मुझमें भी भरने की आपको आवश्यकता प्रतीत होती है? मैं कहता हूं कि हमारे उद्योग के साधनों पर—उद्योग के लिये हमारे उत्साह पर, ऐसे महान दबाव रक्खे हुए हमको प्रतीत होते हैं कि हमारा पुरुषार्थ हमको एक ओर खेंचता है और हमारे ऊपर के दबावों से हम इंच भर आगे जा नहीं सकते। दृष्टान्तों से आपको समझाऊँगा। मान लीजिये कि बम्बई प्रान्त के महसूल में से अमुक लाख रुपये, दुष्काल के समय कुए खुदाने के काम के लिये, देश में नये हुनरों के लिये खोले गये कारखानों को उत्तेजन देने के लिये, कोई नये यन्त्र के आविष्कर्ता को इनाम के लिये, संग्रह स्थानों के लिये, खेती क्यारी की प्रयोगशाला के लिये, कारीगरी के प्रदर्शनों के लिये और ऐसे कामों में खर्च करने की दरखास्त की जाय तो वह..."

महाराज—"परन्तु मैंने सुना है कि अब तो प्रान्त के खर्च में तुम्हारी आवाज विशेष दृढ़ होने की योजना बनाई जारही है।"

नरहरि—"हाँ, ठीक है; सत्य है किन्तु खर्च करने के सूत्रों की मूलडोरी दिल्ली में रहेगी तो......"

महाराज—"वह भी आवेगी, क्रम क्रम से आवेगी। तीस करो! मनुष्यों की भाग्यरेखा अंकाने वाले को कुनेह से और धैर्य से काम लेना होता।"

नरहरि—"किन्तु प्रभो! अनेक मनुष्य कारोबार की नौका का सुकान बदलने में प्रयत्नशील होते हुए भी हताश कैसे होते होंगे?

महाराज—"अनेक" शब्द का प्रयोग करने में तुम्हारी भूल हो ही रही है। अनेक मनुष्यों की सामान्य इच्छा में तो इतना अधिक

ईश्वरी अंश रहा है कि वह सर्वथा अजीत है! केवल वह इच्छा लाखों करोड़ों मनुष्यों के हित की होनी चाहिये। भक्ति पूर्वक- उग्र होनी चाहिये और पापरहित होनी चाहिये। लाखों मनुष्यों ने जिस जनहित की सामान्य इच्छा में अपना आत्मबल डाला है उसके सामर्थ्य का तुझे ख्याल नहीं मालूम होता। उसकी अन्दरूनी आवाज प्रगट नहीं होती वह तो प्रभु के धाम तक पहुंच सकती है। प्राचीन काल में भक्त प्रहलाद को मेरे प्रभु ने तारा था, वैसे ही, जिस-जिस प्रजा में पूर्व में सामान्य विचार का संगठन हुआ है, वहां तू ऐसा हुआ ही देखेगा।"

नरहरि—"प···र···न्तु, प···र···न्तु···त···व- "

महाराज—"तेरी शंका मैं समझता हूं, तू यह पूछना चाहता है कि तब भारत में वैसा क्यों नहीं होता?—इस प्रश्न में ही तेरा उत्तर समाया हुआ है। आकाश में पृथ्वी जैसे अमुक नक्षत्र में से निकलने वाले अमुक प्रकार के पवन का अनुभव करती है, वैसे ही प्रजा को भी अमुक निर्माण की गई स्थिति पर पहुंचने से पूर्व मत मतान्तरों और उसके परिणामों का अनुभव करना होता है। ऐसे समय में ऐसा ही एक प्रकार का पवन बहता अनुभव किया जाता है कि सबको अपने अपने चाहे जो हो मत का आग्रह आजाता है। बरसात बरसती हो, तब छतरी पास होने पर चाहे कम भीजें, 'ओवर कोट' से देह बिना भीगे भी चाहे रह जाय किन्तु सर्दी का असर तो होगा ही। गर्मी और जाड़े की ऋतु में भी यही होगा। इस हिसाब से प्रजा में मत मतान्तर की हवा बह रही हो, उस ऋतु में स्थूल परिणामों की ऋतु का समय तो दूर ही होगा। यह हवा सबको न्यूनाधिक प्रमाण में लगेहीगी। देहधारी सांसारिक व्यक्ति इससे बचे गेही नहीं। रक्षा करेंगे तथापि उसका असर तो भोगना ही पड़ेगा। ऐसे समय में मनुष्य के क्षुद्र थोड़े जीवन में, आस-पास के सब संयोग लक्ष में रखकर ही परिणाम की आशा

रखनी चाहिये। प्रजा के किसी नेताने गफ़लत की हो और उस गफलत में मान लीजिये कि सारी प्रजा भी केवल उसके सन्मान के लिये शामिल हुई हो तो कदाचित् परिणाम क्षितिज में दीखेगा यदि वह अपरिपक्व और शीघ्रताका हो। जैसे पूरी तरह त्याग की वृत्ति का अनुभव करने परही संसार से मुक्ति मिल सकती है, वैसे ही यदि प्रजा को वर्षों की शिथिलता के कारण एक बड़ा दर्दनाक फोड़ा हुआ होने पर उसको 'पुल्टिस' रूप आवश्यक सेक न हुआ हो और कच्चा ही फूट जाय या फोड़ा जाय तो उसमें बड़ी मतमतान्तरों का भय उत्पन्न होजायगा। अतएव प्रजा का विशेषांश अमुक मत का न हो तब तक आगे बढ़ने का उपदेश देने वाले नेता उन्नति के मार्ग में बिलकुल भूलते हैं। दही स्थूल रूप में होता है, मक्खन होने से पहिले उसका मठा के रूप में मन्थन होना ही–होना ही चाहिये। उसमें पानी मिलेगा, रई भी लगेगी, मतमतान्तरों की भाँति अनेक दिशाओं में बिलोया भी जायगा, ऐसे समय में माखन का उतावला मेरा प्रभु श्रीकृष्ण छाछको दही सहित पी जाता, ऐसा नहीं होना चाहिये। क्योंकि माखन सन्तोष पूर्वक न आने देने से माता यशोदा अप्रसन्न ही होती होगी।"

नरहरी—"तो फिर परमात्मा ऐसी स्थिति क्यों रहने देते हैं?"

महाराज—"ये सब तुम्हारा आन्दोलन, परमात्मा को मानो एक ओर रखकर ही देखने में आता है। परमात्मा से व्यतिरिक्त, तात्कालिक फल के लालची, अर्थात् कीर्ति के चाहने वाले, जीवन के थोड़े होने का ख्याल भूले हुए, कर्तव्य परायणता को मर्यादित करने वाले, उतावले, संसारिकों का ही ये हुल्लड़ है! धर्म जिज्ञासु जनोंको परोपकार वृत्ति संपन्न होते हुए केवल तटस्थ रहकर देखना मात्र रहजाता है, दूसरा मार्ग ही नहीं।"

नरहरी—"तो क्या इस हमारे आन्दोलन में आप जैसे परोपकार वृत्ति सम्पन्न साधु पुरुषों की सहानुभूति नहीं है?"

महाराज—"नहीं क्यों? है। तेतीस करोड़ मनुष्यों के कल्याण के मंत्र जप में साधू अलग रहें तो फिर उनका साधूपना कैसे कहा जा सकता है? परन्तु उसका वास्तविक स्वरूप दूसरा ही है; हमारे परोपकार की कक्षा बड़ी है। भारत को जैसे तू सम्प्रति स्वदेश मान बैठा है, वैसे सारा ब्रह्माण्ड ही हमारा देश है। उसके मनुष्य ही नहीं परन्तु प्राणी मात्र ही हमारे कुटुम्बी हैं। इन सबका भला चाहने में भारत का भला भी आही जाता है। सबजनों को सुखी देखने की इच्छा से हम लोग सुखी होते हैं। चाहे देर से हों परन्तु चिरकाल तक सुखी हुए बिना नहीं रह सकते। एक अच्छे विचार का स्थूल रूप होता है और सूक्ष्म वातावरण में इसके आन्दोलन होते हैं। देह में, जहाँ तक सम्भव है वहाँ तक देश को अपना घर मान कर उसके प्रयत्नों में प्रवृत्त होने की स्वाभाविक वृत्ति होती है। ईश्वर की रचना ऐसी प्रतीत होती है, किन्तु देह छोड़ देने के बाद इस मान्यता की मर्यादा असाधारणतया बढ़ जाती है। एक देशाभिमानी प्रजा का नेता देह छोड़े उसके बाद उसकी आत्मा को अत्यन्त आग्रह पूर्वक जीवलोक में बुलाने के प्रयोग होते हुए भी वह जीव पुनः अपने स्थान को जाने का अत्याग्रह करता हुआ देखने में आता है। यह क्या तैंने नहीं सुना है? सुना जाता है कि प्रातःस्मरणीय प्रो० गोखले की आत्मा को पूना में कितने ही धर्म जिज्ञासुओं ने बुलाने की क्रियाएँ कीं, और उन्होंने वापिस जाने की शीघ्रता की यह तू जानता ही होगा। इसका कारण यह है कि मृत्यु के पश्चात् उच्चकोटि की आत्मा के लिये विचार का-कर्तव्य का, क्षेत्र इतना विशाल होना चाहिये कि देह धारण करते समय की स्थिति का कर्तव्य उसके आगे अणु समान लगता है। हम

योगाभ्यासी देह सहित इसी विचार में विचरते हैं अथवा विचरने के अभ्यासी कहलायेंगे। इस प्रदेश में देह नहीं है—देह तो यहीं फेंक दिया अतएव जाति नहीं—देह के ही साथ लगे भूख, प्यास, मोहादिक विकार भी कहाँ से हों ? समय भी इस प्रदेश में बरफ की भाँति गल जाता है। आवाज़ भी वहाँ अनावश्यक प्रतीत होती है। पदार्थों के नाम भी वायुरूप धारण कर मानो लुप्त होजाते हैं। विचार भी विचारने की आवश्यकता नहीं है। जैसे वहाँ मृत्यु नहीं है वैसे ही जीवन भी मानो नहीं है। आत्मा की वह स्वतंत्र स्थिति थी, है और रहेगी ही। इसमें मृत्युलोक का 'अहमत्व' गल जाता है इस प्रदेश में अलौकिक, चिरस्थायी, मनसे, अगम्य, अकल्पित, आनन्द बहा करता है। इस ब्रह्मजल में स्नान किये हुए आत्मा की वास्तविक स्थिति का वर्णन करने में जिह्वा और भाषा असमर्थ हैं। निद्रा से उठा हुआ मनुष्य स्वप्न पर विचार करे इस भाँति मृत्यु के बाद इस विशाल प्रदेश को निहारता हुआ आत्मा कर्तव्य के लिये बड़ा क्षेत्र देखता है।"

नरहरी—"तब क्या हम सबको ऐसे योगी होजाना चाहिये ?"

महाराज—"सब नहीं होसकते। कहनेका तात्पर्य ठीकठीक समझ ! सब प्राणियों को सुखी रहने की इच्छा करने पर ही हम सुखपूर्वक रहेंगे। यह महा मंत्र मनमें ठसाकर काम लेना चाहिये। तेरे ही मनमें बसे हुए कार्य क्षेत्र के उदाहरण से तू विशेष समझ सकेगा। स्वदेशी का प्रचार बढ़ा है और अभी बढ़ता ही जाता है। जन्म भर सैकड़ों व्यक्तियों के अब विरुद्ध प्रयत्न हों तो भी वह कम नहीं हो सकता। स्वदेश में बना कपड़ा ही केवल नहीं, परन्तु प्रत्येक वस्तु भारत की बनी हुई काम में लाने की आदत करोड़ों मनुष्यों के अन्तःकरण में घर कर रही है। तात्पर्य यह कि विदेशी वस्तुओं पर त्याग वृत्ति हो ही रही है। ऐसे समय में विदेशी वस्त्रों की होली जलाते समय

पंचमहाल के जंगलों में घास काटती, वहां के संकट के निरीक्षण के लिये गये हुए शास्त्री को देखकर घास से अपने अंग ढंकने वाली भारतीय बालाओं को भूल नहीं जाना चाहिये। जिन जिन कारणों से जिनको भारतीय कहने का अधिकार है ऐसे अनेक मनुष्यों के अन्तःकरण में चोट पहुंचे ऐसे प्रसंग पर कुनेह से दीर्घ दृष्टि से काम लिवाना चाहिये। प्रकृति द्वारा ईश्वर अनेक स्थानों पर परस्पर कलह प्रसंग उपस्थित कराकर हमारे कान खोले और तभी निश्चित कार्यक्रम में आगे बढ़ते रुकें उसके पूर्व ईश्वरी भाषा पढ़ने का अभ्यास करना चाहिये।"

नरहरी--"तो हमारे कार्यक्रम में आप योगियों की दृष्टि से कैसे परिवर्तन करने चाहिये?"

महाराज--"लोकमत अच्छी तरह शिक्षित हो तब कोई कदम बढ़ाया जाय उससे पहिले प्रजा का मत शिक्षित करने के लिये निरन्तर प्रयत्न जारी रहने चाहिये। लो० मा० तिलक ने सरदार गृह में अपने देहान्त से बीस दिवस पहले यही सूत्र कहा था कि 'जन समूह पीछे आता है यह समझूंगा तभी मैं तो एक कदम आगे भरूंगा'। महात्मा रानाडे का यही कथन है कि—कम से कम विरुद्धता हो वहां से ही कोई सुधार प्रारम्भ हो सकता है। नेता का नेतापना श्रेष्ठ तभी माना जायगा कि जिन लोगों के सुख के लिये कोई ध्येय बनाया गया हो, वह उनको कम से कम असुविधा के पार पड़े। देर से हो तो समय की कुछ उम्र नहीं है। भावी प्रजा हमारे प्रयत्नों का परिणाम भोगे और ऐसा करते हुए साम्प्रतिक कितने ही अनिष्ट रुकें तो भी सन्तुष्ट होना चाहिये। प्रजा का मत शिक्षित होने तक नीति की पूर्ण शिक्षा प्रजा को मिले ऐसे प्रबन्ध होने चाहिये और इस नीति शिक्षा में स्त्री शिक्षा को पुरुषों को देने की शिक्षा जितनी ही उपयोगी नहीं नहीं अधिक उपयोगी मानना चाहिये। भारत में

सौ में एक स्त्री अभी शिक्षित होगी। तुमने स्त्री शिक्षा में यह चर्चा प्रारम्भ की है और उसमें धर्मलक्ष्मी-निर्मला-भद्रबाला-और सरयू ये स्त्री रत्न गिनाये, परन्तु उनकी संख्या यहीं अटक जाती है।"

नरहरी—प्रभो! इस जंगल के तहखाने में बैठे बैठे आप संसार का भी निरीक्षण किस प्रकार करते होंगे?'

महाराज—"हम लोग अपना वेष सहज में बदल कर तुम्हारे शहरों में, तुम्हारे सार्वजनिक पुस्तकालयों में कभी कभी भाषणों में उपस्थित होते हैं। जन स्वभाव का परिचय संसार पर परोपकार करने में उपयोगी हो जाता है। निर्मला, भद्रबाला और सरयू के नाम तैंने गिनाये परन्तु इन तीनों के स्वभाव से कार्य-क्रम की दिशाओं का भिन्नता तक स्त्री शिक्षा देश में कितनी बढ़ी है? यह देखने के लिए, हम प्रसंग वश ही जान पाते हैं। इन तीनों में से निर्मला महेन्द्रप्रसादके पुत्र रत्न लक्ष्मीप्रसाद को ब्याही है, यह भी हम यहाँ रहते हुए जानते हैं, मनहर और भद्रबाला के विवाह का योजना तेरे सामने हुई। सरयू देवी अद्भुत पराक्रम वाली है और ब्रह्मचारिणी रहने की इच्छा रख कर परोपकार करने में जीवन बिता रही है, यह हम जानते हैं। ऐसी सुशिक्षिता स्त्री तुम को कदाचित ही प्राप्त होगी।

नरहरि—सरयू देवी का दासी का भी दास होना मुझ जैसे अनाथ के भाग्य में कहाँ है?"

महाराज—'और जो ऐसा हो तो मैं कहता हूं कि संसार में परिपक्व होनेके बाद ऐसे आश्रम का सेवन करने से तेरे अनेक जन्म के अनिष्ट दूर होंगे और संसार पर तू अनेक उपकार करेगा, यह मेरा आशीर्वाद है। अब बहुत देरी हुई है, मेरे ख्याल से अब विश्राम करें किन्तु मुझे तुझ जैसे सुशिक्षित युवक के सद्व्यवहार से सन्तुष्ट होने के चिन्ह स्वरूप तुझे कुछ देना चाहिये।'

महाराज ने कुछ इशारा किया, और उनकी जितनी ही अवस्था वाले एक वृद्ध तपस्वी, जो तहखाने में समाधि में देखे गये थे ऊपर आये।

महाराज—'ले, यह मेरे एक स्नेही योगी भाई की भेंट! पूर्वाश्रम में वे तेरे पिता के चचा थे। जिनके समीप से तू यहाँ आ पाया है। अब तू अपने को अनाथ नहीं बतलायेगा ऐसी मेरी आज्ञा है।'

मैं तो स्तब्ध होगया! और अपने पिता के चचा से सहर्ष मिला। उनकी योग की क्रियाओं के कारण जर्जरीभूत उनकी नसों को श्रम होगा, ऐसा प्रतीत होने पर ही हटा। इन्होंने मेरे मस्तक पर हाथ फेरा और फिर फेरते हुए बोले—

'संसार में तुझे आत्मीय की आवश्यकता पड़ने का प्रसंग आवेगा तो मुझे खबर मिलने पर मैं अवश्य तू जहाँ होगा वहाँ आऊँगा" यह कह कर मानो फिर तहखाने में वे अदृश्य हो गये।

महाराज—"अच्छा, अब नरहरि, इस चर्चा से कुछ गरम किन्तु पवित्र हुए मेरे मस्तक की इस स्थिति में, हम मातृभूमि का वन्दन कर विश्राम करें, ला! मेरा वह इकतारा!"

'वन्दे मातरम्'' ......"

"महात्माजी ने खड़े होकर, हनुमानजी के सन्मुख जाकर, हाथ में इकतारा लेकर ऊपर के पद की प्रथम टेक राग के साथ गाई कि तुरन्त पृथ्वी से प्रकट हों, इस प्रकार मानो शिष्यगण समूह चारों ओर खड़ा होगया और सबने दिवस के शुभ कार्य की समाप्तिसूचक एवं लघु निद्रा का आवाहन करने वाला गायन साथ साथ खड़े होकर गाना प्रारम्भ किया:—

"वन्दे मातरम्, सुजलाम्, सुफलाम्,
मलयजशीतलाम्,…शस्य शामलाम् मातरम्,
शुभ्र ज्योत्स्नां, पुलकित यामिनीम्,
फुल्ल कुसुमित, द्रुमदल शोभिनीम्,
सुहासिनीम्, सुमधुर भाषिणीम्,
सुखदाम्, वरदाम्, मातरम्—वन्दे मातरम्,
त्रिंशत् कोटि कंठ कलकल निनाद कराले,
षष्टि कोटि भूजै धृनसर कराले।
(केवले मातु अबले)… के बोले मातु तुमि अबले
बहुबल धारिणीम्…नमामि तारिणीम्
रिपुदल वारिणीम्—मातरम्—वन्दे मातरम् ॥"

महाराज—"बस, अब शेष किसी दूसरे प्रसंग पर। तुम अब स्वस्थ निद्रा लो! जिससे स्वास्थ्य प्राप्त कर सुकर्मों के लिये प्रातःकाल पुनरपि प्रयत्नवान बनो।"

सेठ यह सब खड़ा देख रहा था। उससे बोले बिना रहा नहीं गया कि 'सेठाणी की जैसी अजब निडड़ा नहीं, स्वष्ट निडड़ा!'

❀ परिच्छेद २० वां ❀

"पांडुरंगी की पहारियन"

प्रातःकाल हुआ। परमात्मा के गीत गाते पक्षियों के मधुर शब्द से और महाराज के जल्दी उठकर गाये हुए प्रातःकाल के भजनों की मधुर ध्वनि से आश्रम की भूमि के आस पास का वातावरण गम्भीर पवित्रता धारण कर रहा था। परिश्रम के कारण रात्रि भर पूर्ण मीठी निद्रा लेने से यात्रियों में से रसोई करने वाली ब्राह्मणी बुढ़िया सबसे जल्दी उठी। बैल हाँकने वाले लड़के को उठाकर चैतन्य किया और पुराना गाड़ा कहिये या रथ कहिये, तर होने से साफसूफ करा कर उसमें बिछौना बिछा दिया। कोठे में से लड़के को उठाकर उसमें सुला दिया, इतने में सेठ उठा।

"अड़े वड़ामनी! शेठानी टो बराट लेकर आटे नींद में जैसे चलटे हुए ठ इश टरह राट को भी नाले की टरफ चल निकले ठे।"

"हैं, हैं, ग़ज़ब हुआ! फिर किस तरह वापिस आये।" बुढ़िया ने कहा—

"ये टो महाड़ाज की अजब किड़पा से ही टो! डो चाड़ आडमी डौड़ा डिये। नाले में चढ़ाव नहीं आया होटा टो पता ढेड़ शी लगटा। अच्छा अब टुम चलने की टैयाड़ी कड़ो।"

'सेठानी जी जो तैयार होकर बैठी थीं आकर गाड़ी में बैठगई, और सैकड़ों चूहों के चूं चूं की आवाज की तरह गाड़ी चलने लगी। बुढ़िया पीछे पीछे चलने लगी।

इसी समय नरहरि जल्दी उठकर महाराज की आज्ञा लेकर अपने वृद्ध चचा को भी अनेक प्रणाम कर, साथके लोटे में गरम किया हुआ दूध रखकर गाड़ा चलने की राह देखता बैठगया। एकाध मील तक मनहर को उसके साथ ही आना था, बाद में उसे पगदण्डी के मार्ग से जाना था। मार्ग अलग अलग होने पर मनहर ने नरहरी का उपकार माना। उसके आवागमन ने ही इसको संसारमें दिशाका ज्ञान कराया था। नरहरि ने अपना चिन्ता भार उसको नहीं बतलाया था। मिलने के अनेक प्रसंग फिर भी मिलेंगे, ऐसी दोनों इच्छा करते हुए विदा हुए।

रात का चढ़ाव उतर जाने से गाड़ा पश्चिम की ओर के नाले को सही सलामती पार कर आगे बढ़ा था। नरहरि ने गाड़े के पास पहुंचते ही सेठ से कहा कि 'मैं स्वयं सेवक हूं, यह मैंने आपसे नहीं कहा है। रास्ते चलते किसी भी यात्री को सहायता करना हमारा धर्म है। मेरे साथ यह गरम दूध है, महाराज का प्रसाद है। आपकी इच्छा हो तो इस बच्चे के लिये दूँ।"

"अरे टेढ़। भला हो! महाराज की पड़साडी है टो दोनों लड़कियों को देने दो, देने दो।"

इस पर सेठानी ने गाड़ी में बैठे बैठे सेठ को ऐसी एक कपड़े में पैर रख कर लात मारी कि जिससे सेठ गिरते गिरते बच गया। किन्तु अधिक बाट न देखते हुए नरहरी ने दोनों बच्चों को एक के बाद एक उठा लिया और लड़के भी चुम्बक से जैसे सुई आकर्षित होती है वैसे उसके हाथ बढ़ाते ही उसके पास आगये। गाड़ी चलने लगी। ब्राह्मणी और [illegible] साथ रह कर नरहरि ने दोनों बच्चों को

दूध पिलाया, 'वड़ी लड़की' ने टट्टी जाने की इच्छा प्रगट की अतएव पास के कुए से पानी निकाल लाने ब्राह्मणी और नौकर को नरहरि ने भेजा। अब नरहरी ने हृदय खोलना प्रारम्भ किया।

"कुञ्जविहारी भाई ! अब कहो, यह कपड़े तुमको किसने पहिनाये ?"

"वले भइया ! यह कपले पैलाये हैं, गैने वकस् में लक्के हैं— मालते नहीं है, अब बाबूजी के पाछु चलो।"

"चुप ! अब यहाँ बोलने का काम नहीं है अच्छा !"

बुढ़िया पानी लेकर आयी; लड़के को वापिस गाड़ी में बैठा दिया और बुढ़िया के साथ नरहरी ने बात की:—

"बुढ़िया माजी ! तुम तो रात को सो गयीं थीं, सेठानी को कुछ स्वप्न होने से वह इस तरफ चल दी उससे हम सब—"

"भइया !" बुढ़िया ने कहा "दुःखी आदमी को मेरी जैसी ही नींद आवे, नींद में आधा दुःख भुला जाता है।"

नरहरी—"माजी ! सेठ जी के लिये रसोई करदी, फिर ईश्वर का स्मरण करना उसमें तुमको कुछ दुःख होगा ऐसा भला कौन जानेगा ?"

बुढ़िया—"अरे भइया ! मेरे जैसा संसार में दूसरा कौन अधिक दुःखी होगा ? बड़ा दुख उठाकर एक बेटे को बी० ए० की परीक्षा में पास होने तक पढ़ाया और फिर—"

नरहरी—"अरे रे ! वह मर गया ?"

बुढ़िया—"मर गया होता तो कुछ दूसरा ही रास्ता निकलता। भाग्य में नहीं था, यह सोच कर दिलासा दिया।"

"तब क्या हुआ ?"

"अरे, जो हुआ है वह मेरा दिल जानता है।" कहकर बुढ़िया ने लम्बी साँस छोड़ी।

"कहने की बात न हो तो कुछ हर्ज नहीं, और कह सकती हो तो कहो, उसका कुछ मार्ग निकलेगा।

"मार्ग तो क्या निकलेगा? सुनो; जब लड़का मैट्रिक की परीक्षा में पास हुआ तब तक इसकी बुद्धि ठीक थी। बाद में एक पड़ोसी के उच्छृंखल लड़के की इसको सोबत लगी। उसके साथ वह एक मण्डली में मिल गया; मैं घर में ठाकुरजी की सेवा रखती, लड़का बाहर से क्लब में जाकर आता और बूट चढ़े होते और चढ़ा चला आता! मुझको इससे क्रोध होता तब कहता कि बुढ़िया तू पागल हुई है। इसकी उद्धताई घट न हो और हमारे कुटुम्ब की आबरू के लिहाज़ से इसको कोई अच्छे घर की लड़की मिल जाय इसलिये मैं चुपचाप इसका ऐसा आचरण सहन करती। इतने में एक प्रतिष्ठित और श्रीमन्त कुटुम्ब से इसके लिये लड़की की माँग आई। मैंने वह स्वीकार कर लिया और टीका चढ़ाने का दिन निश्चित किया, परन्तु भाई ग़रीब का भाग्य ग़रीब होता है। जिस दिन टीका करने का मुहूर्त ठहराया था उसके पहिले दिन ही भाई, जुवारीओं की किसी टोली में बैठे हुए लड़की के बाप ने देख लिया और टीके की बात एक तरफ रखदी गई।"

इसके बाद लड़के का मिजाज हाथसे ही गया और थोड़ेही दिनमें वह पूना, नासिक की तरफ चला गया। वहाँ से यह पत्र है! यह देखो! यह कह कर बुढ़िया ने अंगिया से एक पत्र निकाल कर नरहरी के हाथ में दिया। नरहरी ने उसमें नीचे लिखे अनुसार लेख देखा।

"माताजी! योग्य 'हिन्दुस्तान देखने के लिये निकला तुम्हारा पुत्र उद्धतलाल बी० ए०--

"जिसको बारहखड़ी भी पूरी आती नहीं, ऐसी माता के लिये मुझ जैसे को क्या लिखना, इसका मुझे विचार पड़ रहा है किन्तु

कदाचित् कारणवश मेरी गैरहाजिरी से तुम मुझे मर गया समझ कर अपने पुराने स्वभाव के अनुसार आत्मघात करने को तत्पर न हो जाओ इसीलिये यह पत्र लिखना पड़ा है।

"आजकल होते मेरी उम्र तेईस वर्ष की हुई है। अम्बाशंकर शास्त्री के यहां से पाठशाला उठगई है वहएक तरह से निर्जन हो गई है नहीं तो एक अनघड़ के साथ जुड़ना पड़ता! यही समझना! मैं अब तुमको अपने विवाह की उपाधि से मुक्त करता हूं। अब तो सारी हिन्दूजाति के महासागर मे कन्या रत्न ढूंढ़ लेने का—बढ़ा लेने का जमाना आता है अतएव घबराना नहीं। लड़कियां तलाश करने का क्षेत्र बढ़ा कि चाहे जिस जाति मे सुघड़, सुशिक्षित लड़की मिल सकेगी। चाहे जिस जाति से, अर्थात् चारों वर्णों में से चाहे जिसकी लड़की लेने की अवछूट होती है। कदाचित् ढेड़ जाति की ही हो तो भी योग्य लड़के के लिये योग्य लड़की मिलजाने पर जाति का विकास होने से—वर्णाश्रम धर्म नष्ट होने से, ढेड़ लड़की एक ब्राह्मण ब्याहेगा और वह विवाह नियमित गिना जायगा। कैसा हर्ष! कैसा उत्कर्ष! देश का उदय अब दूर कहां है? राजनैतिक अधिकार देने वाले भी अब कितने प्रसन्नचित्त होंगे? स्वराज्य और इस समय की हमारी अधम स्थिति के बीच केवल इतना ही अन्तर था, वह दूर होने से भारत की दुःखमयी स्थिति एकदम बदल जायगी। इस विचार तरंग से मैं अत्यन्त प्रसन्नोन्मत्त होजाता हूं। बस अब यह पत्र पूरा करता हूं। माताजी, अब मैं इस नव रचित संसार के नियमानुसार अपने विवाह के उद्योग में हूं। एक उत्तम लड़की को पसन्द भी किया है। विवाह जहां मैं हूं, यहीं होगा। आप किसी के आने की आवश्यकता मैं नहीं देखता। यहां एक अपना सम्बन्धी कुटुम्ब है वह सहायता करेगा तो स्वीकारूंगा अन्यथा किसीकी आवश्यकता नहीं है। ऐसे आत्मभोग

बिना संसार का सुधार नहीं होता। रेवरैन्ड वटनवर्थ ने जो ऐसा कहा था वह ठीक निकला! तुम मुझे उत्तर देने की चिन्ता में मत पड़ना। केवल चढ़ाने की रक़म जो हमने बनवाई हैं वे नासिक के पोस्टमास्टर की मारफत मुझे दसेक दिन में मिलजांय ऐसा प्रबन्ध करना। अन्यथा वह लेने के लिये मुझे खास व्यक्ति भेजना पड़ेगा। अभी तो मैं उस तरफ आने का विचार करता नहीं। बक़लम खुद।"

"पत्र पढ़कर नरहरी को बुढ़िया की स्थिति पर बहुत दया आई। उसने पूछा—"

"तब तुम चढ़ाने की रकम अपने लड़के को भेजोगी या नहीं?"

बुढ़िया—"तुम ऐसा करने की सलाह देते हो? उसको तो मैंने पीसने पीस कर शिक्षा दी है वह कमा खायगा, किन्तु मेरी वृद्धावस्था किस तरह गुजरेगी? ज़ेवर एक सेठ की कोठी में अमानत रक्खे हैं और मैं इस विचारे भाले छिटले सेठ को रसोई बनाकर गुज़र करती हूं।"

"उपरोक्त बातें हो रहीं थीं कि इतने में आगे जाते गाड़े का रात्रि की वृष्टि से तर होने से एक पहिया निकल गया। यहाँ से स्टेशन अब आधा माइल रह गया था, और यह भी घटना एक गाम के सामने पटेल के घर के समीप हुई थी। नरहरी ने एकदम प्रहलाद को तारने दौड़े भगवान की भाँति दौड़ कर दोनों लड़कों को उठा लिया। सेठानी भी सम्हल कर नीचे उतर पड़ीं। गाड़ी पटेल के घर रख दी। सब सामान बैल हाँकने वाले लड़के और ब्राह्मनी को उठाना पड़ा। केवल सुपारी के चूरे का बटुआ सेठ ने लिया और रोकड़ की छोटी संदूक सेठानी ने साथ लेली। दोनों लड़कों को दोनों कन्धों पर बैठाकर गुरु दत्तात्रेय सा मालूम होता नरहरी शीघ्रता करता स्टेशन की तरफ

चला और उसके पीछे सेठ, सेठानी, ब्राह्मनी, बैल हांकने वाला लड़का सब करीब पाव घंटे गाड़ी के समय के पूर्व आ पहुंचे। यहां जंकशन स्टेशन होने से लगभग सारे दिवस और विशेषत: गाड़ी के समय एक प्रकार का मेला सा रहता था। सेठ और सेठानी टिकिट खरीदने के काम में व्यस्त थे ऐसे में नरहरी की दौड़ादौड़ दूसरे ही प्रकार की देखने में आई। उसने तारघर में जाकर दो जगह तार दिये, स्टेशन पर घूमते एक पारसी गृहस्थ से मिला और उसके साथ दो तीन मिनिट बात की। एक पहिचान वाले के साथ टिकिट मंगा लिये और गाड़ी के आते ही एक डिब्बा खाली सा देख कर उसमें सेठ, सेठानी, ब्राह्मनी, दोनों लड़के और गाड़ी हांकने वाले लड़के को बैठाकर स्वयं बैठ गया। ऐसे में ही एक पारसी स्त्री पुरुष उसमें आ बैठे। उनके पास दूसरे दर्जे का टिकिट था तो भी तीसरे दर्जे में आकर बैठने का कारण सेठ ने पूछा। उसके जवाब में पारसी सज्जन ने कहा कि दूसरे दर्जे में दो सिपाही शराब पीकर बैठे होने से उनको यहां आने की आवश्यकता पड़ी है। बुढ़िया सकुचाकर बाई के पास जा बैठी इतने में दो सज्जन 'जनाब, दो मनुष्यों को जगह देंगे ?, कहकर अन्दर घुसे। इस प्रकार ग्यारह व्यक्तियों के बैठने के बाद गाड़ी चलने में एकाध मिनिट बाकी रहा होगा कि सफेद साड़ी पहने, रंग में कसौटी के पत्थर जैसे चमकते चमड़े वाली, सिर के बालों में नये से नये ढंग के गुच्छे बनाकर उनमें 'मलयागिरि' हेयरऑइल के टॉयलेट की भभक फैलाती एक सोलह सत्रह वर्ष की स्त्री हाथ में एक चमड़े का बैग लिये इस डिब्बे में बैठने आयी। उससे जब कहा गया कि अब वहाँ बिलकुल जगह नहीं तो उसने कहा कि "मैं दूर से आरही हूं और जगह नहीं होगी तो खड़ी रहूंगी"। अत: यात्रियों के कष्ट की ओर निर्दोष हास्य से देखते हुए पारसी सज्जन ने द्वार खोल दिया और बुढ़िया ब्राह्मनी के पास थोड़ी सी जगह करादी"।

"आप दूर से यानी कहां से आती हैं ?" पारसी सज्जन ने पूछा

"सेठजी, पाण्डुशेरी से" इस महिला ने कहा।

"नेटिव क्रिश्चियन जैसी लगती हैं।" पारसी महिला ने पारसी सज्जन के कान में कहा।

"नहीं, कोई दूसरी ही जाति है"। पारसी ने उसको उत्तर दिया।

बुढ़िया—सौंकडीशेरी तो सुना है किन्तु पाण्डुशेरी तो आज ही सुनते हैं।

पारसी—"पांडुशेरी नहीं किन्तु पाण्डुचेरी जो फ्रेञ्च लोगों का है—"

"हां वही, वही!" महिला बोली।

"तब आप गुजराती भाषा किस तरह बोलती हैं ?" पारसी महिला ने पूछा।

"जड़ में तो हम सूरत के पास रांदेर की तरफ के हैं।" उस महिला ने कहा।

पारसी—और किस जाति की हैं ?

महिला—जाति की ? जाति की ? जाति की हिन्दू दूसरी कौन ?

पारसी—हिन्दू तो ठीक परन्तु हिन्दू में किस जाति की ?

महिला—जातियाँ अब कहां रही हैं ? (या रहेंगी ?) जांत पांत अब जाने दीजिये !

पारसी महिला—तो भी कहने में आपको कुछ हर्ज है ?

महिला--नहीं, हर्ज तो कुछ नहीं, मगर अब सारी जातियां एक होगई हैं। अब क्या है ? हम असल में तो 'पहारिया' समझे कि नहीं ?

पारसी--'पहारिया' यानी ढेड़ड़ी तो ?

महिला—हाँ, हाँ, मगर उसमें क्या है ?

ब्राह्मनी--अरे तेरा बुरा हो, मुख से कहती क्यों नहीं ? दूर बैठ, छू डाला !

पारसीजोड़ा खिलखिला कर हँस पड़ा।

उस ईसाई महिला ने कहा—तुम जैसी बुढ़ियाओं ने ही हिन्दूजाति का सत्यानाश किया है !

बुढ़िया—"और तू सब दुनियां में दुःख की अग्नि बढ़ाने कहां से जन्मी है ? राँड ? ये सब सामान छू लिया ? इन सेठ, सेठानी, लड़कों को अब उपवास करना पड़ेगा।"

पारसी—बुढ़िया ! तुम शान्ति रक्खो !

बुढ़िया—हाँ, भाई, सच बात है ! मुझे और इससे किस जन्म में प्रसंग पड़ना है ? गाड़ी की सोहबत ! आते जाते का मेला ! इससे इस बात को मैं ही भूलूँगी। अच्छा भाई तुम्हारा नाम क्या है ?

पारसी—सावक सा—

बुढ़िया—श्रावक हो ? श्वेताम्बर या दिगम्बर ? और इन बाई का क्या नाम है ? तुम लोगों में नारंगी और ऐसे ऐसे ही नाम होते हैं यह ठीक बात है ?

पारसी—बुढ़िया माई ! हम तो पारसी हैं पारसी !

बुढ़िया—ठी—ई—क, तभी इस बाई ने जनेऊ की तरह साड़ी डाल रक्खी है। मुझे भ्रम तो हुआ था किन्तु भाई तुमने

पारसी टोपी नहीं पहिन रक्खी थी और हिन्दू जैसे दीखते हो, इसी से मैंने ऐसा पूछा। तुमको बुरा तो नहीं लगा ना!"

पारसी—"नहीं, नहीं, बिलकुल नहीं!"

बुढ़िया—"तुम काम क्या करते हो?"

सावकसा—"बुढ़िया माई! मैं नौकरी करता हूं और यह शीरीन बाई मेरी पत्नी है, जो घोलू दवाखाना चलाती हैं। हम लोगों में तुम्हारी तरह स्त्रियाँ सुस्त बैठी रहने का धन्धा नहीं करतीं, किन्तु पुरुष को यथाशक्ति सहायता करती हैं।"

शीरीन—"तुमको बुढ़िया के कहने पर कुछ बुरा लगा होगा, क्यों न?"

"बुरा किसका! हम शिक्षित सुधारकों को बुरा लगे तो हिन्दू सन्तान का भला होने में देर लगे।"

"तब आपने शिक्षा भी प्राप्त की मालूम होती है, शीरीन ने पूछा—

"क्यों नहीं? करीब करीब मैट्रिक तक पढ़ी हूं। फिर-"

"फिर आगे कैसे नहीं पढ़ीं?" शीरीन ने पूछा—

"फिर-फिर-फिर तो जानती ही हैं! 'प्रोपोज़ल'' का दल फूट पड़ा। फिर क्या करें?"

"फिर विवाहित होना पड़ा होगा?" शीरीन ने कहा

"नहीं अभी!"

"इस तरफ़ कहाँ जाती हैं?" शीरीन ने पूछा—

"मेरे पति एक समझदार ग्रेजुएट हैं, सुधारक हैं, उनकी मा -"

"यानी आपकी सास! यही कहियेना-" शीरीन ने बीचहीमें कहा-

"हाँ, हाँ, समझिये तो ऐसा ही हुआ, मगर वे कुछ पुराने खयाल की, असली हटी, पहिले की ब्राह्मनी जाति की हैं, और मुश्किल से समझने वाले काठियावाड़ में रहती हैं। हमको नौकरी तलाश करने या दूसरा धन्धा शुरू करने से पहिले कुछ रकम चाहिये उसके लिये मैं उनके पास जाती हूं।"

"उनके पास रक़म होगी?"

"रक़म वकम तो कैसी? सारा हिन्दुस्तान मुल्क-गरीब! तब इन लोगों के पास रक़म कहाँ से हो? फिर भी मेरे पति ने कितनी ही रक़में बनवाई हैं —"

"वही लेने जाती हैं? ठीक है, मैं समझ गई; आपके सुधारों के मकसदों पर हमारी हिज़्लोज़ी है मगर सुधार आगे बढ़ाने की धुन में आपको अपनी सास को ग़रीब हालत में नहीं रखना चाहिये। इसपर ध्यान रखना। मैं तो एक मामूली बात कहती हूं, बुरा नहीं मानना। अच्छा, मगर पुराने खयाल वाली सास वे रकम आपको देंगी कैसे? माफ़ करना, मुझे कुछ शंका हुई इससे पूछती हूं।"

इतना कहने पर तो उस महिला ने अपना बेग खोला और उसमें से एक पत्र निकाल कर शीरीन को दिया।

इसी समय गाड़ी चलने के लिये सीटी हुई, बुढ़िया जो सामान नीचे डालने को बढ़ी थी, वह नीचे से ऊपर चढ़ गई।

नरहरी गाड़ी में उपस्थित प्रकरण का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन कर रहा था। बुढ़िया के लिये उसने अपने सन्मुख सेठानी के पास दोनों लड़के बैठे थे, उनके नजदीक स्थान कर दिया और उससे वहाँ बैठ जाने को कहा। 'अब अगले स्थान पर सबके कपड़े मुझे धोने पड़ेंगे' इस प्रकार बड़बड़ाती बुढ़िया नीचे बैठ गई।

शोरीन बाई ने वह पत्र पढ़कर देने वाली महिला के समक्ष कुछ देर देखकर एवं दृष्टिमात्र से ही उसकी सम्मति लेकर अपने पति को दे दिया। शास्त्रकार दोनों लड़कों को देख रहे थे, उन्होंने वह पत्र ऊपर से देख कर नरहरी को दे दिया। वह पत्र बड़े अच्छे कवर में था। काग़ज़ की महगाई का समय देखते हुए अन्दर का नोट पेपर भी चित्ताकर्षक दीखा। नरहरी वह पढ़ने लगा—

"माताजी योग्य–तुम्हारे पुत्र उद्धतलाल बी० ए० का प्रणाम।

"संयोगवश यह दूसरा पत्र आपको लिखना पड़ता है जिसकी पहुँच लिखना। हिन्दुओं में लड़की तलाश करने के लिये समूह हद से ज्यादा संकुचित हो गये थे, उनको प्रशान्त महासागर जितना बड़ा करने के लिये मि० पटेल को कोटि कोटि धन्यवाद! मैं तो क्या किन्तु 'पोस्टेरिटी' यानी भावी प्रजा भी वर्णान्तर विवाह की सरलता से उनको धन्यवाद देगी। अस्तु! तुम जैसों के साथ मुझे उस विषय में सिर पची नहीं करना है। केवल जो सुधरे हुए विचार के हैं, जो समझते हैं कि हिन्दू जाति की एकता में हिन्दुस्तान की वास्तविक उन्नति समायी हुई है, उनके साथ ही इस विषय में हमारी बात चीत शोभा देती है। बुढ़िया पुराण को मानने वाले, बिलकुल पुराने विचार के दुराग्रही मनुष्यों के समूह को शिक्षित करने का अब समय नहीं रहा, अतएव केवल सच्चे सुधारकों को ही आगे कूच करना है। अस्तु!"

"तुमको यह पत्र लिखने का कारण दूसरा ही है। किन्तु मेरे हृदय में सुधार की लहर बड़े अधिक होने से अनायास मेरे प्रत्येक पत्र में इस विषय का इशारा आ ही जाता है, अतएव इसमें मैं निरुपाय हूं, यही कहना पड़ता है। अस्तु!"

"पहिले जो सज्जन अपने यहाँ मेरे लिये सगाई की कहने आये थे उनकी तरफ़ के प्रत्येक व्यापार को अब तिलाञ्जली दे देना। मुझे इन अशिक्षित अनघड़, अज्ञानी, मूर्ख लोगों का वैसी ही मान्यताओं के साथ अपना सद्भाग्य नहीं साधना है। भारत का उदय प्रवाह दूसरी ही दिशा में बह रहा है। अतएव मैंने उसी ओर अपने विचारों को संलग्न किया है और संसार में उसी मार्ग पर प्रयाण भी कर चुका हूं। मिस कर्णिका नाम की एक सुशिक्षिता कुमारी के साथ विवाह भी निश्चय किया है, यहाँ एक अच्छी नौकरी के प्रयत्न में हूं जो अपने सौभाग्य एवं कितने ही सुधारक महाशयों की कृपा से वह प्राप्त करने में मैं समर्थ भी हो जाऊँगा। किन्तु उस सामर्थ्य और इस स्थिति के बीच करीब ५००) रुपये की आवश्यकता प्रतीत होती है। उतना खर्च होने पर मैं अच्छी नौकरी प्राप्त कर सकूंगा, यह मेरे एक मित्र का कहना है। मेरा भाग्य इस प्रकार सुधारने पर तुम चाहे जैसे विचार की होगी तो भी तुम्हारे लिये मैं टुकड़ा फेंकता रहूंगा। यद्यपि समान विचार के मनुष्यों के प्रति ही हमारे मण्डल का हृदय आकर्षित होता है तथापि मैं वैसा करूँगा।"

"इसके साथ भविष्य में होने वाली मिसैज उद्धतलाल को भेजता हूं। उनको अपने बनवाये हुए सारे आभूषण दे देना। तुम्हें मालूम होगा ही कि अपनी कुल सम्पत्ति का स्वामित्व कायदे से मुझको ही है। मिसैज उद्धतलाल से जोर से भी नहीं बोलना, यह खास तौर से ध्यान रखना। यद्यपि वह एक अन्त्यज जाति की हैं तथापि इनका अन्तःकरण एक उच्च ब्राह्मण कन्या से भी अधिक शुद्ध है, जाति अब नहीं देखी जाती अन्तःकरण देखा जाता है। समय की गति अब इस ओर प्रवृत्त हुई है और मैं ही अपवाद रूप हो जाऊँ तो मेरी शिक्षा ही लजायगी।"

"मिसेज उद्धत को तुरन्त विदा करना, विलम्ब नहीं होना चाहिये। कदाचित मेरे इस धार्मिक कार्य से तुम्हारे विचार बदल कर सुधरे हों तो भी अभी तुमको इनके साथ आने की आवश्यकता नहीं है। अस्तु!"

अबतो केवल तुम्हारा शुभैषी—

उद्धतलाल बी० ए०।

नरहरीने पत्र पढ़कर जगा भाँप लिया। उसने मि० साबरुपा से कहा कि "उद्धतलाल दूसरा कोई नहीं किन्तु इस बुढ़िया का लड़का है, यह बात मैंने स्टेशन पर जाकर बुढ़िया के पास आये हुए उसके पत्र से जानी है।" शीरीन यह सुनकर अत्यन्त चकित हो गई।

"तब तो यह बुढ़िया और यह मिस कनिष्ठिका—अरे रे अब तो भविष्य के मिसेज उद्धतलाल, दोनों सास बहू हुए!" शीरीन ने कहा—

"हुआ, यह बात अब इतनी ही रहने देंगे, क्योंकि हमारे उतरने के स्टेशन का डिस्टेन्स सिग्नेल आता है। तुम जिस काम से इस थर्ड क्लास में बैठे हो वह काम सम्हाल लो।"

नरहरी ने अपने सामान का बेग खोल कर उसमें से दो छोटे फ़ोटोग्राफ, जिसके हाशिये पर रात्रि की वृष्टि के छींटे पड़ गये थे, निकाल कर रेल के टिकिट की भांति सावधानी से अपने बहार की जेब में रक्खे। सेठानी यह समझ कर कि अगले स्टेशन से अब बैठने की जगह का आराम होता है घूँघट ही में खुश होने लगी। मिस्टर साबरुपा को बूट पर गिरने वाली पतलून की क्रीज को ही किंचित रूमाल से ठीकठाक करने मात्र की तैयारी करनी थी और मिसेज साबरुपा को सिर की

साड़ी, वस्तुतः जहाँ की तहाँ होते हुए भी खिसक जाने के स्त्रियों के प्राकृतिक भ्रम के आधीन होकर, सम्हालने और मोटे जनेऊ की तरह साड़ी को दो तीन बार "सब्र" करने मात्र की तैय्यारी करनी थी, कारण कि दूसरा कुछ सामान पास नहीं था। इतने में स्नेहियों का संयोग कराने के पुण्य के कारण वेग प्राप्त करने वाले तथा प्रसंग-प्रसंग पर स्नेहियों को पृथक करने के पापके कारण श्याम रंग और वैसे ही कोयले का आहार करने वाले अग्निरथ (अंजन) ने गाड़ी को, नरहरी ने जहाँ उतरना विचार रक्खा था, उस स्टेशन के अहाते में जा खड़ा किया। जैसे ही गाड़ी खड़ी हुई कि रेल के डिब्बों के नम्बर ध्यानपूर्वक देखते हुए एक लाइन में खड़ी रेलवे पुलिस के तीन सिपाहियों की टोली ने मि० सावकशा को सलाम किया और सब हुक्म की राह में खड़े हो गये। सब से पहिले नरहरी उतर पड़ा। उसके बाद मि० सावकसा ने शीरीं बाई को उतरने में सहायता देकर उतारा फिर स्वयं उतरे। एक यूरोपियन ऑफीसर ने आकर मि० सावकसा के साथ कुछ बातचीत की। नरहरी ने जो पास ही खड़ा था, तुरन्त अपनी जेब से तैयार रक्खे दोनों फोटो निकाले। वे फोटो देखकर सेठानी के पास बैठे दोनों लड़कों के चहरे मिलाकर उस ऑफीसर ने सेठ और सेठानी और दोनों बालकों को एक दम नीचे उतार लेने का हुक्म दिया। उपस्थित सिपाहियों ने तुरन्त ही उस पर अमल किया। डिब्बे में बैठे यात्रियों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। बुढ़िया भी उतरनी थी, परन्तु तुरन्त ही सावकसा ने 'उसकी कुछ ज़रूरत नहीं' कह कर उसको बैठी छोड़कर गाड़ी का दरवाज़ा बन्द कर दिया। सब से अधिक सेठ को आश्चर्य हुआ। वह बोला कि 'मैं समझता नहीं, कि ये किसलिये होता है ?" यह कहते हुए उसे सिपाहियों के ताबे होना पड़ा। सावकसा ने कहा कि—"सेठ, तुमको नाहक घबराना नहीं चाहिये। अभी तो हम वारन्ट के आधार पर

तुम दोनों को पकड़ने का हमको हुक्म हुआ है और इन दोनों लड़कों को, जो इस सेठानी के किसी तरह रिश्तेदार मालूम नहीं होते, ये साहब नरहरी को दे देने का हुक्म करते हैं।"

"श्रीड वरामणी!" सेठ बोला।

"वह चाहे जहाँ जाय। उसका इस काम के अपराध के मामले से कोई ताल्लुक अभी नहीं दीखता।" यह कह कर सावकमा ने सेठ का सामान सिपाहियों से उठवाया।

"तुम टो कहटी ठीना के ये बच्चे तुम्हारे चाचा की लड़की हैं!" सेठ ने सेठानी से कहा। इसके जवाब में सेठानी ने सेठ के कान में धीरे से कुछ कहा। इस पर सेठ चुप हो रहा। अंग्रेज़ प्रोफेसर ने इस सारी घटना का हाल अपनी डायरी में आद्योपान्त लिखा। दयालु अन्तःकरण वाली बुढ़िया गाड़ी में बैठे बैठे सेठ की यह दशा देखकर रोने लगी। नरहरी ने उसके मन का थोड़े शब्दों में समाधान किया। सिपाहियों ने सेठ, सेठानी तथा उनके सामान को कब्जे में लेकर स्टेशन के 'शैड' की तरफ प्रयाण किया। पाण्डुशेरी की पहारियन मिस कनिष्ठिका या मिसेज़ उद्धतलाल और उसकी 'सास ब्राह्मनी' के कभी न देखे गए न कभी सुने गए, आश्चर्य के बीच गाड़ी रवाना हुई। बुढ़िया ने तो यही समझा कि यह कुछ स्वप्न देख रहा है!

❀ परिच्छेद २१ वां ❀

"पागल मवाली" को छुटकारे का पत्र।

से ठ गोपालदास और उनकी नयी सेठानी को रेलवे स्टेशन पर लड़के भगाने के अपराध में जब पकड़ा गया उस समय मि० सावकपा के उस अंग्रेज़ अफसर ने तस्वीरों से चहरा मिलाकर और अन्य कितने ही कार्य कर दोनों बच्चे नरहरी के सुपुर्द किये।

इस कृत्य की छानबीन के समय न्यायाधीश के आगे लोगों की भीड़ एकत्रित हो जाती। नरहरी से दुःखी बाबाजी ने अपनी स्थिति का वर्णन करते हुए कहा था कि—"गोपालदास सेठ को चेलिये का बेलिया दिया गया हो, यह हो सकता है।" वही बात सत्य निकली! क्योंकि पुलिस की छानबीन से ही निश्चय हो गया कि आभूषणों से शृंगार की गई सेठानी अन्य कोई नहीं किन्तु बेलाजी नाम का चौदह पन्द्रह वर्ष का लड़का ही था जिसको कि भोले भाले धनाढ्यों को विवाह की लालच में डालकर फँसाने को शिक्षा मिली थी। यह हाल जब सेठ के कानों पड़ा उस समय उसके शरीर से मानो कलेजा उड़ गया! सट्टेबाजी में अनेकों की रकमें जाती देखते हैं—देहान्त कारी रोग अनेकों के सम्बन्धियों को छुड़ा देता है, किन्तु हमारी मूल का जातियों की अधम दशा सुधारने, हम लोगों में जाग्रति लाने, मानो ब्रह्मा ने यह नवीन शासन पद्धति अभी जारी की हो इस प्रकार

उस सेठ का धन भी गया और आदमी भी गया। सौभाग्य से प्रतिष्ठा की पूंजी अभी शेष थी इससे वह जाने का डर नहीं था।

सेठानी—अब तो चेलाजी चेलाजी-की अरछी तरह मूछें आ जांय और पहचान में आसके उतनी लम्बी अवधि की सज़ा हुई। तलाश किये बिना विवाह करने वाला सेठ केवल ठगा गया था; लड़कों के भगाने में वह बिलकुल अज्ञात था और शुद्ध भाव से सेठानी को हरद्वार लेजारहा था। यह निश्चय होने पर वह छूट तो गया, परन्तु रुपया खर्च करके शायद ही कोई विवाहित कोर्ट से इस प्रकार खाली हाथ घर गया होगा, इस दृश्य से अनेक दर्शक मन में हँस रहे थे। उसको रकम वापिस मिल जरूर गई, परन्तु ये आभूषण-मट्टी की सन्तानें, आज उसको हृदय से मिट्टी के समान ही मालूम हुए। उच्च अधिकारी के नीचे रहकर लालकशा सांगोपांग उसी फर्ज़ में मुकदमे की छानबीन कर रहा था। नरहरी को इस हास्यजनक घटना के विषय में वह पत्र लिख रहा था कि एक पत्र के संवाददाता ने पत्र उनके हाथ से लेकर "आप लिखेंगे उससे अधिक हास्यजनक समाचार हमारे पत्र में आयेंगे" कह कर उसे फाड़ डाला।

बुढ़िया—'वढ़ामणी'—को उतारा नहीं गया था। उसके आश्चर्य चकित हो देखते देखते गाड़ी चल दी। उसके साथ नौकर लड़का था, जिसको यह स्थिति देखकर पास के दूसरे स्टेशन से एक अनाथालय का मैनेजर ले गया।

कनिष्टिका—ट्रेन की बात चीत से समझ गई थी कि बुढ़िया-ब्राह्मनी उसकी सास या कहिये कि निश्चित 'भावी सास' है। बुढ़िया को हुलास सूँघने की आदत थी; सेठ के घर में खाने पीने के सुख के

LOVE NEELAM

उपरान्त निरुद्यमी होने में उसको यह व्यसन लगा था जिससे वह कुछ कम भी सुनती थी। कनिष्टिका ने सोचा कि काठयावाड़ के गाम में जाकर उसके घरकी तलाश करने का कष्ट होता अतः यह सोच कर वह एक डिटेक्टिव की भांति उत्सुकता से उसके पीछे पाछे चली बुढ़िया यह बात कैसे समझ सकती थी ? किन्तु गाड़ियां बदलने पर जिस गाड़ी में वह बैठती वहीं यह पाप आ जाता! अन्त में अपने उतरने के स्टेशन पर जो टरमीनस से पहला ही था वह उतर पड़ी; कनिष्टिकाके पास टरमीनस तक का टिकिट होते हुए वह भी वहीं उतर पड़ी। यात्रियों का समूह ग्राम को ओर रवाना हुआ, किन्तु जिधर बुढ़िया अपने निवास स्थान की ओर जाने लगी उधर ही यह कनिष्टिका भी चली। " मर जा ! यह रांड कहां जायगी ? " इस प्रकार मनमें वह बड़बड़ायी। बुढ़िया के घर का ताला लगा था और ताली पड़ोसी के पास थी। वहां से ताली लाकर उसने ताला खोला। पड़ोसी की चबावली नामक छोटी दस बारह बरस की लड़की रिवाज के अनुसार पानी का लोटा लेकर आई और " यह कौन ? " कहकर बैठ गई। बुढ़िया ने इस लड़की से गरम पानी न्हाने के लिये मगाया और अब उसने अधीर होकर कनिष्टिका से उसके पीछे पीछे आने का कारण पूछा। " तुम्हारे लड़के उद्धतलाल के साथ मेरी शादी पक्की हुई है, समझीं ? और मैं तुम्हारे पास से रकमें लेने आई हूं। लो यह खत ! "

" रांड ! दुष्ट ! वेश्या ! क्या तू मेरे पुत्रके साथ विवहित होना चाहती है ? " यह कह कर बुढ़िया ने पत्र न लेते हुए, पास ही पड़ी हुई एक लकड़ी तीन बार कनिष्टिकाके लगाई !

उस चबावली लड़की ने उठकर चिल्लाकर दस बीस आदमी इकट्ठकर लिये! देखते ही देखते वहां गुलगपाड़ा मच गया। लोगों

का समूह बुढ़िया के घर के आगे इकट्ठा होगया। कनिष्ठिका देहली पर ही बैठी थी और बुढ़िया अन्दर जाकर सिर पीट रही थी। कनिष्ठिका ने यह सोच कर कि इस तरह बिना जवाब दिये कब तक काम चलेगा? एकत्रित लोगों में जो वृद्ध सा मालूम देता था, उसको उद्धृत का पत्र उसने पढ़ने को दिया। बुढ़िया के विचार से फजीता होने में अब कुछ बाकी नहीं रहा। इस समय उसको अगला पिछला सारा दुःख याद आगया। "इससे तो उसको बिलकुल अंग्रेजी न पढ़ाथी होती, तो अच्छा था।" इस प्रकार बड़बड़ाती बुढ़िया ने कनिष्ठिका को देहली पर बैठी रहने देकर भीतर से किंवाड़ बन्द कर दिये! इससे कनिष्ठिका खिसया गई, किन्तु नीचे ही बैठी रही। बुढ़िया ने घर में से कूए के पानी निकालने की रस्सी लेकर छप्पर के अन्दर की बल्ली में बाँध कर फांसी लगाना निश्चय किया। परन्तु बुढ़िया की अधिक काल तक गैरहाजिरी के कारण छप्पर के ऊपर का भाग जीर्ण होगया था। उसके ऊपर की खपरेल भी टूट-टाट गई थी और छप्पर में बन्दर, बिल्ली तथा चीलों ने भवकाले कर दिये थे। अन्दर कुछ मालियत नहीं थी, इस कारण छप्पर से गिर जाने के भय से चोर लोग उतरे भी नहीं मालूम होते थे तथापि बुढ़िया ने एक ठक सी दीखती बल्ली से रस्सी बाँध दी और अन्तिम प्रार्थना करती हुई बोली कि—"हे प्रभू! अछूत और ब्राह्मणों में विवाह होने का भारी अधर्म हो रहा है, फिर भी कोटि ब्रह्माण्ड के नायक! क्या इस पृथ्वी पर अवतार धारण करने का आपका समय नहीं हुआ है? अम्बे मात की जय!" कह कर गले में डोरी डाल कर अनाज भरने की एक ऊँची कोठी पर चढ़ कर वह कूद पड़ी। किन्तु जिस बल्ली से रस्सी बाँधी थी वह इतनी बोदी थी कि पाँच सेर वजन उस पर पड़ते ही वह टूट जाती। अतः तुरन्त ही बुढ़िया मय बल्ली के टुकड़े और डोरी के साथ नीचे आपड़ी। धमाका हुआ। बाहर खड़े हुए व्यक्तिओं में से दो वृद्ध सज्जन तुरन्त ही चेते। गांव में, अशिक्षित,

नीचे प्राणी ऊपर राजा

वहमी स्त्रियों में ऐसी घटना प्रायः देखी जाने के कारण उन्होंने विचार किया कि 'बुढ़िया ने गले में फाँसी बाँधी है।' छप्पर पर चढ़ कर अन्दर कूदने के लिये एक दो आदमी तैय्यार भी हुए, परन्तु चढ़ते ही विचार पड़ा कि छप्पर मनुष्यों का वजन सह नहीं सकता।

समूह में एक लुहार खड़ा था वह घर जाकर अन्दर की सांकल खोलने के औजार ले आया, जन समूह बुढ़िया को बचाने के लिये अधीर हो रहा था। परन्तु गाम में क्या युक्ति की जा सकती थी? आखिर एक साहसी युवक जिन्दगी को जोखम में डाल कर छप्पर पर चढ़ कर अन्दर जा पहुंचा। लुहार ने भी उस समय अन्दर की सांकल बाहर खींचने वाले कीलों को उठा कर खोली। समूह अन्दर घुसा। बुढ़िया एक दम सुरक्षित बैठी रो रही थी। उस पर गली सड़ी बल्लियों के पुराने टुकड़े और रस्सी पड़ी थी। तुरन्त ही यह बात गाम के फौजदार तक पहुँच गई और आत्मघात के उद्योग करने के अपराध में बुढ़िया को पकड़ कर पुलिस में ले जाया गया।

आपत्ति के समय अनेक आपदायें आजाती हैं। कनिष्ठिका समझ गई कि ये सब उसी के कारण हुआ है। अतएव यह बात प्रगट होने पर वह भी कदाचित इस अपराध में फँस जायगी ऐसा उसको प्रतीत हुआ। वह एक दम उठ कर स्टेशन की ओर चली। इस समय (टरमिनस) अन्तिम स्टेशन से गाड़ी वापिस लौट रही थी। उत्पन्न हुए भय ने उसको गाड़ी में बैठ जाने के लिये एक (पोटर) से अधिक सहायता दी। बैठने के बाद बुढ़िया की मार पर हाथ फेर कर हृदय हलका किया। उसको पहुंचाने आने वाला कोई नहीं था, यह देख कर यात्रियों को कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ, किन्तु कुछ दूर जाना होगा, यह विचार कर लोगोंने अपने मन का समाधान कर लिया।

गाड़ी चलनेके बाद एक 'यूरेशियन' ट्रैवेलिंग टिकिट इन्स्पैक्टर इस डिब्बे में दाखिल हुआ। वह कनिष्ठिका से नासिक में मिल चुका था। उद्धन के उपदेश से उसके हिन्दू होजाने का वृत्तान्त वह नहीं जानता था। सरकस के प्रदर्शन के समय बन्दरों की नाल्शी के प्रसंग में कनिष्ठिका को उसने धन्यवाद भी दिया था, वह याद दिलाते हुए वह बोला कि:—
'मिस कनिष्ठका ! इधर कहां से ?' इस प्रकार अंग्रेजी में पूछा।

कनिष्ठिका सिसक रही थी। अब उसका रोना सशब्द हुआ।

'एक ईसाई के बतौर क्या मैं कुछ मदद कर सकता हूं ?' पुनः उसने पूछा।

कनिष्ठिका ने सिर हिलाया।

उसी ट्रेन में सैकिन्ड क्लास में एक अंग्रेज पादरी जोड़ा यात्रा कर रहा था। उनसे इस इंस्पेक्टर ने यह बात कही।

दूसरे स्टेशन पर ही पादरी मैडम ने कनिष्ठिका को अपने पास बुला लिया। उसको आश्वासन देकर उससे सारा हाल पूछा। मैडम की ममता देखकर कनिष्ठिका ने हृदय के उद्‌गार निकाले और आदि से अन्त तक अपना सारा वृत्तान्त कह दिया। अपनी चोट भी बतलाई। मैडम ने अपने बक्स से साथ रखी हुई एक छोटी शीशी निकाल उसपर 'आयोडिन' लगाया।

साहब और मैम विलायत जा रहे थे। मैम की सोबड होने वाली थी और एक नर्स को साथ लेजाने के लिये अखबारों में नोटिस निकालने पर भी कोई योग्य नर्स (दाई) नहीं मिल सकी थी अतएव कनिष्ठिका का मिलाप उसको उपयोगी होगया। कनिष्ठिका एक हिन्दू ब्राह्मण युवक से विवाहित होने की उम्मेदवार है यह उसको उचित नहीं

मालूम दिया ! यदि वह ऐसा करेगी तो उसको जो कष्ट अब हैं उनसे भी अधिक कष्ट आगे आयेंगे और उसका जीवन निरर्थक हो जायगा यह उसको समझाने लगी । उसने कहा कि जिस तरह एक स्टेज पर एक्टरों के कार्य को उनसे अधिक दर्शक देख सकते हैं उसी प्रकार तुम हिन्दुओं से अधिक तुम्हारे आचरणों के हम लोग अभ्यासी हैं और तुम लोग जानोगे उससे अधिक हम जान जाते हैं । हिन्दू लोग अपना वर्णाश्रम धर्म कभी छोड़ने वाले नहीं, वर्णान्तर विवाहों की बातें एक हवा के झोंके की तरह हैं, जो कुछ काल तक हुआ करेंगी । इस समय साहब ने जो यह सब सुन रहा था कनिष्टिका को उसकी भाषा गुजराती में ही उपदेश दिया । 'बेटी' ! तू समझदार और सुशील मालूम होती है । जो पूरी तरह सुखमय जीवन व्यतीत करना हो तो तुझे वापिस ईसाई धर्म में आजाना आवश्यक है प्रभू ईशू का आश्रय तुझे छोड़ना ही नहीं चाहिये था । तुझे मालूम तो होनाही चाहिये कि ईसाई धर्म स्वीकारने से मनुष्यों के दुःख अपने आप कम होजाते हैं और अन्तमें मुक्ति मिलती है । एक बार ईसाई धर्म में आने के बाद फिर हिन्दू होना यह तो बड़ी भारी भूल है । मालूम होता है कि तुझे हिन्दू धर्म में जाने के लिये विवाह की लालच दी गई । इसमें भी तैंने भूल की है । विवाह के लिये विशाल क्षेत्र ईसाइयों में है या हिन्दुओं में ? शिक्षित, समझदार, उद्योगी होने के कारण पैसे से भरी जेबों वाले लड़के तू किस जाति में अधिक देखती है ? हिन्दू अपना वर्णाश्रम धर्म छोड़दें यह सम्भव नहीं । वह उनको परिचित कराने वाला एक महत्वपूर्ण चिन्ह है जो किसी प्रकार बुरा नहीं है । वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था को तोड़ने की ढींग मारने वाले भारी भूल करते हैं । जन समूह उनके विचारों में मिलने का नहीं । अतएव अपनी घबराहट छोड़दे और एक ब्राह्मण के साथ विवाह करने की लालसा छोड़दे । जीवन का एक क्षण भी इससे सुखपूर्वक नहीं बीतेगा । और विवाह सुख के लिये नहीं तो फिर किस

लिये हैं ? दूसरी ओर ईसाई धर्म में वापिस आने से यदि कदाचित् अभी एक अंग्रेज़ सज्जन के साथ हाथ मिलाने में तू भाग्यशाली न हो सकेगी तो भी हमारे अधिकार में देशी ईसाई युवक हैं जो समझदार, शिक्षित और अच्छे ओहदों पर हैं, उनमें से एकाद सिविलियन के साथ तेरा विवाह कराने की हम चेष्टा करें तो अपने सुख और वैभव का कुछ भी खयाल तुझे आसकता है ? इससे माता पिता रहित अनाथ लड़की से भारत का राज्य चलाने वाले एक सिविलियन की स्त्री में तेरा रूपान्तर हो जाय और गवर्नरों के यहाँ भोजों और जलसों में तुझे निमन्त्रण आया करें तो फिर स्वर्ग कहां रहा? तेरी तीसरी पीढ़ी की सन्तानें हम जैसी ही अंग्रेज बनजाँयगी इसकी तू क्या कीमत लगाती है? इसलिये ब्राह्मण और शूद्रों में परस्पर विवाह सम्बन्ध होना सम्भव है यह भूत तुझे जिसने लगाया है उसने केवल तुझे भ्रम में डाला है, यह विचार कर उसकी सलाह उसके पासही रहनेदे। यह भ्रम है, स्वप्न है वर्णाश्रम धर्म सर्वत्र है, अन्यत्र सूक्ष्मरूप में है हिन्दुओं में जैसा होना चाहिये वैसा है। तुझको जो कष्ट हुआ है वह जब मिटेगा तब यह चित्त को समझ पड़ेगा कि यह आदर्श संस्था अपने वास्तविक स्वरूप में सर्वत्र है।

कनिष्टिका— तब...मगर...साहिब ! महात्मा गांधी, सब हिन्दू एक ही होजाने का उपदेश कैसे देते हैं ?

पादरी— तू तो पागल होगई मालूम होती है। तुझे किसी ने पूरी तरह उलटे रास्ते पर समझाया है ! यह कह कर पादरी साहब ने अपना बक्स खोला। उसमें से "गांधी शिक्षण– धर्म" किताब का पृष्ट ७७ निकाल कर उसमें से पादरी ने नीचे लकीर किया गया अंश उससे पढ़ने को कहा:। ×

× श्री नगीनदास अमोलखराय द्वारा प्रकाशित "गांधीशिक्षण" से अनुवाद

"जाति भेद के पायों पर हिन्दूसमाज की इमारत खड़ी रह सकी है ऐसा मेरा मत है......जातीय व्यवस्था केवल स्वाभाविक है.....अपने देशमें उसको धार्मिक रूप दिया गया है...... जातिभेद को नष्ट करने के लिये जो प्रयत्न होरहे हैं उनसे मेरा विरोध है परन्तु ज्ञाति व्यवस्था में जो दोष आगये हों उनको अवश्य निकाल डालना चाहिये। रोटी और बेटी के अतिरिक्त दूसरे लाभ भी ज्ञातीय व्यवस्था में हैं! आज दुर्भाग्य से उसमें आडम्बर, ढोंग, विषय लम्पटता, कलह, प्रभृति दोष दृष्टिगत होते हैं। किन्तु इससे इतना ही सिद्ध होता है कि लोगों में चारित्रबल नहीं......ज्ञाति व्यवस्था की जड़ भारतवर्ष में इतनी गहराई तक पहुंच गई है कि उसको निकाल डालने के प्रयत्न करने से उसमें ही सुधार करने का प्रयत्न करना प्रशंसनीय है ऐसा मेरा मत है...

कितने ही कहते हैं कि ज्ञातिभेद रखने से भारत का सत्यानाश होगा क्योंकि ज्ञातिभेद नेही भारत को गुलामी में डुबाया है। मेरी दृष्टि में अपनी अधोगति के कारणों में हमारा ज्ञातिभेद नहीं है ... किन्तु अन्य संस्थाओं की भांति ही इस संस्था में भी अतिशयता ने घुसकर अधिक हानि पहुंचाई है। वर्णव्यवस्था में मूलतः कल्पित समाज की चतुर्विध रचना ही मुझे तो पूर्णतया स्वाभाविक एवं आवश्यक प्रतीत होती है। एक साथ भोजन करने से मित्रता बढ़ती है यह बात अनुभव विरुद्ध है, यदि ऐसा करने से मित्रता बढ़ती तो यूरोप का महायुद्ध हुआ ही न होता। असंख्य जातियों और उपजातियां में कितनी ही बार बहुत कुछ अनुकूलता हुई होगी ... ऐसी उपजातियां जितनी जल्दी एक हो जांय उतना ही समाज का हित है ... परन्तु मूलवर्ण विभाग को ही नाबूद कर देने के किसी भी प्रयत्न का मैं अवश्य विरोधी हूं।"

श्री गांधीजी के ही उपरोक्त शब्दों में उनके उद्‌गार पढ़कर कनिष्ठिका के मन को समाधान हुआ। उसकी समझ में आगया कि जाति

इसी विचार से उसको ठगा है। उसके देश में उसकी माता, उसका घर, उसकी दरिद्रावस्था देख कर उस पर उसको दुर्भाव उत्पन्न हुआ। पादरी के उपदेश में समाये हुए स्वप्न में उसे सुख दीखा। इनकी सलाह के अनुसार वह उन लोगों के साथ बंबई जाने को तत्पर हुई, 'नर्स' की तरह रहने के इकरारनामे पर सही कर नौकरी में लग गई तथा विलायत जाने वाले स्टीमर में वह उनके साथ चली गई।

उद्धत को पत्र लिखना या नहीं इस विचार में बंबई में एक रात्रि को वह बहुत देर तक बैठी-बैठी सोचती रही। इंग्लेन्ड में ही सुख पूर्वक रहने एवं विवाह करने पर यहाँ वापिस आना नहीं है, इस विचार से उसने एक पत्र उद्धत को लिख दिया।

"पागल मवाली,

तेरा पत्र लेकर तेरे देश में जाकर तेरा मकान देखा! बुढ़िया से भी मिली। वह मरी न होगी, तो कैद में तो होगी ही।

बामन, बनिये, रजपूत और दूसरे सब एक होने वाले हैं, ये सारी तेरी बातें झूठी निकलीं। तैंने मुझे बराबर ठगा, ठगने की कोशिश की, किन्तु मैं ठगाई नहीं। हमारे बीच की निजी बातें अब प्राइवेट नहीं रहीं। हमको "टाडी" और 'डाडू" वगैर जरा नहीं निभ सकता। तैंने तो वह पीने के लिये मना किया और तुझे मेरा भी वह पीना छुड़ाना था, अतएव शादी हुई होती तो भी हम लोग बहुत दिनों तक साथ नहीं रह सकते थे। इसलिये अब तो फिर प्रभू ईशू के धर्म में जाऊंगी। इतना लिखने के बाद भी अगर तुझे छुटकारे की जरूरत हो तो तू इस खत को समझना।

—कनिष्टिका"

❀परिच्छेद २२ वां❀

लालों का पता।

मंगला के आश्रम में निर्मला देवी के शुभागमन से भावी उत्तम स्त्री रत्न उत्पन्न करने वाली महिलाशाला और उद्योगशाला की स्थापना की गई थी। आस पास के गामों से महिलाशाला में आने वाली महिलाओं को निर्मला की शिक्षा से स्पष्ट समझा दिया था कि देश की उन्नति के कार्य में स्त्रियों के भाग लिये बिना पुरुषों के प्रयत्नों को बल नहीं मिलता। लक्ष्मीप्रसाद के अमेरिका से आने वाले पत्र व्यवहार द्वारा अमेरिका देश के साहसी स्त्री पुरुषों के उत्तम चरित्रों को वह जान पायी थी। अमेरिका मे खेती के कार्य को दी जाने वाली उपयुक्तता, गन्ने से शक्कर बनाने के उद्योग को भूमि में उत्तम पदार्थ प्राप्त करने के लिये अनेक प्रकार के उपाय, भूमि से रस अधिक प्राप्त हो सके ऐसे गहरी लीक करने वाले हल, इत्यादि अनेक विषयों पर निर्मला शिक्षा प्राप्त कर रही थी और वह शिक्षा महिलाशाला में जहाँ उपयोगी समझती देती थी।

इससे 'कपास से कपड़ा' नामक ग्राम के किसान खेती क्यारी के मानो अच्छे उपदेशक हो गये थे। सामान्य स्त्रियाँ देशी कपड़े से जयपुर की जैसी छापल बनाने की योग्यता पर पहुंच गई थीं। कितनी ही अचार, मुरब्बे, तेल, वारनिश, साबुन इत्यादि गार्हस्थ्य उद्योगों में प्रवीण होने लगी थी। सबके लिये एक सामान्य भोजन गृह रक्खा गया था और एक आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना की गई थी। इस औषधालय में नर्स का कार्य सुमति उर्फ लम्ब जिह्वा ने स्वेच्छा से लिया था।

लालों का पता।

लक्ष्मीप्रसाद के लम्बे पत्रों में से आवश्यकीय भाग सुमति को पढ़ने को मिलते थे। उनसे अमेरिका में संगीत द्वारा और केवल वार्ता द्वारा उपचार कर भयङ्कर गिने जाने वाले कष्ट मिटाने के उपायों से वह आश्चर्य चकित होगई थी और उन विषयों पर पुस्तकें मँगा कर वह निर्मला से सीखा करती।

धीमती खेती के काम में प्रवीण होने लगी थी। उत्तम प्रकार की रुई उत्पन्न करना, उसमें से बारीक से बारीक सूत कातना और प्रदर्शनों से पदक पाने योग्य कपड़ा तैयार करने में वह उपयोगी होगई थी। इसलिये उसको कपड़ा उत्पन्न करने वाली शाखा की अधिष्ठात्री बनाया गया था।

परन्तु धीमती की उपयोगिता आश्रम को अधिक दिन तक मिलने वाली नहीं थी। उसके माता पिता ने उसको अत्यन्त बाल्यावस्था में ही पातंजलि की जानकारी से बाहर जीवाराम जोशी के लड़के वाघाराम के साथ उसका विवाह कर दिया था। वाघाराम उस समय पाँचेक वर्ष का था। धीमती भी चार–पाँच वर्ष की थी। जीवराम का घर जाति में प्रतिष्ठित था। जोशीपने के कार्य में पारसियों की यजमानी अच्छी थी। होरमुसजी सेठ के भाग्य में मोती का व्यापार यश है, इस भविष्य वाणी से पारसियों में उसका अच्छा रोजगार जमा था। पाठशाला में पढ़ने योग्य होने पर वाघाराम को बम्बई में सिफ़ारिश से पारसी वाड़े के ही स्कूल में भेजा गया था। परीक्षा का समय आने पर जीवराम जोशी पारसी शिक्षक के घर जाकर 'जन्म पत्री' बना आते थे, जिससे लड़का बिना परिश्रम ही दर्जा चढ़ने लगा था। तीन चार किताबें अंग्रेजी की पढ़ते ही जीवराम को आसमान दो इञ्च ही मानो रह गया। सिफ़ारिश से दर्जा चढ़ने के कारण बुद्धि में तो वह अपने नामानुसार वाघाराम ही रहा। परन्तु पारसी लोगों की सिफ़ारिश से जहाँ चाहेगा

नौकरी मिलेगी यह जीवराम जोशी को हिम्मत थी। लगभग तेरह चौदह वर्ष की उम्र में बाघाराम को माता निकली जिसने उसका स्वरूप बिलकुल बदल दिया और नाक में बोलने की उसकी टेव पड़ी। यहाँ तक कि उसको पहिचानना कठिन होगया। उसके सोलह सत्रह वर्ष के होने पर जीवराम को चिन्ता हुई और उसने होरमसजी के लड़के सावकसा से बाघाराम को कहीं नौकरी पर लगाने के लिये कहा। सावकसा ने जोशी जी से कहा कि लड़का ठीक अंग्रेजी बोल नहीं सकता और जो बोलता है वह नाक में बोलता है। इसके प्रत्येक शब्द पर अनुस्वार तो है ही, तथापि कहीं नहीं होगा तो उसको रेलवे में रिलीविंग गार्ड की नौकरी दिला दूंगा।

धीमती को उसके माता पिता ने भद्रवाला के पास आश्रम में रक्खा, इससे वह तो अवश्य चतुर होगई किन्तु उसकी ससुराल से बुलावा आने पर 'अभी एक दो वर्ष उसको शिक्षा पाने दो' यह कह दिया जाता। जीवराम जोशी भद्रवाला का बड़ा मान करते थे, परन्तु जब से आश्रम में विद्वानों की सभा हुई तब से निर्मला का ओज भद्रवाला से विशेष होने से धीमती को महिलाशाला से मुक्त करने के लिये आग्रह पूर्वक वह नहीं कह सकते थे। इससे बाघाराम ने एक युक्ति रची। शीरीन बाई से एक पत्र निर्मला को लिखाया कि—"बाघाराम को कोई स्थान मिलता नहीं इसलिये इसके योग्य कोई स्थान आश्रम में ही दिलवाना, जिससे कि यह धीमती के साथ आश्रम में ही रह सके।" ऐसा ढोंग रच कर बाघाराम स्त्री को समझा लेजाने के लिये आश्रम में आया। निर्मला के हाथों उसने खेल-कूद में अनेक इनाम लिये थे। उसको देखते ही 'विंश्यू गुंलक' (wish you good luck) कह कर पुलिस की तरह सलाम कर वह बुत्तसा खड़ा होगया। बोल सका नहीं इससे उसने शीरीन बाई का पत्र निर्मला को दिया।

धीमती जैसी सुशिक्षिता लड़की का बचपन में ही विवाह कर दिया और वह लड़का ऐसा निकला, यह देख कर निर्मला और भद्रबाला ने दीर्घश्वास छोड़ा। धीमती को तो पृथ्वी मार्ग दे तो उसमें समा जाय इतनी लज्जा हुई, परन्तु भद्रबाला और निर्मला ने धीमती की आना-कानी करने पर भी बाबाराम के साथ उस को विदा कर दिया।

सुमति तो भद्रबाला की भाँति ब्रह्मचारिणीपने का अनुकरण कर रही थी। लक्ष्मीप्रसाद के अमेरिका से आने वाले पत्र आद्योपान्त पढ़ने का उसे अब अधिकार प्राप्त हुआ था तथा निर्मलादेवी की वह सहचरी हो गई थी। वार्ता द्वारा-संगीत द्वारा रोगोपचार करने के विषय में गहरा ज्ञान प्राप्त कर उसने यह विषय हस्तगत किया था। उसको यदि कोई रोगी दिया जाता तो उसका आश्वासन, उसका सम्भाषण ही रोगी का आधा रोग दूर कर देता था। बालकों का ज्वर तो सहज में उनके शरीर पर हाथ फेर कर ही मिटा सकती थी। गुप्त रोगों में, रोगी के मन में जो विचार ग्रन्थी होने से कष्ट हुआ है, उसको बारीकी से तलाश कर वह ग्रन्थी निकालती थी और रोगी अच्छे हो जाते थे।

गुप्त रोग इस प्रकार मिटाने की उसकी ख्याति समाचार पत्रों में होने लगी और ऐसे रोगी वहाँ विशेष आने लगे। इसी बीच एक दिन नासिक के कितने ही परोपकारी गृहस्थों के निम्न आशय के पत्र के साथ एक रोगी को दो दक्षिणी सज्जन लेकर आये।

"यह युवक काठियावाड़ की तरफ़ के किसी का ब्राह्मण है, जो यहाँ एक मिशन स्कूल में शिक्षक था। उसका एक अन्त्यज लड़की के साथ विवाह करने का इरादा था। वह लड़की किसी मैम के साथ नर्स होकर विलायत चली गई है, यह जानते ही यह युवक गोदावरी नदीकी एक धारा में जा पड़ा, जिसको तुरन्त ही एक दक्षिणी युवक

ने जो वहाँ स्नान करता था बचा लिया। तब से उसके चित्त की वृत्ति एक दम बिगड़ गई है। इसे पागल खाने में भी रक्खा गया था, परन्तु कुछ आराम नहीं हुआ मालूम होता। इसलिये उसको खर्चा देकर उसके देश की तरफ़ "पातञ्जलि आश्रम" नामक प्रसिद्ध संस्था बतलाते हैं जहाँ सुमती देवी के हाथों से इस प्रकार के रोगी अच्छे हुए सुने जाते हैं, वहाँ इसे हम भेजते हैं। हम जिस परोपकार वृत्ति से प्रेरित होकर इस युवक को वहाँ भेजते हैं, उस संस्था के संचालक और भी विशेष परोपकारक वृत्ति सम्पन्न होंगे, ऐसी हमारी धारणा हम को यह पत्र लिखने को प्रेरित करती है।

निवेदक—
महादेवपंत।"

इस युवक की इस स्थिति ने सब का ध्यान खींचा और सुमति ने उस पर विशेष लक्ष्य रक्खा। "कैसा बेवकूफ़ होगा चाहिये" एक ने कहा। निर्मला ने रोगी के हित के लिये इस प्रकार टीका करने का निषेध किया। रोगी को चित्त भ्रम हो गया था, उसको खाने पीने का भान नहीं था। रात्रि को निद्रा भी अच्छी तरह नहीं आती थी। पागलपने में कुछ न कुछ बका करता था।

एक दिवस रात्रि को भद्रबाला औषधालय की छत पर आसन बिछा कर विश्रान्ति के निमित्त बैठी थी। उसके पास "सब से श्रेष्ठ कवि कौन?" यह प्रश्न लेकर एक संस्कृत पढ़ने वाली बालिका आई। भद्रबाला ने उससे कहा कि:—

"पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे।
कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः॥"

× × × ×

कनिष्टिका का नाम सुनते ही अन्दर से वह पागल युवक खड़ा होकर उछल पड़ा ! कहाँ है ? कनिष्टिका ! कनिष्टका ! हृदय प्रदेश में विहार करने वाली कनिष्टिका कहाँ है ? कहाँ गई ?

सुमती ने भद्रबाला से प्रार्थना की कि अब उस को रोगी के साथ इकली रहने देना चाहिये, कदाचित् उसके उपचार की चार्या मिल जाय। सब के बाहर चले जाने पर निर्मला ने उपचर्या प्रारम्भ की।

"यह रही मैं कनिष्टिका, तुम किस लिये चिल्ला रहे थे ?"

"है, है ! मैं क्या देख रहा हूं ? हां, किन्तु हम तब कहां हैं ?"

"जहाँ मिले थे वहीं !"

"नहीं, नही, नहीं, मेरी आँखें मुझे ठगती हैं। क्या तैने फिर उस दिन की तरह रबर का बुरक़ा पहिन लिया है ?"

"तुम इस प्रकार बेवकूफ़ न बनो तभी मैं रबर का बुरक़ा अब तो दूर करूंगी।"

"बेवकूफ़, नहीं बनूंगा। उद्धतलाल को अब तुझे नहीं सताना चाहिये।"

उद्धतलाल कदाचित उसका नाम होगा, ऐसे ही एक बेवकूफ़ ग्रेजूएट का नाम एक दिवस अखबारों में आया था। यह सुमति को याद आया। अतः साहस कर बात बढ़ाई।

"उद्धतलाल ग्रेजुएट को अपनी शिक्षा की शर्म रखते हुए ऐसा नहीं बोलना चाहिये !"

"मैं न बोलूं ! तू मुझे ग्रेजुएट कहने की छूट देती है ? अच्छा, अच्छा, ठीक ! मेरी रकमें लाई ?"

"मगर लाऊँ कहाँ से ?"

"क्यों ? मैंने अपनी माता के लिये तुझे पत्र लिख दिया था, उसका क्या हुआ ? समझ गया ! तुझे गाय नहीं मिला, इसी से वापिस आयी है, परन्तु यह रबर का बुरका हटा कर कनिष्ठिका ! असली रूप में आजा ,"

"वह तो अभी मैं न आऊंगी और मुझ को रबर का बुरका हटाने का फर्ज लगाया, तो यह लकड़ी देखी है ?" कह कर दो तीन जमादी, इसका असर भी तुरन्त हुआ ।

"नहीं लगाऊँगा, बोल, बोल, तू जो कुछ कहे वह करने को तैय्यार हूं । क्षमा कर, क्षमा कर, न सता ।"

"देखो, ग्रेजुएट होकर भी बुढ़िया का पता मुझे नहीं दिया । वह बतलाओ "—

"ओहो, मेरी बड़ी भूल हुई । ले अब लिख देता हूं !"

"हां, लिख दो, मय नाम के ।"

उद्धत ने अपनी माता का नाम और पता लिख दिया। दूसरे दिन एक वृद्ध मनुष्य को उस जगह भेज दिया । यह पहुंचा था उसी दिवस बुढ़िया को आत्म-हत्या की कोशिश के अपराध के परिणाम की शिक्षा न होने से ताकीद देकर छोड़ा गया था । लड़का बीमार होकर औषधालय में आया है, यह जानते ही वह आने को तैयार होगई और तीसरे दिवस यहाँ आ पहुंची । सुमती ने उससे "कनिष्टिका कौन ?" "रकमें कैसी ?" इत्यादि सारे वृत्तान्त मालूम कर लिये । सुमती बुढ़िया को पहले तो उद्धत के सन्मुख लायी ही नहीं और बुढ़िया ने भी कहा कि 'मुझे देखेगा, तो शायद मारने हो उठेगा ।'

"प्रारम्भ में सुमति ने अपने को 'चुरकेवाली कनिष्ठिका' रूप में परिचय दिया। शनैः शनैः उसको "आज ताड़ी निकालने जाना है, आज शराब बनाने जाना है, आज मरे हुए जानवरों की हड्डियां के लिये जाना है" इत्यादि २ विषय कह कर कनिष्ठिका के व्यवहार और उसके ब्राह्मण होने के उच्च संस्कारों के बीच का अन्तर उसके सम्मुख उपस्थित कर दिया; और कनिष्ठिका के प्रति उसका नाम मात्र काम विकार था स्नेह नहीं था यह समझा दिया। शनैः शनै उद्धत यह भेद समझ गया और उसे अपने आचार पर बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। फल, दूध, शाक, इत्यादि का सात्विक आहार रखने से वृत्ति भी उसकी सात्विक होने लगी। वर्णाश्रम धर्म की आवश्यकता, ब्राह्मण जन्मकी महत्तापर उसके सम्मुख चर्चा होने लगी। इससे मस्तिष्क में सुषुप्ति स्थिति में विद्यमान ब्राह्मणपने का अभिमान जागृत हुआ। उस समय बुढ़िया को पास बुलाया। सुमति की शिक्षा से उद्धत के चित्त की स्थिति यहां तक ठीक करदी थी कि बुढ़िया को देखते ही उसको अपने पिछले आचरण के लिये अन्तःस्थल में पूर्ण खेद हुआ। "माता" किसे कहते हैं यह अब वह समझ गया था। उसने मन ही मन बुढ़िया को अनेक साष्टांग प्रणाम किये; और आज तो सुमति के सम्मुख उद्धत यहां तक कह गया कि इस चमड़े की देह में धर्म पर अनादर उत्पन्न कराने वाली नीरस शिक्षा का वमन कराने वाली कोई औषध या मंत्र प्रो० बोस जैसे कोई निकालें, तो सबसे प्रथम मैं लूंगा; क्योंकि इस शिक्षा से उत्पन्न हुए संस्कारों ने इस जगन्नियन्ता का तिरस्कार कराया है।"

सुमति ने दक्षिण से आये हुए रोगी को केवल वार्तालाप द्वारा आराम किया है यह खबर आश्रम में फैलते ही उद्धत की परीक्षा करने अनेक स्त्री पुरुष आने लगे और चारों ओर से प्रशंसा के उद्गार

निकलने लगे। निर्मला और भद्रबाला को सबसे विशेष हर्ष हुआ। सुमती का प्रगट में कुछ सम्मान करने के निमित्त निर्मला की उपस्थिति आश्रम में होने से औषधालय में आश्रम की मण्डली एकत्रित हुई।

निर्मला ने उद्धत से पूछा, आपको क्या कष्ट था? और वह किस प्रकार मिटा?

उद्धत–मेरे रोग की बात प्रगट में कहने से मुझे लज्जा आती है। मैं पढ़ा न होता तो सम्भव है ऐसा न होता। अधर्म के रास्ते पर जाते हुए मैं अधर्म में ही गिरता वहां से मुझे बचाने में यह कष्ट कारण हुआ। सुमति देवी ने कोई मुझे कड़वी दवाइयां नहीं पिलायी हैं न मुझे दण्ड दिया। केवल सम्हाल से, वार्तालाप द्वारा मेरी यह मानसिक व्याधि मिटाई है तथा फिर से वर्णाश्रम धर्म का वास्तविक् स्वरूप मुझे समझाया है। ऐसे स्त्री रत्नों से भारत को गर्व है किन्तु सुमती–देवी के हमारी जाति की होने से मुझे तो अति गर्व है। मुझे उन्होंने जीवनदान दिया है।

निर्मला—अब तुम जीवन किस प्रकार व्यतीत करना चाहते हो?

उद्धत—मेरा जीवन! वह तो अब आश्रम को अर्पण है। जिस आश्रम से सुमती देवी सदृश स्त्री रत्न उत्पन्न होते हैं, उसमें एक स्वयं सेवक की तरह जीवन अर्पण करने के तुल्य दूसरा उत्तम जीवन क्रम क्या हो सकता है?

सुमति ने मानो धूल से रत्न साफ किया है ऐसा उसे मालूम हुआ। पूर्णतया स्वास्थ्य प्राप्त किये पश्चात् उद्धत बुढ़िया सहित आश्रम में ही रह गया। सुमती के साथ उसका प्रथम नि:षि वार्तालाप घंटों तक हुआ और परिणामतः उभय स्नेह में उसका रूपान्तर

होगया। भद्रबाला ने यह वृत्त प्रगट होने पर अपना अनुमोदन दिया। आश्रम में निर्मला की उपस्थिति की संधि देखकर भद्रबाला की व्यथा की समाप्ति की राह देखने के निमित्त सुमती के आनाकानी करने पर भी सुमती और उद्धत का विवाह आश्रम में होगया।

उसके दूसरे ही दिवस भद्रबाला जब प्रातःकाल के समय स्नान कर शिवालय में पूजन में थी, उसी समय आकाश से अकस्मात् उतर आने वाले देव की तरह, नरहरि से विछोह होने के समय से निकला हुआ मनहर आश्रम में आ पहुंचा। सारा आश्रम मानो आनन्द में मग्न होगया। निर्मला ने भद्रबाला को धन्यवाद दिया और विवाह की तैय्यारी करने की आज्ञा दी। 'कपास से कपड़ा' नामक गाम के लोग स्त्री-पुरुष-बच्चे तो क्या उपवन के वृक्ष भी मानो इससे प्रफुल्लित थे। प्राकृत विवाह विधि के आवश्यकीय अंगों, अर्थात् अनेक भोज्यों-जबरदस्ती द्रव्य निकालने के प्रसंग और कलह का स्थान दम्पति और दर्शकों के उभरने वाले आनन्द ने ले लिया। मनहर और भद्रबाला का विवाह हुआ!

मनहर के मुख से, निर्मला देवी ने अधिक हर्ष बढ़ाने वाली बात सुनी कि कुञ्जविहारी और मधुसूदन को लेकर नरहरि आज रेलके स्टेशन पर उतरेगा। निर्मला देवी का हर्ष हृदय में नहीं समाया। अपनी मोटर तैयार करने की आज्ञा दी और सरयू को पत्र लिखा:—

"बहिन सरयू!

तुम्हारा ही अपार परिश्रम योग्य दिशा में था। आनन्द से उभरते हुए अन्तःकरण से मैं विशेष लिख नहीं सकती, परन्तु अपने 'लालों' का पता लगा है। कुञ्जविहारी और मधुसूदन को लेकर

हमारे भाई नरहरी आज आ पहुंचेंगे। मैं उनको लेने स्टेशन यहां से सीधी जा रही हूं।

तुम चुप साधे बैठी हो, क्या वह मौन व्रत छोड़कर जरा अपने हृदय की आकांक्षाओं को प्रगट करोगी? उसका आज ही अवसर है। मेरी शुभ कामना तुम्हारे साथ है और सर्वोपरि तुम सदृश कर्म योगिनियों का अन्तर्यामी ही सारथी है।

—निर्मला"

❀ परिच्छेद २३ वां ❀

विद्वान-विदुषी का वार्तालाप

' यज्जाग्रतो दूर मुदैति दिव्यं तदुसुप्तस्य तथैवेति दूरं गामं ज्योतिषां ज्योतिरेकं। तन्मेमनः शिवः संकल्पमस्तु "

जाग्रत स्थिति में दूर भटका करता है सुषुप्तावस्था में भी आकाश में भ्रमण करता है, वह हम मनुष्यों का मन, हे प्रभो! सुन्दर संकल्प किया करे"!

(ऋग्वेद)

सरयू के पत्र से, जिसे नरहरी ने मुनीम पूनमचंद से लेकर पढ़ा था, उसके बाद निर्दोष अन्तःकरण का यह साधु पुरुष जो वह रिपु

पर ही मानो सवार होकर घूमता था और जिसने इतना अधिक प्रभुत्व प्राप्त किया मालूम होता था, उपरोक्त पत्रसे कुछ विह्वलता के कारण अपने को पराधीन सा और मानसिक स्वतंत्रता मानो कम होगयी हो इस प्रकार कुछ अनुभव करने लगा! शरीर रूपी माटी के पुतले में परमात्मा ने चींटी से भी मानों सूक्ष्म और मदोन्मत्त हाथी से भी स्थूल मनकी व्यवस्था कर रक्खी है। उसने सरयू के पत्र से कुछ अवर्णनीय, अकथ, अलौकिक, विद्युत प्रवाह प्राप्त कर नरहरी को परवश सदृश कर दिया! संसार में सर्वथा अवर्णनीय है उस परम कृपालु परमात्मा की अपार लीला! उसके अजब नियम! जिसके आधीन रहकर ही अपने को शक्तिवान्, अपार बलवान समझने वाले महापुरुष अपने प्रयत्न करते हुए भी प्रारब्ध द्वारा निर्मित प्रवाह में एक सूखे हुए काठ की भांति, एक तुच्छ तृण की तरह तने रहते हैं! पुरुष के उच्च संस्कार, साधु संगति, गुरु कृपा प्रभृति कारणों से, उसके प्रबल प्रयत्नों से उत्पन्न हुआ कर्म प्रारब्ध के रथ को मानो हाँक रहा मालूम होता है। विचारशील साधुजन यह सुन्दर दृश्य अनिमिप ज्ञान चक्षु से देखकर तिमिर मय संसार पथ से अपना मार्ग निकालते हैं। इस प्रकार मन की शक्ति अनेक महाराजाओं की सारी शक्ति से अधिक है और दूसरी ओर उसपर अधिकार रखने वाले प्रयत्नशीलों के सन्मुख उसकी शक्ति केवल तृणवत् है!! यह अद्भुत यंत्र! परमात्मा ने शरीर में कहां से लाकर अपने सामर्थ्य की अगाधता बतादी है! पृथ्वी पर हुए समर्थ लेखक इसकी वास्तविक व्याख्या करने में गोता खा गये हैं, इस ओर सफल प्रयास देखा जाय तो वेदों का है जिसमें ऊपर लिखे गये मंत्र द्वारा मनकी अद्भुत शक्ति बतला कर वह सदा संकल्प किया करे ऐसी अभ्यर्थना की गई देखने में आती है।

"सरयू कौन! मैं कौन? यह पत्र कैसा? पूनमचंद बीच में कैसा? ये संयोग कैसे? बालकों का गुम होना ये भी कुछ कारण से?

और सबसे अधिक मानो बिना प्रयोजन लिखे गये सरयू के संम्बंध में मेरे निजके हस्ताक्षर–जिनके हाथ में आने से ही जान सका कि यह मैंने लिखा है ! एक सुशिक्षित बाला, केवल परोपकार के लिये ही इस प्रकार के साहस में प्रयत्नशील बने इसमें भी मुझे कुछ प्रयोजन की गन्ध आती है !! अपने हस्ते लिये हुए कार्यों में सरयू देवी के प्रयत्नों द्वारा विजय मिलने से मन कुछ अजीब विद्युत् सदृश वेग से ये विचार मुझसे बिना प्रयास ही कराता है ! अद्‌भुत मन !" नरहरी को ये विचार एक के बाद एक आने लगे किन्तु मनके इस वेग को एक ओर रोकते हुए वह महाराज के मंदिर में गया और तत्पश्चात् उपरोक्त विधि—जंकशन स्टेशन पर " सेठ सेठानी " को मि० सावकरा की सहायता से पकड़वा देने पर्यन्त की की।

आज वह वापिस घर को आरहा है ! रकमों से लदे हुए नौकरों के साथ मंदिर को भेजे गये बच्चे कुंजबिहारी और मधुसूदन के साथ ! नरहरी के विजयपूर्ण परिणाम की शुभ सूचना सेठ महेन्द्रप्रसाद से धर्मदेवी ने की और धर्मदेवी से किसने कहा ? हर्ष से मानो उभरते हुए अन्तःकरण से दौड़ कर आती हुई सरयू ने अत्यन्त प्रेम भरे इन शब्दों में धर्मदेवी से आकर कहाः—

" माता ! माता ! बधाई लाई हूं ! दोनों भाई गुम हुए थे तब से मैं निरन्तर इसी कार्य में संलग्न हूं...जंकशन स्टेशन अभी आजाते हैं। निर्मला देवी का आश्रम से यह पत्र है।"

"और नरहरी ?!"

" व...ह...भी...वहभी साथही हैं " अटकती हुई सरयू ने कहा !

धर्मदेवी ने उसको अति आल्हादपूर्वक हृदय से लगाया।

" मेरी सरयू, मैं तुझे क्या बदला दे सकूंगी ?"

" बदला ? माता ! आप सदृश पूज्य देवी का इस निराधार-माता पिता रहित अनाथ सरयू पर अथाह स्नेह—"

धर्म देवी-स्नेह तो तेरे अनुपम गुणों द्वारा स्वाभाविक रीति से उत्पन्न होना चाहिये वैसे होता ही है—

सरयू—माता ! हिन्दू संसार में गुण किस काम आते हैं ! केवल गुणसे ही किसी लड़की का हमारे भारत में कल्याण होना सुना है ? गुण कुछ द्रव्य नहीं है। यह तो एक अदृश्य वस्तु-क्वचित् भार रूप होगई मालूम होती है ।

धर्मदेवी-ऐसा मत कह, बेटी सरयू, तेरे बहुमूल्य गुणों के अतिरिक्त तेरी बुद्धि बहुत से मनुष्यों को गुरु समान काम आवगी ।

सरयू—बुद्धि ! माता ! यदि बुद्धि कुछ उपयोग में आती है, तो वह केवल स्मरण शक्ति को विकासित कर संसार के दुःखों को बड़े रूप में बताने वाली है। वस्तुत दुःख के छोटे चित्रों को बड़े रूप में बताने वाली " मैजिक लैन्टर्न " ही बुद्धि—"

धर्मलक्ष्मी—इस बुद्धि के सम्बन्ध में आज इतना फेरफार करके क्यों बोलना पड़ता है बेटी ? !

यह कह कर धर्म देवी ने सरयू को फिर अपने पास बुलाया और एक बालक की भांति माता तुल्य आल्हाद से उसको अपने समीप बैठाया। वह भी धर्म देवी के पैरों में गिर पड़ी पांच सैकिण्ड भी नहीं बीते कि उसके कण्ठ से सिसकने की मृदुध्वनि सुनाई पड़ी। धर्म देवीने उसको पुनः छाती से लगाया ।

"सरयू! यह क्या?"

"कुछ नहीं माताजी! कुछ भी नहीं। हम लोगों के लड़के लड़कियों के विवाह करने के समुदाय बड़े एतदर्थ पुण्यमय प्रवास में हरद्वार की ओर जाने वाली लड़की की अन्तिम-जाते समय की अश्रु-अंजलि है—"

इतना कहते ही निःशब्द रुदन सशब्द होगया।

धर्म लक्ष्मी—यह तू क्या कहती है? कहां ये तेरे शुभ प्रयत्नों द्वारा ही लाया गया अपना यह हर्ष का प्रसंग! और कहाँ तेरा यह आक्रन्दन!

सरयू—यह उचित नहीं मालूम होता-शोभा नहीं देता यह मैं मानती हूं, माताजी! परन्तु मनुष्य के हृदय की सहनशीलता की जो सीमा होती है वह अब आ पहुंची है। हिन्दू लड़के और लड़कियों के दुर्भाग्य की पराकाष्टा आ रही है। हमारे मृतप्राय जीवन अब अपने वास्तविक स्वरूप में दीखते हैं। सब जातियां जाग्रत होगईं, पृथ्वी की सारी प्रजाओं ने समयानुसार अपने जीवन-क्रम में आवश्यक परिवर्तन कर लिये, और अनेक प्रकार के सुख सहन करते हुए, शास्त्रकारों द्वारा अपने जीवन क्रम में यथा समय परिवर्तन करने की स्पष्ट आज्ञा दी जाने पर हृदय को भेदने वाले लड़कियों के कष्टों के भयंकर चित्र हमारे समक्ष होते हुए भी, बुद्धि को-सत्य को, धर्म को, ज्ञान को, विवेक को, एक ओर रखकर बुद्धि, मस्तिष्क, को मारने वाले देवता रूढ़ि के अब भी हम आंखपर पट्टी बांधकर पुजारी बने हुए हैं। हिन्दू सुधारकों में जाति के हित चाहने वालों की संख्या इस समय कुछ कम नहीं है परन्तु अँधेरी कोठरी में रहने वाले की भांति इनको दिशा सूझती नहीं है। केवल उपजातियों को एक करने में किसी प्रकार साहस नहीं है-धर्म के अनुसार-शास्त्रकारों की आज्ञा को शिरोधार्य करने सदृश-उदय का सूचक है।

अस्तु ! माताजी ! अब मैं थक गई हूं । माता-पिता विहीन बालिका--उसका हित-किसने-ट्रस्टो की तरह रक्खा है। किन्तु पास के कमरे में कुछ आवाज़ सुनाई पड़ती है ! कौन है ?

धर्मलक्ष्मी---कोई नहीं होगा-नौकर होंगे तू निडर होकर अपने हृदय की बात कह। मेरी प्यारी बेटी ! सेठ के आने में अभी कुछ देरी है। तेरे बधाई के शब्द मैं उन तक पहुंचाना चाहती थी।

धर्मलक्ष्मी-अरी साहसी पुत्री ! तुझको क्या दुर्लभ है?

सरयू---मेरा भविष्य-यह कह कर वह फिर धर्मलक्ष्मी के पैरों में गिर गई।

धर्मलक्ष्मी—खड़ी हो ! खड़ी हो ! सरयू सदृश सुशिक्षिता समझदार लड़की का संकट हम अपना ही संकट समझते हैं। खड़ी हो ! कदाचित् सेठ आजायंगे तो तेरे इस प्रकार करने का कारण पूछेंगे।

इतने में ही कमरे का दरवाज़ा खुला और पीछे के द्वार से आजाने वाले सेठ महेन्द्रप्रसाद, परमात्मा के प्रगट होने की भांति, आगये।

महेन्द्रप्रसाद—मैं आही रहा हूं और मोटर पिछले दरवाजे से आई है किन्तु इस सरयू ने साहस की हद करदी है।

सरयू शरम के कारण दूरके एक कोच पर जा बैठी।

परोपकार हृदय वाली पवित्र सरयू को सेठानी धर्मलक्ष्मी के सामने अपना अन्त:करण खोल कर बात करने के कृत्य पर विचार करने पर लज्जा प्रतीत हुई। पिता तुल्य सेठजी के प्रवेश से यह संकोच बढ़गया किन्तु उसी क्षण उसे विचार आया कि माता-पिता तुल्य इन दोनों के द्वारा ही मेरा उद्धार होने को है।

महेन्द्र०—देवी ! मेरा हृदय आज प्रसन्न है । दोनों बालकों के मुख आज कितने दिवसों में— ।

धर्मलक्ष्मी—परयू देवी के उद्योग से हम लोग देखेंगे ।

महेन्द्र०—हां सच है । अच्छा, परन्तु आनन्द के इस चौघड़िये में मैंने अभी सुना वह रोना कैसा था ?

धर्मलक्ष्मी—क्या आपने वह सुना था ?

महेन्द्र०—अक्षरशः सुनाई पड़ा । उसका प्रयोजन मुझसे शीघ्र कहो, इसके कारण मेरा आनन्द कम होरहा है ।

सरयू ने लज्जा के कारण नीचे देखकर पृथ्वी पर पड़ा हुआ एक अखबार उठालिया । देश में जिस समय उदय के प्रयत्नों का ही पवन बहता है उस समय जिधर दृष्टि डालिये उधर ये ही ये बातें देखने में आती हैं इससे ही इस पत्र में भी 'स्त्रियों की उन्नति, के विषय पर एक उपदेशक का भाषण उसके देखने में आया । परन्तु इसका मन सेठ सेठानी की बातों की ओर था, कान भी उसी दिशा में थे, केवल आंखे अखबार पर रखनी पड़ीं थी ।

धर्मलक्ष्मी—आपकी इस पर पुत्री के समान ममता है । यह इसका और मेरा अहोभाग्य है ।

महेन्द्र०—क्यों न हो, देवी ! अपनी लड़की हो तो भी इससे अधिक क्या कर सकती है ?

धर्मलक्ष्मी—नाथ ! वात्सल्य में बढ़ सकती है परन्तु प्रयत्नों में सरयू के बुद्धिपूर्वक किये गये शुभ प्रयत्नों में, तो आगे नहीं बढ़ सकती है ।

महेन्द्र०—यथार्थ है ! परन्तु इसके कष्ट का कारण अब......

धर्मलक्ष्मी—आपसे क्या बिलकुल अज्ञात है ?

महेन्द्र०—ऐसा तो नहीं है। सोलह वर्ष तक सरयू अविवाहिता—मैं उसके पिता का मित्र—ट्रस्टी कहो या उसका वली ! परन्तु इस संकुचित समुदाय में मैं कहां तलाश करूं, देवी ! अपनी ज्ञातियां अभी कितनी पीछे हैं ? ज्ञाति में अब अनेक ज्ञाति शुभेच्छुक मालूम पड़ते हैं यह बात ठीक परन्तु अभी वृद्धि मस्तिकजन्य रूढ़ी देवी के पुजारियों के कष्ट कम नहीं हैं। उनकी संख्या कम होगी, परन्तु चिरकाल का अनुभव उनके साथ है। हृदय—काठिन्य का अभ्यास उन्हीं को है ! ज्ञाति की जीर्ण शीर्ण छोटी छोटी नौका चलाने का ठेका अभी उन्हीं के पास है। विद्वानों के आगे यात्रियों की संख्या की शक्ति मर्यादित बनी रहती है।

धर्मलक्ष्मी०—अच्छा, नाथ ! उपजातियों में कोई योग्य लड़का नहीं मिल सकता ?

महेन्द्र०—मिल सकता है ! क्यों नहीं मिल सकता है ! परन्तु यह साहस करने में हिम्मत की आवश्यकता है।

धर्म०—किसको ?

महेन्द्र०—हम ट्रस्टियों को, और सबसे अधिक स्वयं इसको !

धर्म०—स्वयं उसकी ओर से इन्कारी नहीं है !

महेन्द्र०—तो फिर योग्य वर तलाश करने की ही देर—

धर्म०—उसका भी मैं नाम बतला सकती हूं, परन्तु मैं नाम की ही सूचना दे सकती हूं उसको सरयू से विवाह करने को सम्मत करने में आपकी आज्ञा की आवश्यकता है।

महेन्द्र०—ऐसा कौन है, जो करीब लाख रुपये की संपत्ति रखने वाली और भारत में कदाचित् ही देखने में आ

सदृश सुशिक्षिता सरयू के लिये इतना उद्योग करावे ? देवी ! मेरे प्रयत्न करने से तुम्हारा कहना मात्र काफी होना चाहिये !

जाति के लोगों में—कहना चाहिये कि अन्तर्जाति के शुभैषियों में तुम्हारी प्रतिष्ठा कम मत समझना ! वास्तव में अपने संसार का सुधार मुझसे तो तुम अधिक कर सकती हो और जाति के सुहृदय व्यक्ति इसको अच्छी तरह समझते हैं। ऐसा कौनसा लड़का है जो—

धर्म०—नाथ ! इस मेरुभाई बाघजी भाई के हठीलाजी को स्वयं आपको समझाना पड़ेगा !

महेन्द्र०—ऐसे अभिमानी को तुम विवेकमूर्ति सरयू बाई के लिये योग्य पति समझने की भूल करती हो !!

धर्म०—नहीं, नहीं, नाथ ! वह सब प्रकार से योग्य तो है ही ! आपही कहेंगे। प...र...न्तु।

महेन्द्र०—परन्तु फिर क्या है ? कहदो !

धर्म०—वह अपने एक प्रकार के अभिमान में ही मग्न रहता है। ग़रीब होते हुए भी धनाढ्य जिसकी प्रयत्नपूर्वक इच्छा करते हैं उसको वह तुच्छ गिनता है।

महेन्द्र०—और ऐसे को योग्य समझने में तुम भूल तो नहीं कर रही हो ?

धर्म०—नहीं, नहीं कर रही हूँ।

महेन्द्र—अच्छा, तो फिर-इस लड़की का हृदय टटोला है ?

धर्म०—इस बात की भी आवश्यकता नहीं रही।

महेन्द्र०—हुआ, तब मुझे उसका नाम बताओ, देवी, अधीर मत करो।

धर्म---उसका नाम कहने से पूर्व ही वह आपके सामने आखड़ा होगा-वह सामने से फूलों से लदी मोटर दौड़ी आती है! नाथ! आप अपने लालों के साथ उसे—

महेन्द्र०---समझा, मेरा नरहरी! उसको सम्मत करने में मुझे कुछ भी देर नहीं लगेगी। देवी! घबराओ नहीं। चलो बहिन सरयू, हम सब बरामदे में चलें।

देखते ही देखते, महेन्द्रप्रसाद, धर्मलक्ष्मी और पीछे से शरमाती हुई सरयू बाहर आवें उससे पहले मोटर आ पहुंची। मन को प्रफुल्लित होने में कुछ भी शेष नहीं रहा। मधुसूदन को सरयू ने उठा लिया। कुञ्जबिहारी माता से लिपट गया। महेन्द्रप्रसाद ने नरहरी का पुत्र समान वात्सल्य भाव पूर्वक हाथ पकड़ लिया। निर्मला भी विवेकपूर्वक एक कुरसी पर बैठ गई। परन्तु नरहरी हौल में आकर सबसे पहिले धर्मदेवी को संबोधन करके एक प्रकार का उपदेश देने लग गया।

"माता! भारतवर्ष में और विशेषतः हमारे गुजरात में एकमों के लिये बालकों के खून होते हैं अतएव विश्वासपात्र नौकरों की पूरी संख्या बिना ऐसे बच्चे अब घर से बाहर न जाने पायें, इस बात की सर्वप्रथम कृपा कर प्रतिज्ञा कीजिये जिससे भविष्य में ऐसी घटना न घटने पावें"।

धर्मलक्ष्मी—भाई, तुम्हारे इस उपदेश के लिये तुम्हारा और तुमको जिसने सहायता दी हो उसका जितना भी उपकार माने थोड़ा है। तुम उपदेशक हो अतएव घर से ही उपदेश देना प्रारम्भ करो तो उसमें कुछ हानि नहीं। हम जैसे शान्त श्रोता जन तुमको संसार में अन्यत्र कहां मिलेंगे! प्रतिज्ञा लूंगी। भाई! तुम्हारे कथनानुसार यह घटना मैं पहले ही पहल देखती हूं। सौ वर्ष पहिले इस तरह

रकम के लिये बच्चोंको उड़ा ले जाने की किसी समय घटना घटी हों उस आधार पर यदि अपने उपदेश का समर्थन करते हो तो कुछ हानि नहीं है। हमको वह मान्य है। और कुछ" ?

नरहरी—"माताजी ! सौ वर्ष पहिले ऐसा दृष्टान्त हुआ है यह बात नहीं है। वरंच समय समय पर हुआ करते हैं और यह बात मैं अपनी बनाई हुई नहीं कहता। देखिये अपनी डायरी से आपको बतलाता हूं।

* १२ वर्ष की एक हिन्दू लड़की को रकम के लिये गले में फांसी डाला गया। 'टाइम्स' ६-१२-१०

× × × ×

सात वर्ष की हिन्दू बालिका का रकम के लिये गला काट डाला गया। जामे जमशेद ३-४-११

× × × ×

एक तेरह वर्ष का हिन्दू लड़का स्कूल जाता था रकम के लिये उसको कुए में डाल दिया गया। २ जून १९११ टाइम्स औफ इन्डिया।

× × × ×

ग्यारह वर्ष के एक सुनार के लड़के का रकम के लिये गला काट डाला गया। साझ वर्तमान २ जौलाई १९१२।

नरहरी—और देखिये माताजी ! इसी के और दृष्टान्त :—

× × × ×

आठ वर्ष की एक हिन्दू लड़की को रकम के लिये कुए में डाल कर मार डाला गया। जामे जमशेद जौलाई १९१२

× × × ×

एक छोटी मुसलमान लड़की को रक़म के लिये पकड़ कर उसका गला और पैर काट डाले गये। टाइम्स ऑफ़ इन्डिया ११-१-१३

× × × ×

छैः वर्ष की हिन्दू बालिका को रक़म के लिये कुए में डुबा दिया गया। टाइम्स २२-७-१३

× × × ×

एक हिन्दू लड़के को रक़म के लिये कुए में डाल दिया गया।
साफ़ वर्तमान ८ अगस्त १९१३।

× × × ×

एक हिन्दू लड़के को पत्थर से सिर दबोच कर रक़म के लिये मार डाला गया। टाइम्स २०-६-१३।

× × × ×

चार रुपये की क़ीमत की रक़म के लिये एक मुसलमान चचा ने अपने भतीजे को उसकी रक़म के लिये मार डाला।
बम्बई क्रोनिकल १२-११-१७

× × × ×

और भी—लखनऊ का जैन गज़ट १ नवम्बर १९१९ के अङ्क में लिखता है कि रक़मों के लिये बच्चों के खून होने के १२ दृष्टान्त देकर युक्तप्रान्त के गवर्नर साहिब सर जेम्स मेस्टन ने माता पिताओं को सूचना रूप में एक सरक्यूलर निकाला है।

धर्मलक्ष्मी—मेरे ध्यान से रक़म के लिये बच्चों के खून होने के विषय की सूची अभी तो भाई साहब के पास लम्बी होगी।

नरहरी—प्रत्यक्ष देखने में आते मा, बापों के हठों की सूची से छोटी है परन्तु आनन्द के इस चौघड़िये में मैं अब अधिक कष्ट नहीं देना चाहता। ये बालक हमारे भाग्य से नहीं आए हैं। बाहर बटोहियों के इस सम्बन्ध के कष्ट का मुझे स्वयं अनुभव हुआ है और अपने नाम या ख्याति की कुछ परवाह न कर एक परोपकारी बाई के प्रयत्नों से ही मुझे इस काम में सफलता मिली है किन्तु रक़म तलाश करने में अभी मुझको विशेष प्रयत्न करने पड़ेंगे। मेरी समझ से एक पागल से दीखने वाले, पैसे के लालची तोतले वृद्ध बनिये को इन बटोही जैसे दीखने वाले लुटेरों ने खूब द्रव्य लेकर एक 'कन्या' विवाहित की है जो वास्तव में 'कन्या' नहीं है परन्तु कन्याओं की कमी का लुटेरों ने लाभ लिया है और कितने ही चालाक लड़कों को पढ़ा रक्खा है जो कि कन्या का भेष धर कर किसी यात्रा निमित्त या अन्य किसी रीति से विवाहित होने वाले से छुटकारा पाकर अपने दल में आजाने को शिक्षा पाये हुए उद्यत रहते हैं। ऐसी कन्या के हाथ में इन बालकों को सौंपा था और मि० सावकशा की सहायता से उस 'कन्या' को पकड़ा गया है, उसके पास हमारी रक़मों का विशेष अंश अथवा उनका रूपान्तर भी होना चाहिये ऐसा मैं समझता हूं।

धर्म०—भाई! इन रक़मों का पता लगाने का कार्य अब पुलिस विभाग के अधिकारियों को सौंपेंगे। परन्तु तुम जिस परोपकारी बाई का गुण गान करते हो उसका नाम—

नरहरी—वह अकस्मात ही संसार में प्रगट हुआ है, अन्यथा उसकी इच्छा तो केवल निष्काम परोपकार करने की थी।

महेन्द्रप्रसाद की कोच के पीछे एक कुरसी पर मर्यादा पूर्वक बैठी निर्मला ने मृदुल भाव से कहा—

"नरहरीजी के लिये ऐसी महिला का सेक्रेटरी होने की योजना किसी दैवयोग से हो तो संसार पर विशेष उपकार हो।

महेन्द्रप्रसाद ने कहा—"अवश्य होनी चाहिये"।

नरहरी—परन्तु ऐसा परोपकार सम्पन्न व्यक्ति महिला का नौकर होने की योग्यता न होने से सेक्रेटरी किस प्रकार किया जाय?

सारी मंडली मानो अब नरहरी को ठगती हो ऐसा दृश्य होने लगा। उमंग न रोक सकने से निर्मला अपने वाचनालय में गई।

नरहरी काठ के पुतले की भांति बैठा था। परन्तु केवल उसका देह ही वहां था मन एक प्रकार की तरंगों में हिल रहा था। मृत्युलोक में गुप्त रह कर दुःखी मनुष्यों पर परोपकार की परिसीमा बताने वाला अन्तःकरण रखना यह साक्षात् स्वर्ग से पृथ्वी पर 'कुछ पर्यटन के लिये ही' मानो आने वाले देवांश देहधारी जनों की सामर्थ्य है ऐसा उसको निश्चयपूर्वक समझ पड़ा। सरयू के लिये अपने हस्ताक्षर से, सेठ की आज्ञा से लिखे गये प्रमाण पत्र के प्रसंग पर सिंहावलोकन करने से इस विषय में उसको अद्भुत आनन्द आने लगा। इन प्रसंगों को याद करने में स्मरणशक्ति को खेंच लाकर भी उस प्रसंग के कार्य में सरयू की मूर्ति के दर्शन नहीं हुए। पारितोषिक के समय कदाचित् देखा होगा परन्तु बीच में व्यतीत हुए दीर्घ काल ने वह चित्र मानो भुलादिया हो ऐसा उसने अनुभव किया। "कदाचित् उस समय मैंने उसकी ओर नहीं देखा होगा ऐसा करने का उस समय प्रयोजन भी क्या था? अरे! परन्तु मैं अब इस परतन्त्रता का अनुभव करता हूं। इसमें अवश्यमेव कुछ प्रारब्ध कल्पित कोई प्रयोजन होना चाहिये!" इत्यादि इत्यादि विचार उसके मनमें विचरने लगे। सेठ को और धर्मदेवी को

सरयू के उपकारों से परिचित होने की तीव्र जिज्ञासा हुई। वहां बैठे हुए मनुष्यों में सेठ, सेठानी, कुञ्जविहारी और मधुसूदन के उपरान्त मानो विद्युत तरफल चक्षु सहित एक विशेष आकृति कोच पर सेठानी के पास ही बैठी थी। परन्तु उसके और नरहरी के बीच बड़ा एक-पक्षीय अज्ञान हिमालय उपस्थित था। एक पक्षीय क्यों? कारण कि इकला नरहरी ही वह नहीं जानता था। सरयू तो कारण वश 'परोपकार' कर रही थी। वह सब जानती थी। नौकर लोग चकित दृष्टि से इन दोनों के मुख की ओर देखा करते थे परन्तु सरयू की मुखाकृति से अज्ञात नरहरी को सरयू की सर्वत्र फिरने वाली दृष्टि में यह सब क्या समझ पड़ता?

विचार धारा में गोते खाने के बाद नरहरी के शरीर पर पसीने की बूंदें आने लगीं। किसी निमित्त अब यहां से उठ कर मस्तिष्क को कुछ आराम देने की उसकी इच्छा हुई। शरीर का आराम तो वह भाग्य से ही जानता था। सुदृढ़, स्वस्थ्य एवं ब्रह्मचर्य के तेज से परिपूर्ण उसके देह को मानो आवश्यक निद्रा के सिवाय आराम की भाग्य से ही जरूरत पड़ती। जिस हॉल में सब बैठे थे उसके पास ही सेठ का छोटा सा वाचनालय था। नरहरी ने वहां ले आकर अपनी गठरी कपड़े इत्यादि रख दिये। "लुटेरे गठरी लेकर उसमें से क्या द्रव्य लेते। और रकम रहित इस निःसार शुष्क देह का वह क्या करते? अस्तु!" यह विचार करता हुआ वह वाचनालय के कटहरे में टहलने लगा। कटहरे में पड़ी पुष्पलताओं की कुसुममिश्रित पराग ने पसीने की बूंदों को कम कर दिया, परन्तु विचार मन्थन ने उनकी संख्या बढ़ाना चाहा इन में कौन पीछे हटता? दोनों प्रकृति की सन्तान! सब नौकरों के साथ दोनों बालकों को स्नानगृह में भेज दिया गया और नरहरी को पुस्तकालय में गया हुआ देखकर धर्मदेवी ने धीरे से सेठ से कहा—

"भाई, सरयू को पहिचानता नहीं मालूम देता है!"

महेन्द्रप्रसाद—न पहिचाने तो उसमें कुछ आश्चर्य नहीं, पहिचानेगा! पहिचान कराऊंगा। देवी! सरयू ने इस काम में हद करदी है। इसके प्रयत्न ने ही आज ये आनन्द की घड़ी बतलाई है। मैंने तो बल्कि अपने प्रयत्न इस प्रकार किये थे कि यह भी उसमें फँस जाता और कहा नहीं जाता कि इसका क्या होता।

सरयू—कुछ नहीं होने का था। इनको मिलने में कितना समय लगता। और बहुत समय लगता तो "वर" से दोनों कन्याएँ होतीं।

धर्मदेवी—हाँ, बेटी! यह विचार मेरे रोमाञ्च खड़े कर देता है। कन्याओं की कमी ने हमारी यह स्थिति कर दी है। हिन्दू समाज बधिर बना हुआ है– अन्धा है, इसको अन्धश्रद्धा का दर्द हो रहा है उसकी सम्हाल करने वाले समझदार धन्वन्तरि जन्म ले चुके हैं। समय से सुधरेगा। देवी! परन्तु सरयू की यह बात अब तुम भाई से—

इतने ही में तो नरहरी वापिस इस जगह आया। सरयू के विचार और उपकारों ने इसके अबतक रहे निर्लेप अन्तःकरण पर अधिकार जमाना प्रारम्भ किया था। मनके स्वामित्व पर एकत्रित बादल छागये प्रतीत होते थे। सरयू की बात महेन्द्रप्रसाद और धर्मदेवी के सन्मुख किन शब्दों में निकालना इसका अवसर देख रहा था। विचारों से शरीर पर पसीने की बूंदें छा गईं।

धर्मदेवी—भाई, मेरे ख्याल से तुम पास के मेरे स्नानगृह में जाकर स्नान कर शुद्ध होकर उस दिन की तरह दीर्घ प्राणायाम करो इससे परिश्रम कम व्यापेगा, क्यों?

नरहरी—माताजी मैं भी स्नान करके के विचार से ही स्नानगृह की ओर गया था परन्तु वहां कोई नौकर नहीं देखा, सब नौकर बालकों के स्नानगृह में हैं।

धर्मदेवी ने सरयू की तरफ देख कर स्नानगृह में गरम पानी पहुंचा देने की आज्ञा दी। सरयू तुरन्त उठी।

एक नासिक की बनावट का पीतल का तबेला जिसके नीचे उसको चलाने के लिये छोटे छोटे पहियों की योजना करदी गई थी, वह खेंच ले जाकर स्नानगृह में योग्य स्थान पर रख दिया और पास वैसा ही एक दूसरा खेंच लाकर रख दिया। दोनों में एक नली के ज़रिये पानी डाला। एक में गरम और दूसरे में ठंडा पानी भर जाने से हौज के सदृश वे दोनों वर्तन छलकने लगे। स्नान के निमित्त साबुन; वस्त्रादि सामग्री वहां रखदी। नरहरी वहां आ पहुंचा और उसको सरयू के देखने में श्वास लेने का भी पूरा भान नहीं रहा। द्वारिका में श्रीकृष्ण के सुदामा को स्नान कराने की विधि में और इसमें अन्तर केवल इतना रहा कि यहां एक सरयू ही थी और नरहरी अतिथि नहीं था। एक छोटे वर्तन में पानी निकालते निकालते, उसमें ही मानो चित्त वृत्ति एवं दृष्टि तथा सरयू के विचार प्रवाह को रोकता हुआ वह बोला।

"तो...तुम कौन?"

सरयू—नौकरों की कमी होने के कारण अभी ही मैं रही हूं।

नरहरी—किस रीति से?

सरयू—नौकर की रीति से ही।

नरहरी—नौकर!!! यानी?

सरयू—यानी दासी और दूसरा क्या।

चकित होकर नरहरी ने कहा "और काम क्या करना होता है ?"

सरयू—जो दासियों द्वारा हुआ करता है; इस प्रकार कोई योग्य मेहमान आजाय उसकी सेवा करना, बालकों को सम्हालना और उनके आभूषण वस्त्र ठीक रखना इत्यादि इत्यादि—

नरहरी—शाबाश ! मगर, म...ग...र तुम नौकर के रूप में यहां कब से रहे ?

सरयू—मैंने आपसे अभी निवेदित किया कि मुझे नियुक्त हुए थोड़े ही दिन—

नरहरी—हां, हां, तुमने कहा, ठीक है परन्तु मैं यहां से थोड़े दिन हुए तभी गया हूं—

सरयू—जी हां, आपके जाने के दूसरे दिवस से ही मैं यहां हूं।

नरहरी—आश्चर्य !!

सरयू—आश्चर्य काहे का ! बिना कारण आश्चर्य ! आपने यह उबटना भूल से गरम पानी में डाल दिया ! अच्छा, अब वह पानी खाली करके दूसरे में भरने दीजिये और लगाने के लिये लेप भी दूसरा लाती हूं।

नरहरी—मगर मुझे उसकी कुछ आवश्यकता नहीं है। लेप मिला हुआ यह गरम पानी ही काम देगा। परन्तु प···र···न्तु तुम कहती हो कि तुम नौकर हो– तुम तो सेठानी धर्मदेवी के साथ ही बैठीं थीं ना ?

सरयू—आपने मुझे देखा था ? क्या मैं ही थी ? आप भूलते तो नहीं ?।

नरहरी कुछ घबड़ाया। उसने सोच कर उत्तर दिया:—

नरहरी—मुझे नहीं मालूम होता कि मैं भूलता हूं। वहां नौकरों के और तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई नहीं था। नौकरनी क्या इस प्रकार सेठानी के साथ कोच पर बैठ सकती है?

सरयू—महनती लोग कम मिलेंगे तब क्या सेठ सिर पर नहीं बैठावेंगे?

नरहरी—तुमको यह सब उचित मालूम देता होगा।

सरयू—नहीं, नौकर अपने स्थान पर ही शोभा देगा और जिसका काम जो करता होगा वही करेगा। कभी न सुनी गई न देखी गई, महँगाई के कारण वे लोग बहक जांय तो सेठजी की अमर्यादा से नहीं–उन्माद से ही नहीं–बिना तावेदारी के कारण तो नहीं ही—तंगी के कारण—

नरहरी—अरे, तुम्हारा भला हो! और तुम कहती हो कि तुम नौकर हो!

सरयू—हाँ, हूं ही, दासी!

सरयू को इस समय सहसा अनिवार्य कुछ हंसी आगई। मन के अपने अधिकार की सीमा पर वह स्थित हुई। नरहरी को अब कुछ ढोंग की स्थिति का कुछ दूरस्थ आभास हुआ, परन्तु पहले नहीं देखने से वह इस समय सरयू को एक प्रकार का उपयोगी साधन होगया और यह सज्जन तो निष्प्रयोजन घबराने लगा।

नरहरी—अच्छा, तब कहो, माफ़ करना, मैं कुछ पूछता हूं कि पहले तुम कहां थीं?

सरयू—'पहिले' यानी? इस अवधि की कुछ हद बतलानी चाहिये? पहिले तो मैं बालक थी। और—

नरहरी—नहीं नहीं, तुम कहती हो कि यहां बतौर नौकर रही हूं उससे पहिले की बात पूछता हूं।

सरयू—समझ गई, समझ गई, अर्थात् आपको मेरा पूर्व वृत्तान्त जानने की अभिलाषा प्रतीत— ।

नरहरी—ओहो हो, मैंने तो वैसे ही पूछा है। चित्त दुःखाता हो, कहने की इच्छा न हो, असुविधा हो तो मेरे पूछने के साहस के लिये क्षमा—

सरयू—आपको इतना पूछने में लाचार होने की कुछ आवश्यकता नहीं है। नौकरों का पूर्व वृत्तान्त तो अवश्य जानना ही चाहिये।

नरहरी—परन्तु किसको ? मुझ जैसे झख मारने वाले यात्री को तो ऐसा करने में विचार करना उचित था।

सरयू—यह मृत्यु लोक ऐसे झख मारने वाले यात्रियों से भरा पड़ा है। देहान्त दण्ड की शिक्षा पाये कैदियों से भरा हुआ बड़ा कैदखाना ही मृत्युलोक ! जिसमें गुरुत्वाकर्षणरूप ताला लगा है।

नरहरी—अहा ! ऐसे तत्वज्ञानी परिजनों से परिवृत माता धर्मदेवी की जय हो !

सरयू कुछ हंस पड़ी ।

सरयू—सुनिये ! मैंने क्या कहा—मृत्युलोक में सब यात्री हैं। एक शहर से दूसरे शहर को जाने की यात्रा जैसे मामूली प्रसंग तक में दो जनों का मिलाप पूर्व जन्म के सम्बन्ध के बिना सम्भव नहीं है। आपके स्नान के अवसर में इतनी सहायता या बातचीत करने के प्रसंग में भी ऐसा ही कुछ कारण है। केवल मनुष्यों को और प्राणियों को ही नहीं परन्तु पदार्थों को भी परस्पर मिलाने वाला अन्तरिक्ष कुछ

पूर्वकालीन हेतु होता है शेष बाह्य 'उपाधियां', संज्ञायें, सम्बन्ध आदि तो केवल वह घटना होने के कारण रूप ही रहते हैं। *

अतएव जंगल में एक वृक्ष के नीचे भी सहज का मिलना दो मनुष्यों को एक दूसरे का पूर्व वृत्तान्त जानने के लिये उत्सुक करे तो इसमें कुछ आश्चर्य है? सरयूबाई के पास रही थी तब भी ऐसे ही कुछ मामूली प्रसंग पर ही अपने पूर्व वृत्तान्त से परिचित हुई। उन्होंने—

नरहरी—–ओहो! आश्चर्य! क्या श्रीमती सरयूदेवी के तुम नौकर थे? वे कहां हैं? हमेशा कैसे कार्यों में उनका समय जाता है? उनका वाचनालय तुमने देखा है? उनके हृदय की असीम विशालता से तुम परिचित हो? तुम कितने समय तक रहे? इस समय वे कहां हैं?

सरयू—–एक साथ इतने सारे प्रश्नों के उत्तर मैं किस प्रकार दे सकती हूं? परन्तु इतनी अधिक उत्सुकता से इनके सम्बन्ध में इस प्रकार प्रश्न करने का आपका कुछ कारण होना चाहिये?

नरहरी—–कारण क्यों नहीं! इनकी परोपकार वृत्ति के कारण ही लुटेरों में फंसा हुआ मैं आज यहां हूं। उनके शुभ प्रयत्नों से ही कुञ्जविहारी और मधुसूदन मिल गये! सेठजी के अन्य उद्योग तो विपरीत दिशा में चले गये थे।

सरयू—-इसमें इन्होंने क्या विशेष किया यह मैं नहीं समझी। उद्योग हम सरीखे नौकरों ने किये—संदेश भेजे-नौकर दौड़ाये—-जागरण किये।

नरहरी—ये सब ठीक है परन्तु इस योजना में बुद्धि किसकी?

---

*—व्यतिषयति पदार्थान्, आन्तरः कोपिहेतु।
न खलु बहिरुपाधीन्, प्रीतयः संश्रयन्ते॥

सरयू—बुद्धि इतनी कहां काम आती है ? किसी कार्य की सफलता में क्या प्रयत्नों का हिस्सा निकाल दिया जाता है ! बुद्धि और प्रयत्न में कलह हो,-युद्ध हो-और निर्णय करने का प्रसंग उपस्थित हो तो प्रयत्नों को ही विशेष भाग दिया जायगा ।

नरहरी—ऐसे कुछ कलह के कारण ही सरयू जैसी देवी की तुमने नौकरी छोड़ दी मालूम होती है । प्रयत्न के साथ बुद्धि का भाग भी तुम्हारे ही पास प्रतीत होता है फिर भी ऐसा क्यों हुआ ?

सरयू—सरयूदेवी के साथ मेरे रहने के पूर्व वृत्तान्त की आपने स्वतः ठीक कल्पना कर ली है, उसमें बहुत कुछ सत्य भी है ।

नरहरी—मुझे पूर्ण सत्य की आवश्यकता है ।

सरयू—तो भले ही जान लीजिये । अपनी बुद्धि का उनको अत्यन्त अभिमान है ।

नरहरी—हैं ? हैं ! ये कैसे माना जाय ?

सरयू—उनके साथ सहवास में रहने से, मनुष्यों द्वारा किये गये वर्णन से जाना जा सकता है ।

नरहरी—ठीक, फिर ? दूसरा क्या दोष है ? मुझे सविस्तर कहो, मैं तुम्हारा उपकार मानूंगा ।

सरयू—कहूं तो ठीक, प'''र'''न्तु उनके सम्बन्ध में आपका उच्च अभिप्राय प्रतीत होता है उसको बिगाड़ने के लिये निष्प्रयोजन मैं पाप की भागी होती हूं ।

नरहरी—सो तुम नहीं होगी । मैं वह जानना चाहता हूं । तुमको क्रूर नहीं होना चाहिये ।

सरयू—आप जैसे विद्वान् शास्त्रकारों ने ही हम स्त्रियों के स्वभाव को वर्णन करने में निर्दयता का हमारा स्वाभाविक लक्षण कहा है ।

नरहरी—वह शास्त्रकार यदि मैं ही होता तो उसकी क्षमा मांगता ! फिर ?

सरयू—अच्छा, देखिये ! अभिमान के अतिरिक्त उनके अन्य व्यवसाय कुछ अंश में दुःख पैदा करते हैं; आनन्द बढ़ाने वाले तो नहीं ही हैं । वह अपना अधिक समय अपने वाचनालय में ही बिताती हैं ।

नरहरी—मैंने सुना है कि उनका वाचनालय एक उत्तम प्रकार का है ।

सरयू—हां, है । लम्बा है, चौड़ा है, अन्दर रंग अच्छे किये हैं, चित्र भी अच्छे अच्छे टँगे हैं, आलमारियां बड़ी बड़ी हैं–पुस्तकें अनेक प्रकार की–शास्त्रों की, इतिहास की, साहित्य की, उद्योग की उसमें...हैं...होंगी, परन्तु वे उसमें क्या किया करती हैं यह आप जानते हैं ?

नरहरी—नहीं, नहीं, वह जानना है ।

सरयू—स्नान गृह से वह इस वाचनालय में जाती हैं । प्रातः काल ७ बजे से ६ बजे तक उसमें बाल सम्हालना–, काढ़ना–और 'टोइलेट' लगाना–पाउडर लगाने इत्यादि का काम चलता है यह दुनिया जानती ही नहीं:—

नरहरी—प...र...न्तु इसका कारण ?

सरयू–इसका कारण दूसरा कुछ भी नहीं, सौन्दर्य की कमी को पूरा करना, दूसरा क्या ? स्त्रियों में यह दोष स्वभाव से है यह हमको स्वीकार करना पड़ता है ।

नरहरी–सौन्दर्य की कमी को तो सरयूदेवी नहीं गिनेंगी ऐसा मैं समझता हूं ।

सरयू—आपने उनको देखा है ?

नरहरी—कभी नहीं,

कभी नहीं...इसीसे तो—

इसी समय स्नानगृह के बाहर पैरों की आवाज़ सुनाई दी। सरयू भोले भाले नरहरी को ठग रही थी, इससे उसको कुछ क्षोभ हुआ! निर्मला स्नान गृह के आगे आ खड़ी हुई।

निर्मला—भाई नरहरी, तुम्हारी बातचीत का पिछला भाग सुन लेने से मुझे स्वाभाविक आश्चर्य होता है। तुम्हारे हाथ से सरयू ने प्रमाणपत्र प्राप्त किये हैं। मेरी वह सहचरी है। मेरे वाचनालय की वह सेक्रेटरी हुई है। मेरे साहित्य में वह सहायक है। उसको आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी कार्य के लिये वह समय समय पर यहां आती है इस पर भी तुमने मानो कभी देखा ही नहीं इस प्रकार अनजानपने का कैसे मुकुट धारण किया है? यह समझाइयेगा।

नरहरी—आश्चर्य! क्या तब मैं सरयूदेवी के साथ ही वार्तालाप कर रहा हूं? क्षमा करना! धर्म भगिनी निर्मलादेवी! पुरुष के लिये स्त्रियों को सन्मुख देखने का आवश्यक प्रसंग आ जाय तो मर्यादित लक्ष्य से ही देखने की आर्य नीति पहिले से चली आती है। अन्य जातियां इस नीति को कदाचित् एक प्रकार का कौतूहल मानेंगी। ब्रह्मचारी जीवन में यह मर्यादा विशेष संकुचित हो जाती है। पूर्वकाल में सीताजी को जब जंगल से रावण हर ले गया था तब सीताजी की खोज में तुरन्त ही निकलने वाले श्रीरामचंद्रजी को पैर में पहिनने का एक नूपुर, हाथ में पहिनने का एक कड़ा और कंठ में धारण करने का एक हार प्राप्त हुआ था। सीताजी के अलङ्कार लक्ष्मणजी की देखरेख में रहने से श्रीरामचन्द्रजी ने उनको, कि क्या वे सीताजी के हैं पहिचानने की आज्ञा की। लक्ष्मणजी ने नूपुर तो तुरन्त पहिचान लिया परन्तु अन्य अलङ्कार ठीक ठीक नहीं पहिचाने। संयोग वश श्री रामचन्द्रजी ने क्रोध धारण कर लक्ष्मणजी से कहा कि सारे अलङ्कार तुम्हारी ही देखरेख में

रहते थे फिर केवल एक ही क्यों पहिचाना ? लक्ष्मणजी के उत्तर न देने पर श्रीरामचन्द्रजी ने बार बार पूछा। तब लक्ष्मण जी ने कहा कि बड़े भ्राता की पत्नि होने से सीताजी को माता तुल्य माना, प्रसंगोपात सेवा बुद्धि से पाद प्रक्षालन के प्रसंग प्राप्त अवश्य होते थे किन्तु आर्य नीति के अनुसार बड़े भाई की पत्नि के भी पैर से ऊपर दृष्टि करने का अवसर बहुत ही कम आया था अतएव ये अलङ्कार जब देने में आये तब देखे विना देखे ही लेने में आते थे। यह कहने पर, कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी का हृदय भर आया था।

परस्त्री को देखने के प्रसंग को आर्य शास्त्र नीति नहीं कहते। गंगा नदी बहुत पवित्र है तथापि उसके द्वारा शास्त्रकारों ने यह कहलाया है कि:—

परदार, परद्रव्य, परद्रोह परांमुखः ।
गंगा ब्रूते कदा गत्य मामयं पावयिष्यति ॥ *

अतएव सरयू देवी जिसके प्रत्यक्ष दर्शन का मुझे आज पुण्य प्राप्त होता है, यह अब आपके शब्दों से जाना। उनकी परोपकार वृत्ति का ही मुझे साक्षात्कार हुआ है। यहां आवें तब पहिचान सकूं, इस दृष्टि से नहीं देखा। शायद मेरे नेत्रों का एक किरण भी उन पर नहीं पड़ा होगा, परन्तु आपने तो मुझे अपराधी मान कर मुझ पर शासन तक कर दिया।

निर्मला—तब तो निश्चय ही, सरयू ! तूही मेरे भोले भाई नरहरी को ठग रही है।

---

* 'परस्त्री, परद्रव्य, और परद्रोह इन तीनों से पराङ्मुख पुरुष कब मेरे जल में स्नान कर मुझे पवित्र करेगा' गंगा कहती है।

नरहरी—तब हम दोनों अपराधी—

निर्मला—हां, हां, दोनों अपराधी ! और अभी ही जूरी एकत्रित की जाकर दोनों को समान दण्ड होता है । बहन सरयू ! तू बोलती क्यों नहीं ? शरमाती क्यों है ? मुख पर इतनी झेंप क्यों ? तैने कुछ अघटित तो नहीं किया ? किसी व्यक्ति के अन्तःकरण की वास्तविक स्थिति जब इस प्रकार समझना सुलभ है तो फिर तुझे क्षोभ करने का क्या कारण है ?

सरयू तो अब चुप होकर निर्मला से लिपट गई। नरहरी ने सरयू के भाव यथार्थ में समझा और उस वार्तालाप पर सिंहावलोकन करते हुए रोम रोम में अश्रुतपूर्व आनन्द का अनुभव करने लगा।

मिट्टी के पुतलों की भांति सबके स्तब्ध खड़े रहने का दृश्य करीब एकाध मिनिट रहा। इतने में कुंजबिहारी आया।

कुञ्जबिहारी—नलहली भय्या तुम यौं क्या कल लहे हो ? खाने चलो ना ? देल क्यों लगी ?

नरहरी—"छोकली ! मुझे छनान कलने में देल लगी"। यह कह कर उसे उठा लिया। परन्तु मुंह में मुंह मिलाकर वह कहने लगा।

"वह छनान इतनी देलतक ?"

सब लोग भोजन के कमरे में गये। निर्मला ने धर्मलक्ष्मी को आगे लेजाकर सारा वृत्तान्त बतलाया। सासबहू प्रसन्न मुख से पट्टों पर बैठगईं। महेन्द्रप्रसाद ने धर्मलक्ष्मी की ओर देखा और धर्मलक्ष्मी ने पति को बिना तार के संदेश में सब समझा दिया।

महेन्द्रप्रसाद—अच्छा देवी, तो अब तुम सुनो। मेरे आनन्द में आज वृद्धि हुई है। सरयू और नरहरी के विवाह की जगह बंबई निश्चय की जायगी क्यों कि सरयू का रुपया उसके स्वर्गीय पिता के मित्रों के यहां बंबई में जमा है और उन सबकी ऐसी इच्छा है कि सरयू के योग्य पति की व्यवस्था मैं करूँ और विवाह की दूसरी व्यवस्था उनकी तरफ से हो।

महेन्द्रप्रसाद की इच्छानुसार बंबई में सरयू और नरहरी के विवाह की तैयारियाँ होने लगी। नरहरी के पिता के वृद्ध चचा ने जो तहखाने में वचन दिया था कि आवश्यकता पड़े तब मुझे स्मरण करना वह वचन नरहरी ने याद रख छोड़ा, आज उसने उस वृद्ध योगी को बंबई में उपस्थित होने की प्रार्थना सहित एक मनुष्य भेजा। ऐसे में ही एक दिन डाक आई जिसमें पते के हस्ताक्षर लक्ष्मीप्रसाद के देखते ही मुदित होकर निर्मला ने वह पढ़ना प्रारम्भ किया।

······कुञ्जविहारी और मधुसूदन को आभूषणों की लालच में बाबाजी उड़ा लेगये हैं इस आशय का नरहरी का तार मुझे बोस्टन में मिला। पृथ्वी के स्वर्ग अमेरिका से सैंकड़ों उद्योग भारत में जारी करने की मेरी योजनाएं जो तैयार न होतीं तो सम्भवतः वे अधूरी ही रहतीं। इतने दूरस्थ देशों में और भारत में 'ऐरोप्लेन सर्विस' का सुख भावी प्रजा के भाग्य में बदा मालूम होता है। अतएव इसी समय उड़कर भारत पहुंचना असम्भव है इसी विचार में मैं संतप्त रहता हूं। ये बाबाजी कौन होंगे? बालकों को कहां ले गये होंगे? उनका क्या करेंगे?" ये विचारनिद्रा आने नहीं देते। कुछ समय

बीता करांची की तरफ–सिंध–में बालकों को उड़ा ले जाने का वृत्तान्त भारत के एक समाचार पत्र में पढ़ा था। इससे ऐसी टोलियां सिंध की तरफ होने का अन्दाज़ लगाता हूं। शीघ्र से शीघ्र भारत में आने की मैं चेष्टा कर रहा हूं। यह सुनने के पश्चात् अंग शिथिल होगये हैं। ईश्वर रक्षा करे।

" लक्ष्मीप्रसाद "

एकत्रित कुटुम्ब में निर्मला ने तुरन्त वह पत्र रखदिया। घड़ीभर शान्ति छा गई। लक्ष्मीप्रसाद की चिन्ता को निवृत्त करने का संदेश कहां भेजना इस पर अनुमान लगाये जाने लगे और एक दिवस इस प्रकार निश्चित किया गया कि सारा कुटुम्ब लक्ष्मीप्रसाद का स्वागत करने बंबई जाय, जिसके बाद कि लक्ष्मीप्रसाद भी सरयू और नरहरी के विवाह में भाग ले सकें।

सारे कुटुम्ब को बंबई जाना था इसकी भद्रबाला को सूचना होते ही वह भी मनहर के साथ विवाह में सम्मिलित होने आई। धर्मलक्ष्मी ने अपने ही प्रोत्साहन से स्त्रियों की उन्नति के लिये जीवन अर्पण करने में तत्पर तीनों महिला रत्नों के अपने पास होने से अत्यन्त आनन्द का अनुभव किया।

बंबई जाने के एक दिवस पूर्व निर्मला की बहिन गंगा का दूसरे से पत्र आया। सधवा स्थिति में गंगा को कुछ सुख नहीं था विधवा होने पर भी उसके चित्त की स्थिति विशेष संतप्त रहती थी। उसको अपने पास रखने के निर्मला के सारे प्रयत्न निष्फल हुए थे।

लक्ष्मीप्रसाद अमेरिका से वापिस आयेंगे तभी वह निर्मला के पास रहेगी ऐसी वह प्रतिज्ञा कर बैठी थी। बड़ी बहिन के अशिक्षित होने पर भी उसकी इच्छा का मान रखना पड़ता था। डूमस में रहने से गंगा की मानसिक स्थिति सुधरेगी ऐसी डाक्टरों ने सम्मति दी थी अतएव कितनी ही दाइयों, एक विद्वान डाक्टर और विद्वान कथाकारों की एक मण्डली के साथ उसको डूमस में रखना पड़ा था। दुःखी गंगा को सांसारिक उन्नति या औद्योगिक उन्नति के विषयों में कुछ भी रुचि नहीं होती थी।

डूमस के लम्बे समय के परिचय से कुछ [illegible] सी उत्पन्न हो जाने से आज के पत्र में उसने सूरत में ही डूमस के बंगले के समान अनुकूलता वाला बंगला लेकर वहाँ रखने की योजना के विषय में लिखा था।

सरयू के पिता के एक मित्र ने उसको अपने घर भेज देने एवं उस हालत में विवाह का भी खर्च देने की इच्छा प्रकट की। परन्तु महेन्द्रप्रसाद ने ऐसा करने की सम्मति नहीं दी और बंबई का अपना बंगला खाली कराकर उसमें विवाह की तैयारी की। धर्मलक्ष्मी और महेन्द्रप्रसाद, कुञ्जविहारी, मधुसूदन, भद्रबाला, मनहर, इत्यादि अनेक मित्रवर और नौकरों के साथ रवाना हुए। निर्मला उनके साथ सूरत तक गई और समय पर बंबई पहुंच जाने के लिये कह कर आवश्यक नौकरों को साथ लेकर सूरत से गंगा से मिलने को रवाना हुई।

परिच्छेद २४ वां।

खुकरी वाला सिन्धी और अपरिचित देवी।

क्ष्मीप्रसाद के पूर्णतया शिक्षित होते हुए भी उसके मन की स्थिति नरहरी के तार से बड़ी व्यथित हो गई थी। बौस्टन से वह तुरन्त न्यूयौर्क आया। अमेरिका में बौस्टन से न्यूयौर्क आना यहां से मानो काश्मीर से कन्याकुमारी को जाना था। अतएव तेज़ से तेज जाने वाली ट्रेन में भी इसके मन के उद्वेग से इसको मन्द मालूम हुई। खरीदी हुई सैकड़ों वस्तुएँ भारत भेज देने के लिये एक व्यापारी से कह दिया। आठेक दिन में वह इङ्गलैन्ड आ पहुंचा और वहां भारत के समाचार पत्र पढ़ने के लिये अधीर हुआ। गुजरात की ओर के समाचार नहीं के बराबर मिले तथापि बालकों को उड़ाने वाले सिन्ध, काठियावाड़, मारवाड़ और पंजाब की ओर विशेष होने की उसको खबर मिली परन्तु बम्बई के डैक पर उतरने पर कुटुम्ब का कोई मनुष्य देखने में न आने से उसका भय बढ़ गया। उसने समझा कि यातो उसके शीघ्र आने के कारण जल्दी से जल्दी की मेल पकड़ी थी जिससे सारे घर के लोग एक हफ्ते की मस्त में रहे हैं या बालकों की चिन्ता बढ़ गई है। इससे वह अपने बम्बई के बँगले पर जहां किरायेदार रहते थे न जाकर रात को गुजरात मेल पकड़ कर सीधा करांची गया। परन्तु आश्चर्य ! करांची की गुजराती लाइब्रेरी में उसने मि० लवङ्गा की सहायता से

बालकों का पता लगने की बात पढ़ी। उसने अब सन्तोष का श्वास लिया और सीधा भक्तिपुरा जाने के लिये रवाना हुआ।

भक्तिपुरे में पहुंच कर उसने अपना बँगला बन्द पाया। नौकरों में से एक नौकर बाग में पानी दे रहा था और दूसरे चार-पाँच नौकर स्वदेशी वस्त्र की प्रदर्शिनी में भेजने योग्य उत्तम कपड़ा शाला में बना रहे थे। लक्ष्मीप्रसाद को देखते ही 'सेठ आये, सेठ आये' यह कहते हुए इन लोगों ने उसका हार्दिक सत्कार किया। क्योंकि उनको भाषा का पूरी तरह ज्ञान नहीं था। लक्ष्मीप्रसाद ने कुञ्जविहारी और मधुसूदन का वृत्तान्त खड़े खड़े ही पूछा और 'लड़के मिल गये' यह जब यहां भी सुना तो वह 'हाश !' कहकर एक खाट पर निश्चिंत होकर बैठ गया और खुश खबर देने वाले नौकरों को इनाम दिया। जाति के जिन अगुआओं के त्रास से उसको अमेरिका जितनी दूर जाना पड़ा था वे महेन्द्रप्रसाद की सहनशीलता, अविचल धैर्य, प्रेम और परोपकार से वैरभाव भूल गये थे और आज वे उसके सत्कार को खड़े थे। उसको नौकरों से मालूम हुआ कि डेक पर लक्ष्मीप्रसाद के स्वागत के लिये तथा सरयू और नरहरी के विवाह में घर की सब मंडली बम्बई गई है। विवाह का दिन भी उसको मालूम होगया अतएव समय नजदीक होने से दूसरे ही दिन वह बम्बई के लिये रवाना होगया। महेन्द्रप्रसाद को इसी कारण से अपने कांची जाने एवं भक्तिपुरे होकर बम्बई पहुंचने की खबर तार द्वारा देदी। साथ का थोड़ा सामान भी अब तो घर पर रख दिया। केवल आवश्यक सामान का एक बैग अपने साथ रक्खा।

'बच्चों का पता लग गया' इस वृत्तान्त से प्रफुल्लित मन से लक्ष्मीप्रसाद अब बम्बई जाने को निकला। अनेकानेक देशों में फिरा, किन्तु 'सुख की यात्रा' और रोम रोम में आनन्द उसने आज ही अनुभव किया। निर्मला के पत्रों से, उसके स्फटिक सदृश अन्तःकरण तथा

उसकी पति भक्ति की प्रतीति मिलने से वह अपने को ईश्वर की असीम कृपा का अधिकारी समझ रहा था। उसका बाह्यजीवन स्त्रियों के लिये दृष्टान्तमय था इससे वह उसके प्रगट जीवन में भाग लेने की प्रेरणा कर रहा था। परन्तु हाय रे! हिन्दू संसार! घूंघट में बैठाकर उसका विवाह होने से तथा ज्ञाति के कलह के कारण तुरन्त ही दूर की यात्रा करने के प्रसंग से निर्मला की प्रभावशाली प्रतिमा को वह पूरी तरह देखने भी नहीं पाया था। दोनों के लिये कल प्रातःकाल बम्बई में ही परस्पर साक्षात्कार होना बदा था। पूर्ण ब्रह्मचर्य के कारण अनुकूल स्त्री प्राप्त होने का संयोग, भाग्य में हो तो, देशोदय के महान् कार्य में जीवन व्यतीत करने वाली सन्तान उत्पन्न करने में कारण भूत होता है। इस महामन्त्र का मालिक हमारे भारतवर्ष का प्रत्येक सुशिक्षित युवक अब होने लगा है। लक्ष्मीप्रसाद को यह मंत्र संयोग आज, आनन्द के जल में स्नान करा रहा था। इस आनन्द की विशालता को रखने के लिये आकाश तो मानो केवल एक छोटा सा पात्र था। दोनों छोटे भाइयों की चिन्ता दूर होगई थी। माता पिता के दर्शन की इच्छा बहुत दिनों में पूरी होने को थी और नरहरी जैसे पहिले के सम्बन्धी एवं कर्मयोगी मित्र का विवाह, सरयू समान सुशिक्षिता के साथ होने को है उसमें सम्मिलित होने के लिये बम्बई जाना था।

अहमदाबाद से बम्बई मेल छूटने पर उसको अमेरिका के एक दो नगरों के प्रवृत्तिमय जीवन का कुछ दूर का ध्यान हुआ। अहमदा-बादियों का उद्योगी जीवन सारे भारत को आनन्ददायक एवं दृष्टान्त-मय है। इसमें आवश्यक उत्तम चारित्र्य का अंश हो तो स्वदेशाभिमानी प्रेक्षक के लिये वह प्रोत्साहन का विषय होजाय इत्यादि ऐसे विचारों में उसका मन व्यग्र था और तत्संबन्धी औद्योगिक प्रवृत्ति के साधनों के लिये वह विचार कर रहा था। वह एक कम्पार्टमेंट वाली सैकिन्ड

क्लास में बैठा था उसी में अन्य दो युवक और आगये। ग्रैजुएट होने के बाद उनको क्या उद्योग करना चाहिये इस पर वे परस्पर अङ्गरेजी में बातचीत करते थे। लक्ष्मीप्रसाद को उन्होंने एक सिंधी युवक समझ कर उससे कोई बातचीत का विषय नहीं छेड़ा। लक्ष्मीप्रसाद का वेष भी इस समय ऐसा ही था। करांची के एक स्वदेशी स्टोर्स से खादी का तैयार सिंधी सूट खरीद लिया था, वह बेग में न आने से वही पहिन लिया था। मारवाड़ से पंजाब की तरफ जाने वाले एक गोरखा ऑफीसर ने उसको पहचान कर एक 'खुकरी' भेट की थी, वह बेग के पास रक्खी होने से उसके गुजराती होने का जरा भी किसी का खयाल नहीं हो सकता था। तथापि आनन्द स्टेशन तक इन युवकों की बातें सुनने के पश्चात् उसको यह विचार हुआ कि अमेरिका में जो कुछ देखा है उसका खयाल इन साहसी युवकों को कराना चाहिये। इससे उसने उनकी बातचीत में भाग लेना चाहा। परन्तु लक्ष्मीप्रसाद जैसे विद्वान से बातचीत में विशेष कुछ लाभ न समझ कर वे दोनों युवक बड़ोदा के स्टेशन पर उतर पड़े।

बड़ौदे पर मेल आई उस समय रात्रि के १२ बजे थे। सारे डिब्बे में वह अब इकला रह गया। गाड़ी चलने पर वह इस खिड़की से उस खिड़की तक घूमने लगा। निद्रा कैसे आती? गाड़ी की चाल से हिलने के कारण वह वापिस बैठ गया। 'घटना हो तो क्या करना'? इस विचार से खींचने की जंजीर देखी तो टूटी हुई देखी! अगले स्टेशन पर वह उतरा। गार्ड उसका एक पूर्व परिचित व्यक्ति था और उसके साथ, जैसे शुक्र तारे की चन्द्रमा बनने की चाहना की बात हजारों वर्षों से वृद्ध लोग करते हैं, वैसे ही, जीवराम जोशी का लड़का बाधाराम, कहीं ठिकाना न होने से सैकिण्ड गार्ड होने की उम्मेदवारी करना देखने में आया। लक्ष्मीप्रसाद ने उसे पहिचान लिया

परन्तु वह लक्ष्मीप्रसाद को नहीं पहिचान सका। इसलिये उसने अपने पास बुला कर बैठाया। वाघाराम ने तुरन्त ही अपना परिचित वाक्य 'विश यू गुलक' (wish you good luck) कह कर माफी मांगी, खींचने की जंजीर आज ही टूटी है, यह भी कहा। दूसरे स्टेशन पर उतरते उतरते यह कहता हुआ उतराः—

सरवन्ट हाजिर है, अच्छा ! काम काज हो तो ! मारे लोग बोम्बे भाई नरहरी और सरयू देवी की शादी में गये हैं। हाँ, हा, हा-पान बीड़ी लाऊं ! निर्मला और मद्रवाला देवी के मुझ पर बड़े उपकार हैं। साहब, मुझ जैसे को कौन लड़की देता ? पातंजलि आश्रम की एक होशियार लड़की को मुझसे विवाहित किया; उनका तो भला ही होगा। ' विश यू गुलक, विश यू गुलक सर !'

वाघाराम की विचित्र भाषा से लक्ष्मीप्रसाद को घड़ी भर आनन्द मिला। निर्मला के उपकार ऐसे ग़रीबों पर अब भी होते हैं, यह सुनकर वह प्रसन्न हुआ। उपकार की भावना प्रकट करते हुए वाघाराम ने निर्मला का स्मरण ताजा कर दिया। अमेरिका में ▮▮ से ज्यादा रहने के कारण स्वकल्पित निर्मला की प्रतिमा हृदय में खड़ी होगई। इसको विचार हुआ कि स्फटिक के समान हृदय वाली इस स्त्री को मेरी इच्छा ही धर्म है; मानो उसका मेरे हृदय से ही विवाह हुआ है। दाम्पत्य प्रेम की विशुद्ध प्रतिमा समान मैंने केवल एकाद पत्र में ताना मारा था कि- "देह प्राण से निराला है, देह का रूप यह हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है। मेरे हृदय की तसवीर तुम्हारे पास है, फिर देह की तसवीर क्यों मँगाती हो ?" इसके बाद फिर उसने मेरी तसवीर नहीं मांगी। इस कलियुग में कौन स्त्री ऐसा पति-परायणता का दृष्टांत दे सकेगी ? किन्तु मैंने इसकी तसवीर न मँगाने में भी प्रमाद किया है। वह मुझसे कभी यह दलील उपस्थित नहीं करती कि जब तुम नहीं भेजते, तब मैं

क्यों भेजूं । आज भारत को जाऊंगा, कल जाऊंगा, इसी विचार में क़रीब दो वर्ष जितना समय बीत गया, किन्तु इस मूर्खता का कहीं यह परिणाम न हो कि प्रातःकाल ग्रान्ट रोड स्टेशन पर कदाचित् नरहरी के विवाह का अवसर होने से अधिक स्त्रियां आवें और उनको न पहिचान सकूं, क्योंकि उसको पहिचानने का साधन ही फिर क्या है ? "

शेखचिल्ली के विचारों में सूरत स्टेशन भी आने को हुआ । पास में कुछ पुस्तकें भी नहीं रक्खी थीं । रक्खी भी होतीं, तो पढ़ने का जी न चाहता । समाचारपत्र भी पढ़ चुका था । बेग में सिर्फ एक दो जोड़ी कपड़े, तौलिया, साबुन, उस्त्रा, आइना तथा कितनी ही अमेरिका की कंपनियों के सूचीपत्र थे । अभी कई घण्टे व्यतीत करने थे । अतः बेग लेकर हजामत का एक लपेटा लेने नल वाली कोठरी के अन्दर गया, जिससे आधा घंटा गुजर जाय । गाड़ी तुरन्त ही सूरत के स्टेशन पर आ पहुंची । दसेक मिनट रुकी होगी कि जिस डिब्बे में वह बैठा था, उसके सामने ही कुछ कोलाहल हुआ । उसने अन्दर से सुना—

"ये खाली है ! इसमें कोई नहीं है ! जै ! जै ! जै ! आइये !" इत्यादि । थोड़ी ही देर में गाड़ी चल दी । लक्ष्मीप्रसाद ने सोचा कि फिर किसी का साथ हुआ । उसके सामान में तो बेग के अलावा सिर्फ एक सोने की मूठ की 'सुकरी' ही थी, जिसे ऊंचा रख देने के कारण नई सवारियों के विचार से तो सारा डिब्बा खाली ही मालूम देता था । थोड़ी ही देर में वह बाहर आगया और देखा कि एक स्त्री अन्दर अपना सामान, पेटी वग़ैरह जमा रही थी, यह देख कर वह चौंका ! उसको तो केवल आश्चर्य ही हुआ, परन्तु इस स्त्री के विचार से तो मानो आसमान टूट पड़ा हो, इतनी घबड़ा गई ! उसको स्वप्न में भी कहां से विचार होता कि अन्दर एक पुरुष बैठा है ? उसको इतनी घबराहट हुई कि कदाचित् तुरन्त ही गाड़ी से कूद पड़े, परन्तु गाड़ी की गति का वेग

बढ़ चुका था। लक्ष्मीप्रसाद के विचित्र वेश ने इस स्त्री का भय बढ़ा दिया था। दुर्भाग्य से इसी अरसे में कितने पठानों द्वारा रेल में खून होनेके वृत्त समाचारपत्र में आये थे, उसे वे बात याद आने से वह चक्करमें पड़ी। लक्ष्मीप्रसाद ने सिंधी दरजी का बनाया हुआ खादी का पाजामा, लम्बी खादी की कमीज, बांह तक स्वयंसेवकों की सी खासी, खादी के पट्टे वाली सोने की देशी बटन लगी हुई, सिर्फ लम्बी कमीज पहन रक्खी थी। सिर के बाल रखने के कारण उसमें और पठान में बहुत कम अन्तर था। उसके बाहर निकलते ही तुरन्त वह खड़ी होगई। सामान का जमाना तो छोड़ दिया और उसकी हरकतों को गम्भीरता पूर्वक देखने लगी।

"अंग्रेज़ी नहीं जानता होगा तो मैं किस भाषा में उससे बात-चीत करूंगी? न जाने कौन होगा?" इस विचार से वह इतनी घबड़ाई कि अपने मन का अधिकार छोड़ बैठी और तीव्र दृष्टि करके बोली:—

"हू आर यू? यू शुड गैट डाउन एट दी नैक्स्ट स्टेशन"

भारत में ऐसी हिम्मत वाली स्त्रियां होने लगी हैं। यह देख कर लक्ष्मीप्रसाद तो हृदय से आनन्द का अनुभव कर, उस आनन्द को छुपा कर देखता ही रहा। ऊपर के खाने में इस महिला के बक्स के नीचे अपनी खुकरी आ जाने से उसने वह निकाल कर अपने बेग के पास रक्खी। इससे तो उस स्त्री के धैर्य का अन्त ही आगया। इसने एक-दम जंजीर खेंची! परन्तु वह टूटी मिली! इस सब में कुछ रहस्य है, यह उसको प्रतीत होने लगा।

"व्हाय! हेव यू गोट इन दी लेडीज़ कम्पार्टमेंट?"

लक्ष्मीप्रसाद अब भी चुप ही रहा, कारण कि यह स्त्रियों का हिस्सा नहीं था। इसने यह समझा कि यह स्त्री नाहक घबड़ाती है,

परन्तु उसके साथ बोलने में उसने पाप समझा। अतः वह चुप बैठी थी, उसके सामने की ही खिड़की से सिर बाहर कर वह बैठ गया और मन में विचार करने लगा कि मृत्युलोक पर सदा सुख की घड़ियां नहीं रह सकतीं। मेरे आनन्द में ऐसी कुछ मुसीबत अवश्य होगी।

अगले स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई, अतः लक्ष्मीप्रसाद कहीं दूसरी जगह देखने उतरा। महिला तो पहिले से इसी इरादे से उतर गई थी। उतरते समय लक्ष्मीप्रसाद ने अपना बेग और खुकी पानी वाले डिब्बे में रख दिये। वह महिला यात्री बाबाराम को पहिचानती थी, इससे उसने कहीं दूसरी जगह दौड़ाने को कहा। बाबाराम सारी ट्रेन को देख आया, परन्तु कहीं जगह नहीं थी अतएव महिला ने थर्ड क्लास में बैठा देने को कहा—परन्तु उसका सामान अधिक और तुरन्त उतारा नहीं जा सकता था। परंतु यह बैठी थी, वहां जगह देख कर बाबाराम मन में प्रसन्न हुआ और 'विश यू गुडलक' कह कर चलता हुआ। इस महिला ने जब देखा कि वह पुरुष चला गया है, तो वह निर्भय होकर बैठी। परन्तु अन्यत्र स्थान न मिलने से लक्ष्मीप्रसाद को ट्रेन चलते ही पुनः यही आकर बैठना पड़ा। अब यह महिला हद से ज़्यादा घबड़ाने लगी और "यू पागल, यू बदमाश! तुम वापिस कैसे आया? तुमको हम पुलिस के सुपुर्द करेगा। तुम औरतों की गाड़ी में कैसे बैठ गया?" इत्यादि इत्यादि घुड़कियां देने लगी। लक्ष्मीप्रसाद ने सोचा कि इस बला से बचने के लिये उसे थर्ड क्लास में बैठ जाना चाहिये था। इस महिला के चित्त को वृथा खेद उत्पन्न करने के लिये उसके चित्त को बड़ा क्षोभ हुआ, परन्तु चलती गाड़ी में कुछ उपाय नहीं था, तथापि वह चुपचाप वापिस टॉइलेट रूम में चला गया। चार बजे तक इसी प्रकार रहा। प्रातःकाल पहले बलसाड़ स्टेशन आया। अतः यह महिला उतर कर तार घर में गई, परन्तु वहाँ तारबाबू न मिला। वापिस आते ही एक पारसी दम्पति को जहाँ वह बैठी थी,

उसी डिब्बे में बैठते देखकर उसे शान्ति मिली। लक्ष्मीप्रसाद ने भी समझा कि चलो झगड़ा मिटा। इस समय भी बाबाराम 'विश्व यू गुल्लक' कहकर खिड़की के सामने से निकल गया।

पारसी दम्पति का समय तो घर के क्लेश की बातों में गुज़र चला परन्तु उसके एक शब्द को भी लक्ष्मीप्रसाद ने लक्ष्य में नहीं लिया। बांयी तरफ की खिड़की के सामने पहाड़, सूर्योदय से रंजित प्रभात, सिर्फ देखने की ख़ातिर उसका आनन्द लेने के बजाय देख भर रहा था और वह महिला दाँहिनी ओर की खिड़कियों के पास बैठी थी और पारसी दम्पति की उपस्थिति से निर्भयता पूर्वक उनकी बातों में खूब ध्यान दे रही थी। ग्रान्टरोड स्टेशन आने की तैयारी थी। सबने अपना अपना सामान सँभाला। लक्ष्मीप्रसादने टॉइलेट रूम में जाकर अपने कपड़े बदले। महिला ने देखा कि यह तो गुजराती था और वह नाहक घबरा रही थी। स्टेशन आते ही ग्रान्टरोड स्टेशन पर महेन्द्रप्रसाद, धर्मलक्ष्मी, भद्रबाला, सरयू, मनहर, नरहरी, कुंजविहारी, मधुसूदन और स्वागत के लिये उपस्थित बड़ी मंडली देखी। माता ने उसके उतरते ही सिरपर हाथ रखा और पिता से लक्ष्मीप्रसाद मिला। ओहो! मगर और क्या हुआ? उस महिला से सरयू और भद्रबाला दोनों सहर्ष मिलीं!! और बधाई देकर अधिक घबरा दिया।

भद्रबाला—बहिन निर्मला! तुम दोनों साथ कैसे आये?

सरयू—ये तो दूसरों को ही ताना था कि तुम भोलेभालों को ठगते थे-देखा इनका कार्यक्रम!

महिला यात्री निर्मला ने अपनी भयंकर भूल का अनुभव किया! सूरत से वह लक्ष्मीप्रसाद के साथ ही आई और ये सारा झंझट किया। यह विचार कर वह पृथ्वी में समाजाय इतनी शरमाई। उसका पछताना इससे और भी बढ़ा कि

उसकी सफ़ाई कोई मान नहीं सकता था। "ये दोनों साथ कैसे आये?" "येनकेन प्रकार से तार से संदेश भेजे होंगे।" "विद्वानों की बात कैसे समझ पड़े।" इत्यादि बातें जैसी जिसको सूझीं कहीं। लक्ष्मीप्रसाद दोनों बालकों को पास बुलाकर, निर्मला की ओर देखकर अब हंसरहा था और निर्मला अत्यन्त लज्जा से नीचे देख रही थी! "ऐसा होता होगा?" यह कहने का बहुत बार विचार किया परन्तु कहा नहीं गया।

× × × ×

सरयू और नरहरी का विवाह महेन्द्रप्रसाद के बंगले पर उत्साह पूर्वक हुआ। नरहरी के वृद्ध चाचा भी इस विवाह में उपस्थित थे और उनके साथ मन्दिर के वृद्ध महात्मा भी देखे गये और मनहर ने नहीं पहिचानने वालों को परिचय कराया कि आप महात्मा विष्णुप्रसादजी हैं, अन्य नहीं।

× × × ×

विष्णुप्रसादजी के पुनः दर्शन होने से उपस्थित मण्डली को अलभ्य लाभ हुआ। गुप्त रहते हुए भी महात्मा पुरुष संसार पर उपकार करने में ही जीवन व्यतीत करते हुए देखे जाते हैं और सांसारिक जीवों के कष्ट कम कर उनको सुख देकर सन्मार्ग पर ले जाते हैं और इस प्रकार मोक्ष का मार्ग सुगम करते हैं इस बात का विशेष ज्ञान हुआ।

× × × ×

बाधाराम के बकने का आशय अब निर्मला को समझ पड़ा। वह बिचारा दोनों को पहिचानता था। दोनों साथ साथ बम्बई